

संचार प्रक्रिया

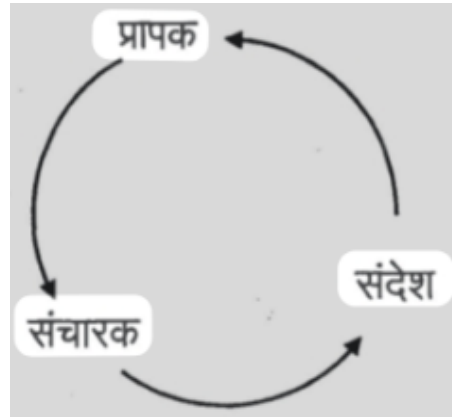
किसी भी कार्य के व्यवस्थित क्रम एवं स्वरूप को सुचारु रूप से लागू करने के ढंग को प्रक्रिया कहा जाता है। संचार के अंतर्गत एक पक्ष दूसरे पक्ष को सूचनाओं, विचारों, एवं भावनाओं के आदान करने को संचार प्रक्रिया कहते हैं। संचार व्यक्तियों और समूहों का वाहक एवं विचार अभिव्यक्ति का माध्यम है। संचार प्रक्रिया में संप्रेषक संदेश के प्रवाह के माध्यम का प्रयोग करता है। माध्यम लिखित, मौखिक, दृश्य, श्रव्य आदि रूप में होता है। माध्यम का चयन संचार का उद्देश्य गति एवं प्राप्तकर्ता की परिस्थितियों के अनुरूप किया जाता है। संचार माध्यम का चयन करते समय संप्रेषक यह ध्यान रखता है कि कब क्या संचारित करना है? प्राप्त संदेश को प्राप्त करता है। विवेचन करता है, अपने दृष्टिकोण से उसे ग्रहण करता है तथा वांछित प्रति उत्तर प्राप्त करता है।

संचार की प्रक्रिया के संबंध में प्रारंभिक रूप में तीन धारणाएं सर्वप्रथम हमारे सामने आती हैं:

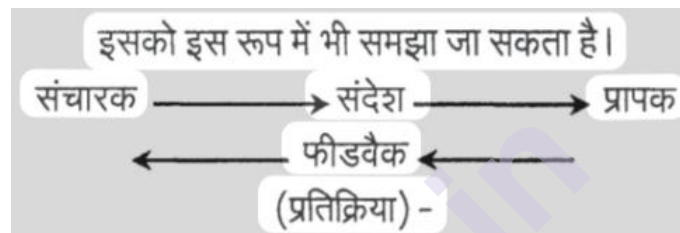
- (१) पहली धारणा संचार एक सरला रेखा के रूप में (Communication as a line arprocess) - इस रूप में संचार को एक सरल रेखा में बढ़ता हुआ माना जाता है। अर्थात् "A" कोई संदेश भेज रहा है जिसे "B" ग्रहण कर रहा है। Sender Message-Receiver
- २) दूसरी धारणा - संचार एक अंतःक्रिया के रूप में। (Communication as a interaction) इस धारणा के अनुसार संचार एक सरल रेखा में नहीं होता, बल्कि संचार संप्रेषक और प्राप्तकर्ता के बीच एक अंतः क्रिया है।

Sender to Receiver Receiver to Sender

- (३) तीसरी धारणा संचार परस्पर आदान प्रदान के रूप में। (Communication as a - transaction) इस धारणा के अनुसार संचार सिर्फ अंतःक्रिया ही नहीं, बल्कि परस्पर आदान-प्रदान है। ऐसा नहीं है कि 'A' बोले तो 'B' चुपचाप सुने और 'B' बोले तो 'A' चुपचाप सुने। दरअसल 'A' जैसे ही बोलना शुरू करता है, 'B' से उसे प्रतिक्रिया मिलने लगती है। इसलिए जब 'B' संचार करता है, तो उसी वक्त वह प्राप्त कर्ता भी हो जाता है। इसी तरह 'B' जब संदेश ग्रहण कर रहा होता है, उसी समय वह संचारक भी हो जाता है। इस तरह संचार वृत्त रेखा में होता है।

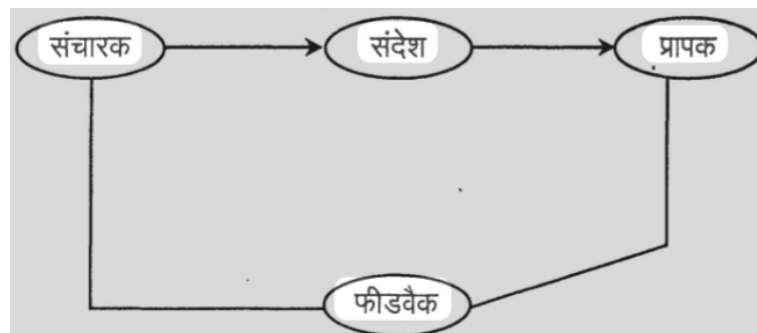


इसको इस रूप में भी समझा जा सकता है।



इस तरह संचार की प्रक्रिया परस्पर लेन-देन है संचारक तथा प्रापक की भूमिकाएँ इसमें बदलती रहती है। तथा एक कुशल संचारक सहजता के साथ दूसरी भूमिका में भी रहता है।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य है कि संचारक अपने अथक प्रयत्नों से संदेश को चिन्हों तथा संकेत द्वारा कूट (Encode) करता है और चैनल के माध्यम से प्रापक को भेजता है। प्रापक अपनी पढ़ने की क्षमता के आधार पर संदेश को पढ़ता (decode) है। इस तरह संचार पूरा हो जाएगा। फिर प्रापक फीडबैक भेज सकता है। संचार के क्रम में भी भूमिका होती है, जो संदेश को विकृत करती है। जैसे रेडियों प्रसारण में आने वाली बाधा। संचार प्रक्रिया की इस अवधारणा के तहत यह जरूरी है कि प्रापक उसी अर्थ के अनुरूप डिकाडे की, जो अर्थ संचारक ने कूट किया है, तभी संचार की प्रक्रिया सफल होगी। फिर प्रापक अपनी प्रतिक्रिया इसी तरह कूट करके भेजेगा, जिसे संचारक डिकोड करेगा। इस पूरी प्रक्रिया में बाधा (Noise) यानी शोर की भी भूमिका होती है, जो संदेश को विकृत करती है।



संचार की प्रक्रिया के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अलग अलग मॉडल प्रस्तुत किया है। जिनमें शैनन, वीबर ला सवेला, सी. ई. आस गुड, वैस्तले और मेक्लीन, लीगन, बिलवर श्राम, गर्बनर इत्यादि के मॉडल प्रमुख हैं।

संचार प्रक्रिया के तत्व:

संचार की प्रक्रिया में निम्न तत्व हमारे सामने आते हैं-

संप्रेषक या संचारक या स्रोत:

संचारक की भूमिका किसी भी संचार प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। संचारक ही किसी संदेश का स्रोत होता है, वही उसका प्रेषक है। संचारक वह है, जो संचार प्रक्रिया का आरंभ करता है। अतः प्रथम संचार तत्व के रूप में संप्रेषक या संचारक या स्रोत का उल्लेख किया जाता है। इस रूप में वक्ता, कार्यकर्ता, नेता, अधिकारी, विशेषज्ञ, संबंधी मित्र, पड़ोसी की भूमिका संप्रेषक या संचारक के रूप में देखे जा सकते हैं। संप्रेषक को संदेश की पूर्ण जानकारी होती है। संचारक संदेश के परिणाम और उसके मूल्यांकन, संचार प्रक्रिया और संचार माध्यमों के प्रति सतर्क रहता है।

डेविड के बर्नी के अनुसार संप्रेषक या संचारक में चार प्रकार के गुण होते हैं:

- संचार निपुणता
- मनोवृत्ति
- ज्ञान का स्तर
- सामाजिक सांस्कृतिक आचरण

पहला संप्रेषक गुण के रूप में संचार निपुणता या कौशल्य आवश्यक है। अर्थात् लिखना और बोलना (एन कोडिंग) पढ़ना और सुनना (डीकोडिंग) तथा तर्क करना। इसके अतिरिक्त रंग - चित्र बनाना, संकेत करना आदि भी संचार कौशल्य के अंग हैं।

संचारक का दूसरा गुण उसकी मनोवृत्ति है। यह मनोवृत्ति संचार पर तीन प्रकार से प्रभाव डालती है।

- १) उसका अपने प्रति व्यवहार, जैसे सार्वजनिक भाषण के समय भय के कारण पैरों का काँपना।
- २) विषय वस्तु के प्रति उसकी चारणा जैसे एक बहुत ही सफल विक्रेता माल नहीं बेच सकता यदि वह स्वयं उसमें विश्वास नहीं करता।

प्रापक के प्रति उसका आकार व्यवहार जैसे बोलने वाला गुण, जो सुनने वालों को आकर्षित करे।

संप्रेषक का तीसरा गुण उसके ज्ञान का विस्तार है। संप्रेषक के ज्ञान का प्रभाव उसके संचार संबंधी व्यवहार पर पड़ता है। इस प्रकार संप्रेषक को विषय वस्तु की अच्छी समझ, सही मनोवृत्ति, उचित माध्यम का चुनाव तथा प्रापक की विशेषता की जानकारी संचार को प्रभावी बनाता है।

संप्रेषक का चौथा गुण उसका सामाजिक एवं सांस्कृतिक आचरण है। कोई भी संप्रेषक सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में अपनी स्थिति से प्रभावित हुए बिना स्वतंत्रता से संचारण नहीं कर सकता है। भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आये हुए अलग-अलग ढंग से आचरण करते हैं। भारतीय और चीनी एकही संदेश की अभिव्यक्ति भिन्न प्रयोजन को अभिव्यक्त करने के लिए करते हैं जिसका परिणाम संप्रेषक के संदेश के प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया के रूप में सामने आता है।

संदेश किसी संप्रेषक द्वारा किसी संचार प्रक्रिया के अंतर्गत किसी भी माध्यम से जिन सूचनाओं, विचारों एवं अभिवृत्तियों को संचारित किया जाता है, उन्हें संदेश करते हैं। इसे संप्रेषक मौखिक या अमौखिक तरीके से, शब्दों या चित्रों के जरिए या फिर संकेत द्वारा प्रापक के पास संप्रेषित करता है। जन संचार की भाषा में इसे कंटेंट्स कहा जाता है। कोई भी संदेश संचार के क्रम में जिस रूप में तैयार किया जाता है, जरूरी नहीं कि उसी रूप में उसे जन संचार के लिए संप्रेषित कर दिया जाय। वस्तुतः एकही संदेश को अलग-अलग श्रोताओं तक अलग-अलग माध्यमों से संप्रेषित करने में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्तुत करना पड़ सकता है।

संदेश में निम्नलिखित विशेषताएँ अनिवार्य मानी जाती हैं:

- १) संदेश उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए।
- २) संदेश में सही संतुलित वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समावेश होना चाहिए।
- ३) प्रापक या संग्राहक की आवश्यकताओं, क्षमताओं और मान्यताओं के अनुरूप होना चाहिए।
- ४) संदेश समयानुसार होना चाहिए।
- ५) संदेश व्यावहारिक हो ताकि प्रापक उसका प्रयोग कर लाभान्वित हो सके।

माध्यम:

संचार की प्रक्रिया में माध्यम का भी बहुत महत्व होता है। कोई संदेश किस तरह के कितने श्रोताओं तक किस गति से तथा किस रूप में पहुँचेगा, कितना प्रभावोत्पादक होगा, ऐसी समस्त चीजें इस बात पर निर्भर करती हैं कि उसका माध्यम क्या है। संचार के माध्यमों में अंतर्व्यक्तिक संचार के दौरान अगर कोई यांत्रिक चीज मौजूद नहीं होती तो जन संचार के लिए प्रिंट मीडिया, रेडियो, टी.वी. इत्यादि माध्यमों की आवश्यकता होती है। किसी भी संदेश की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि माध्यम का चुनाव सही किया है या नहीं। अलग-अलग जरूरत के लिए अलग-अलग माध्यम का उपयोग किया जाता है।

संदेश को प्रापक तक पहुँचाने के लिए माध्यम का चयन करते समय संप्रेषक को यह ध्यान रखना चाहिए कि:

- (१) संदेश के तत्व और उसके स्वभाव को ध्यान में रखकर संचार माध्यम का चयन करना चाहिए।

- २) दर्शक, श्रोता, पाठक तक सरलता से पहुँचने वाले माध्यम को सर्वप्रथम वरीयता देनी चाहिए।
- ३) दर्शक, श्रोता, पाठक को एक से अधिक ज्ञानेंद्रियों के प्रयोग करने के लिए बाध्य करने वाला माध्यम होना चाहिए।
- ४) संप्रेषक को उचित समय पर माध्यम की उपलब्धता

संचार के माध्यम संप्रेषक और प्रापक के मध्य माध्यम पुल का कार्य करता है। माध्यम कुछ भी हो सकता है जिसे संप्रेषक अपने को भावी प्रापक से जोड़ने के लिए प्रयोग करता है; जैसे आपसी बातचीत, व्यक्तिगत संपर्क पत्राचार, सभाएँ या बैठके, टेलीफोन, टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र, पुस्तकें, बुलेटिन, वीडियो फिल्म, ई-मेल, इंटर नेट चैटिंग, टेली मैसेज, साहित्य आदि। ये सभी माध्यम संदेश को प्रापक तक पहुँचाने में सहायक होते हैं।

प्रापक या प्राप्तकर्ता:

किसी भी संचार प्रक्रिया में जिस व्यक्ति या जिन व्यक्तियों को लक्ष्य करके कोई भी संदेश निर्मित एवं संप्रेषित किया जाता है, वह प्राप्तकर्ता है। अर्थात् संदेश प्राप्त करने वाले को प्रापक, प्राप्तकर्ता, रिसीवर डेस्टिनेशन, डिकोडर, गंतव्य इत्यादि भी कहा जाता है। प्राप्तकर्ता कोई भी एक व्यक्ति हो सकता है। एक समूह या फिर एक बड़ा जन समूह भी हो सकता है। प्रापक सर्वज्ञ अथवा अल्पज्ञ हो सकता है। वह धैर्यपूर्वक सुननेवाला अथवा स्पष्ट रूप से सोचने समझने वाला अथवा भ्रमित दर्शक, श्रोता, पाठक हो सकता है।

संप्रेषक का संदेश पाने वाला यह प्रापक या प्राप्तकर्ता संचार की प्रक्रिया के अंतिम छोर पर होता है। प्राप्तकर्ता जितना ही संप्रेषक के समरूप होता है, संचार उतना ही प्रभावी होता है। संचार की प्रक्रिया में प्राप्तकर्ता का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि उसी को केन्द्र में रखकर संदेश का निर्माण किया जाता है।

प्रतिक्रिया (फीडबैक):

फीडबैक अर्थात् प्राप्तकर्ता द्वारा संदेश पर प्रतिक्रिया जाहिर करना। प्राप्तकर्ता जब संदेश प्राप्त करता है, तब संदेश पर इसकी प्रतिक्रिया किसी न किसी रूप में होती है। उसकी अभिव्यक्ति ही प्रतिक्रिया प्रतिपुष्टि या फीडबैक कहलाता है। सुचारु संचार व्यवस्था के लिए प्रतिक्रिया या फीड बैक का बहुत महत्व है, क्योंकि संचार की गति इससे नियंत्रित होती है, वह सही संकेतों को सही रूप में संप्रेषित करके आगे भेजता है। कई बार संप्रेषक को प्रापक से प्रतिक्रिया मिलने से पूर्व ही अन्य स्रोतों से प्रतिक्रिया मिल जाती है। जैसे संदेश भेजा जाने लगे और वाक्य पूरा होने से पहले ही संप्रेषक को लग जाये कि मैंने सही शब्दों का प्रयोग नहीं किया, या मेरा उच्चारण सही नहीं है, तो उसे खुद संदेश से ही प्रतिक्रिया मिल सकती है। इस प्रकार संप्रेषक खुद अपने ले दी फीडबैक प्राप्तकर लेता है।

संचार बाधा या शोर (नॉइज):

संदेश के स्तर पर जनसंचार माध्यमों में शोर या बाधा की संभावनाएँ अधिक हैं, जो मात्र माध्यम में ही नहीं संचार प्रक्रिया में किसी भी बिंदु पर प्रकट हो सकती है। संदेश जब

किन्हीं अड़चनों, बाधाओं, अवरोधों के कारण अभीष्ट प्राप्तकर्ता तक नहीं पहुँचता अथवा उसमें किसी प्रकार व्यवधान आ जाता है। तो संचार प्रक्रिया विविध कारणों से बाधित होती है तो वह संचार बाधा कहलाती है। उदाहरण- रेडियों, टी.वी. के प्रसारण में किसी प्रकार की अतिरिक्त ध्वनि। इससे भ्रम एवं अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। टेलीफोन पर वार्तालाप के दौरान आसपास के शोरगुल से कुछ अतिरिक्त अनावश्यक ध्वनियाँ भी हमारे संदेश के साथ जुड़ जाती हैं, जो बाधा उत्पन्न करती हैं।

ये बाधाएँ कई तरह की हो सकती हैं:

- १) शारीरिक बाधा, जैसे जो बात कही जा रही है, वह सुनाई न पड़े।
- २) उच्चारण के तरीके में गड़बड़ी के कारण गलत अर्थ निकल जाए।
- ३) कम रोशनी के कारण सही पढ़ना न हो पाये।
- ४) खराब प्रिंट क्वालिटी।
- ५) मनोवैज्ञानिक कारण- प्राप्त कर्ता पर कोई पूर्वाग्रह या पूर्वधारणा हो तो वह संदेश को इसी रूप में नहीं लेगा या गलत लेगा।

इसलिए कहा जाता है कि संदेश का अर्थ क्या निकलेगा यह प्राप्तकर्ता के मस्तिष्क पर निर्भर करता है। संचार की प्रक्रिया सीधी नहीं होती है। इसमें संचार के अनेक घटक तत्व कार्य करते हैं। इस प्रक्रिया को समझने के लिए अनेक विद्वानों ने अलग-अलग सिद्धांतों के द्वारा इसकी व्याख्या की है। कुछ प्रमुख सिद्धांतों की चर्चा इस प्रकार है:

हैराल्ड लासवेल का मॉडल १९४८:

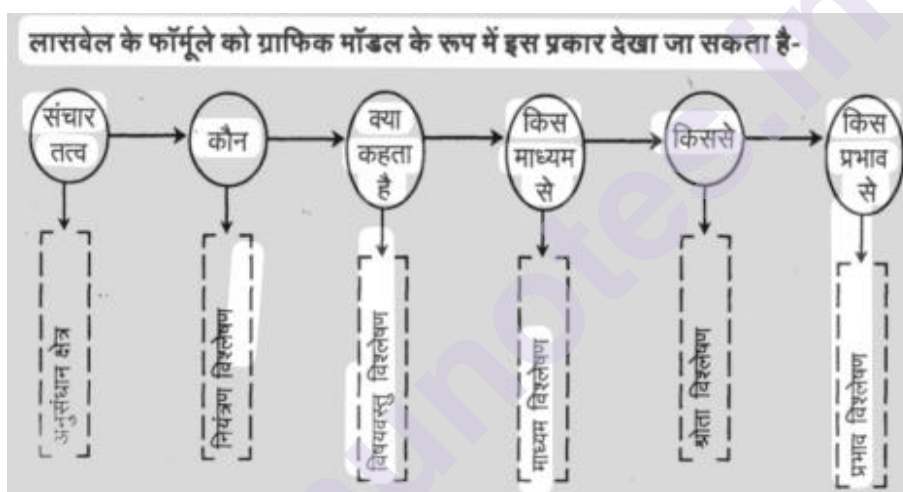
अमेरिकी राजनीतिक शास्त्री हैराल्ड Sr. लासवेल ने १९४८ में एक ऐसा फार्मुला बनाया, जिसका संचार और संचार शोध में सर्वाधिक प्रचलित मुहावरें के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह संचार प्रक्रिया के कई महत्वपूर्ण तत्वों को समाहित किए हुए है। इसे संचार का प्रथम व्यवस्थित मॉडल माना जाता है। उनका मानना है कि किसी संचार की प्रक्रिया को समझने का सबसे बेहतर तरीका इन प्रश्नों का जबाब दूढ़ना है:

- Who? कौन कहता है ?
- Say What? क्या कहता है ?
- In which channel किस माध्यम में ?
- to whom? किसको ?
- With what effect? क्या प्रभाव है ?

इस प्रकार संचार प्रक्रिया का लासवेल मॉडल पांच प्रकारों पर आधारित है। उनके अनुसार इन पांच प्रकारों से संचार को समझा जा सकता है। इस मॉडल के आधार पर संचार शोध के पांच क्षेत्र स्पष्ट रूप से सामने आते हैं:

१. Who-Communicator Analysis- संचार कर्ता का विश्लेषण
२. Says What Contents Analysis - विषयवस्तु का विश्लेषण
३. In which channel - Media Analysis माध्यम विश्लेषण
४. To whom - Audience Analysis-श्रोता विश्लेषण
५. With what effect - Impact Analysis प्रभाव विश्लेषण

लासवेल प्रेषक अर्थात् 'कौन' पर संचार में संदेश अर्थात् 'क्या' में प्रवेश कराता है और 'किसको' यानी ग्रहीता पर जो संदेश ग्रहण करता है जो दिया है। उनके अनुसार संचार प्रक्रिया में स्रोत (प्रेषक) की - प्रकृति तथा ग्रहिता या रिसीवर की प्रकृति एक महत्वपूर्ण उपकरण है। अंत में लासवेल ने प्रभाव तत्व को अपने मॉडल में समाहित किया है जो अर्थपूर्ण संचार की रचना करता है तथा वह ग्रहिता के मस्तिष्क पर प्रभाव डालने के लिए ही की जाती है। वस्तुतः यही संचार है।

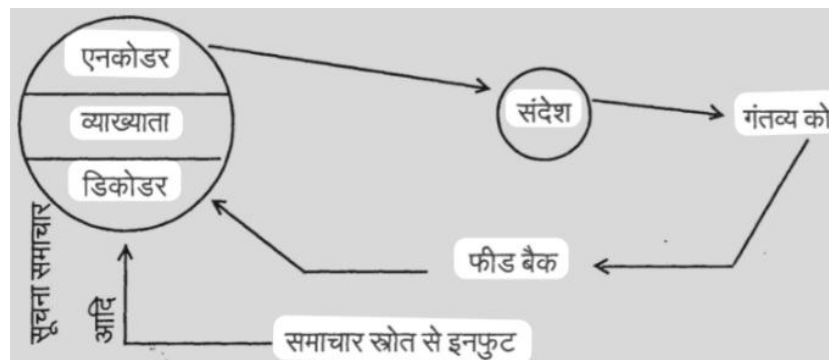


विलबर श्राम का संचार मॉडल:

विलबर श्राम ने अपनी पुस्तक 'द प्रोसेस एंड इफैक्ट्स ऑफ मास कम्युनिकेशन' में उन्होंने संचार प्रक्रिया संबंधी मॉडल को प्रस्तुत किया। उनके अनुसार कोई मीडिया संगठन जब संदेश प्रसारित करता है, तो उसे ग्रहण करने के बाद श्रोता स्वयं उसकी अपने ढंग से व्याख्या करते हैं। साथ ही वे पुनः अपने तरीके से उस संदेश की एन कोडिंग करके अन्य लोगो तक भेजते हैं। अन्य लोग भी अपने हिसाब से उसकी पुनः रिकोडिंग तथा एनकोडिंग करके दूसरों तक भेजते हैं। यह प्रक्रिया चलती रहती है। इसमें अनगिनत रिसीवर अर्थात् ग्रहिता है तथा हर एक द्वारा संदेश की व्याख्या तथा पुनर्व्याख्या की जाती है।'

इस मॉडल के अनुसार मास मीडिया का संदेश जब किसी को मिलता है, तो वह उसे अपने समूह के दूसरे लोगों के साथ शेयर करता है। प्रत्येक व्यक्ति एक साथ कई समूहों का सदस्य हो सकता है। हर छोटे या बड़े समूह के अंदर अन्य बहुत से समूह होते हैं। इस तरह संदेश इन समूहों तथा समाज में यात्रा करता है। इस प्रक्रिया में कोई आवश्यक नहीं है कि मीडिया ने जो प्रारंभ में संदेश भेजा, उसका ठीक वैसा ही प्रभाव हो। समूहों के आपसी विचार विमर्श

के जरिए उस संदेश का प्रभाव बदल भी सकता है। दूसरी ओर मीडिया संगठन को जनसमूह तथा अपने समाचार स्रोतों से फीड बैंक प्राप्त होता है, जिसके आधार पर वह तय करता है कि अब उसे किस प्रकार का संदेश प्रेषित करना उचित होगा। (विलंब-श्रम का जनसंचार मॉडल)



संचार प्रक्रिया का हब मॉडल - तीन प्रसिद्ध विद्वान ही बर्ट, अंगुरेट और बॉन ने मिलकर बनाया है। यह एक नया संचार प्रक्रिया संबंधित मॉडल विकसित किया। इसे उनके नाम के पहले अक्षरों से (एच., यू और बी.) से मिलकर बने शब्द 'HUB' अर्थात् 'हब' के नाम से जाना जाता है। इस मॉडल में तालाब में उठने वाली तरंगों की भाँति विभिन्न कारकों में निरंतर क्रिया प्रतिक्रिया की कल्पना की गई है। माना लीजिए यदि हम किसी तालाब में एक पत्थर या टुकड़ा फेंके तो पानी में चारों ओर गोला तरंगें उठती हैं। ये तरंगें पहले तो केन्द्र किनारे की ओर जाती हैं और पुनः किनारे से टकराकर केन्द्र की ओर लौटती हैं। इसी प्रकार संचार की प्रक्रिया में अनेक कारक हैं जो संदेश को दर्शक / श्रोता / पाठक तक भेजने और प्रतिक्रिया स्वरूप लौटने तक उसे प्रभावित करते हैं। इस मॉडल में संचार माध्यम केन्द्र में है क्योंकि इन्हीं के द्वारा संदेश दर्शक/ श्रोता पाठक तक प्रसारित होता है। बिना माध्यम के संचार संभव नहीं है।

'हब' मॉडल की संचार प्रक्रिया में जिन कारकों का उल्लेख है उनपर संक्षेप में चर्चा करना आवश्यक है:

संप्रेषक:

संचार प्रक्रिया में संप्रेषक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। एक विशेषज्ञ समूह इस कार्य को पूरा करता है। समाचार पत्रों में मुद्रण विशेषज्ञों और संपादकों / लेखकों / संवाददाताओं द्वारा किया जाता है। सभी मिला जुला कर संदेश या समाचार तैयार करते हैं। रेडियों और टेलीविजन में भी अभियांत्रिकी विशेषज्ञों के साथ-साथ कार्यक्रम निर्माण के विशेषज्ञ इस भूमिका का दायित्व निभाते हैं। वे ही संदेश को उपयुक्त ढंग से प्रेषित करते हैं।

सांकेतिक भाषा:

संचार या जन संचार की एक अलग भाषा होती है। यह दृश्य-श्रव्य रूप में हो सकती है। ध्वनि प्रभावों की सहायता से रेडियों में बिंब पैदा किए जाते हैं। फिल्मों में या टेलीविजन में कैमरे के इस्तेमाल से प्रभावी संप्रेषण संभव है। सांकेतिक भाषा संदेश को और भी प्रभावशाली बना देती है।

द्वारपाल:

संचार में संपादक प्रस्तुतकर्ता और निर्माता संदेशों के संपादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे द्वारपाल की भांति तथ्यों की छानबीन कर संदेश को प्रसारित करते हैं। द्वारपाल एक प्रकार की सकारात्मक शक्ति है जो संदेश को प्रभावी बनाने के लिए सामग्री में कौट-छौट करता है, पूरक सामग्री जोड़ने, तथ्यों को प्रमुखता देने या न देने का कार्य भाषागत, सौंदर्य, सामाजिक दबावों अथवा आचार संहिताओं के पालनार्थ आवश्यक कदम उठाती है।

संचार माध्यम:

समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि जनसंचार के प्रमुख माध्यम हैं। माध्यम उन्नत तकनीकी का प्रयोग कर संदेशों को त्वरित गति से बड़े पैमाने पर दूर-दूर तक भेजने का कार्य करते हैं।

नियामक:

संचार को नियमबद्ध रूप में चलाने के लिए कुछ शक्तियाँ कार्य करती हैं। जैसे न्यायालय, शासकीय आयोग, व्यावसायिक संगठन और जन दबाव, समूह आदि। ये शक्तियाँ संचार माध्यमों को प्रभावित करने की ताकत रखती हैं।

दर्शक / श्रोता / पाठक:

संचार में संप्रेषक की भांति दर्शक / श्रोता / पाठक भी महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि किसी भी संदेश का निर्माण व संप्रेषण इन्हीं के लिए होता है।

प्रभाव:

संचार का प्रभाव दो प्रकार का होता है विशिष्ट प्रभाव, जो संचार की विषय वस्तु की विशिष्ट दर्शक / श्रोता / पाठक वर्ग पर होता है। और सामान्य प्रभाव; जो संचार के कारण समाज पर पड़ता है।

माध्यमी तोड़-मरोड़ और शोर या बाधा (Noise) संचार प्रक्रिया में तकनीकी कारणों से बाधा आ सकती है। उदाहरण स्वरूप रेडियों में खरखराहट, टेलीविजन में अस्पष्ट चित्र अथवा आवाज और समाचार पत्रों में अस्पष्ट मुद्रण के कारण संदेश प्रभावित होता है। इसे 'शोर' या बाधा कहा जाता है। कभी-कभी ना समझी और गलत फहमी तथा सामाजिक, सांस्कृतिक विषमताओं के कारण भी संदेश में विद्रूपता का खतरा रहता है।

प्रतिक्रिया:

दर्शक / श्रोता / पाठक पर संदेश का क्या असर हुआ है, इसे जानने के लिए प्रतिक्रिया (फीडबैक) का अभ्यास संचार में किया जाता है। परस्पर या आमने सामने के संप्रेषण में प्रतिक्रिया हाव भाव के - माध्यम से तुरंत मिल जाती है। जन संचार में प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए दर्शक / पाठक श्रोता अनुसंधान का सहारा लिया जाता है। सर्वेक्षण इसमें काफी हद तक सहायक होता है।

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संचार प्रक्रिया में सामान्यतः एक सिरे पर वक्ता होता है, जो संदेश का स्रोत है, दूसरे सिरे पर प्राप्तकर्ता होता है, जो सूचना का लक्ष्य है। बीच में माध्यम होता है। इसी के द्वारा सूचना या संदेश प्राप्तकर्ता तक पहुँचता है। प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया के बिना संचार की प्रक्रिया अधूरी कही जाती है। इस प्रतिक्रिया को फीडबैक कहा जाता है।

munotes.in

जनसंचार का स्वरूपगत विश्लेषण

जनसंचार अर्थात् 'Mass Communication' एक व्यापक अवधारण है। भूमंडलीकरण के दौर में यह एक महत्वपूर्ण प्रौद्योगिक के रूप में उभरी है। और समूची दुनिया को बदलकर रख दिया। जनसंचार के मूल में 'संचार' शब्द है। संचार का अर्थ है- सूचना या जानकारी को दूसरों तक पहुँचाना। संचार यह शब्द Communication का हिंदी प्रतिशब्द है। अंग्रेजी का Communication लैटिन के Communis शब्द बना है। जिसका अर्थ to share to impart, to transmit अर्थात् आपस में बाँटना या देना अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना। मराठी में संचार का अर्थ आवाजाही या आवागमन होता है। कर्पूर्यु के लिए मराठी प्रतिशब्द है संचार बंदी। पर यहाँ संचार शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के Communication के अर्थ में ही करेंगे। संचार के लिए कम से कम दो लोगों का होना जरूरी है। संचार अकेले संभव नहीं, अगर हम इसके मूल अर्थ को भी ले तो संचार में 'चर' धातु से बना है जिससे चलना, चरना चरण जैसे शब्द विकसित हुए इसमें भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक या दो बिंदुओं के बीच गति का आभास होता है। संचार के भी दो छोर होते हैं। एक कहने वाला होता है तथा दूसरा सुननेवाला पर इसका तीसरा तत्व भी कम महत्वपूर्ण नहीं है और वह है भाषा संचार प्रक्रिया पूरी होने के लिए इन दो छोरों को जोड़ने वाली भाषा ऐसी होनी चाहिए जो दोनों की समझ में आती हो। यदि इनमें से किसी एक को भी उस भाषा का ज्ञान नहीं रहा तो संचार की प्रक्रिया पूरी नहीं हो पाएगी। लेकिन जब हम भाषा का जिक्र करते हैं तो भाषा के उन आयामों का भी जिक्र होना चाहिए जो मौखिक भाषा से अलग होते हैं। ट्राफिक सिग्नल का सिपाही अपने विशिष्ट हस्त संचालन से ट्राफिक नियमों को वाहन चालकों तक भलीभाँति संप्रेषित कर देता है। दो गूंगे व्यक्ति आपस में विशिष्ट संकेतों द्वारा अपने भावों को संप्रेषित करते हैं। इसी तरह संप्रेषण के अनेक माध्यम हो सकते हैं पर यह जरूरी है कि जिन दो व्यक्तियों के बीच यह संप्रेषण हो रहा हो उनके बीच के माध्यम एक समान होने चाहिए।

इस तरह संचार या संप्रेषण के लिए एक सामान्य माध्यम (Common Medium) होना जरूरी है, और आम तौर पर यह माध्यम एक सर्व सामान्य भाषा या उसका लिखित रूप हो सकता है। एक विशिष्ट भाषिक समुदाय के भीतर दो व्यक्तियों के बीच सूचानाओं, भावनाओं, संदेशों आदि के आदान प्रदान को हम संचार कह सकते हैं।

जनसंचार (Mass Communication):

जनसंचार शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से संचार में जन के योग से बना है। संचार शब्द एक बारगी सीमित अर्थ का वाचक हो सकता है, परंतु इसमें जन 'अर्थात्' 'Mass' जुड़कर इसको व्यापकता प्रदान कर देता है। इस प्रकार जन संचार विशाल जन समुदाय तक संदेशों को संप्रेषित करता है। इस शब्द का प्रयोग १९३० के दशक के अंतिम दौर से प्रारंभ हुआ। वर्ष १९३९ में हर्बर्ट ब्लूमर ने 'मास' (Mass) या जन शब्द को भीड़ समूह और जनता से भिन्न मानकर कहा कि जन (Mass) इन सबसे भिन्न अर्थ रखता है जन का अर्थ

उस अर्थ से अर्थात् उस दृष्टि से वह बृहत जन समुदाय है। जिसे संदेश प्रेषित किया जाता है जो किसी भी रूप में एकत्र न होकर बिखरा हुआ होता है।

जनसंचार को समझने के लिए सबसे पहले कुछ बुनियादी चीजें स्पष्ट कर लेते हैं। रंगमंच पर होने वाला नाटक और उसके दर्शक एक निश्चित समय और निश्चित स्थान में उसका आस्वाद लेते हैं या घर में या संसद होने वाली बहस जन संचार का हिस्सा नहीं बनती क्योंकि उसके बोलने व सुनने वाले उसी विशिष्ट स्थान और समय में उसे देख-सुन रहे होते हैं। दूरदर्शन के स्टुडियो या सिनेमा के सेट पर चल रही सुटिंग को वहीं बैठ कर मॉनिटर या कैमरे की स्क्रीन देखना जन संचार नहीं कहलाएगा। लेकिन संसद में होने वाली बहस या घर में चल रही बातचीत या दूरदर्शन के स्टुडियो में होनेवाली सुटिंग यदि उसी समय पर उस स्थान से अलग कहीं और किसी ओर माध्यम से देखी सुनी या पढ़ी जा सके तो यह जन संचार कहलाएगा और जिस माध्यम से वह उस स्थान विशेष से बाहर निकल कर अन्य लोगों तक पहुँचेगा उसे उसे जनसंचार माध्यम कहा जाएगा। इतना ही नहीं जिस जगह पर वह घटना हो रही है यदि उसी जगह पर उस घटना के घट जाने के बाद किसी और माध्यम से उस घटना को दुबारा देखा सुना या पढ़ाया सके तो उसे भी जन संचार कहा जाएगा। थोड़े पारिभाषिक शब्द तो कोई भी व्यक्ति, वस्तु, घटना, अपने देशकाल को अतिक्रमिक करके जिस किसी माध्यम से जीवित रहती है, संप्रेषित होती है, उस माध्यम को जन संचार माध्यम और उस प्रक्रिया को जन संसार कहा जाता है। कोई गायक किसी सभागृह में गरिहे हो तो सभागृह के श्रोताओं के लिए भले ही श्रोत्रा हजारों में हो, वह जनसंचार नहीं माना जाएगा। लेकिन वही गायन रेडियों पर प्रसारित होता हुआ वहाँ से दूर कहीं सिर्फ एक व्यक्ति तक भी पहुँच रहा हो तो उसे जन संचार कहा जाएगा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जन संचार में जन का अर्थ बहुत सारे लोग नहीं होते बल्कि बहुत सारे लोगों तक पहुँचाने वाले माध्यम के द्वारा पहुँचना होता है।

(जनसंचार का स्वरूप गत विश्लेषण) जनसंचार का प्रारंभ मानव के विकास के साथ माना जाता है। परंतु आधुनिक जनसंचार को हम प्रिंट मीडिया के उदय से जोड़ते हैं। जनसंचार की आवश्यकताओं के विकास के साथ ही जनसंचार के स्वरूप का भी विकास होता गया। प्रिंट लिपि विकास के पहले जलसंचार हमें परंपरागत रूपों में मौजूद दिखाई देता है। जैसे- जैसे हमने विकास किया, वैसे वैसे जनसंचार के स्वरूप में परिवर्तन होते गए। सामान्य वार्तालाप और पत्र से लेकर समाचार पत्रों, रेडिओ, टेलीविजन, टेलीफोन, मोबाइल फोन, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि जनसंचार के माध्यम हैं। इनका स्वरूपगत विश्लेषण किया जा सकता है।

परंपरागत जनसंचार:

परंपरागत जनसंचार वे होते हैं जिसका उपयोग मानव समाज आदि काल से करता आया है। इसका मानव जाति के विकास से गहरा संबंध है। विशेष समूह की सामूहिक अभिव्यक्ति इनका क्षेत्र है। इसमें सूचना या संदेश से अधिक शिक्षा एवं मनोरंजन का भाव होता है। लोक परंपरा जनसंचार के स्तर पर जितने सहज और स्वीकार्य है उतने ही जन सामान्य के निकट है। इस रूप में परंपरागत जनसंचार जनसमुदाय के विशालतम रूप तक जुड़ा है। परंपरागत जन संचार के रूप में लोकगीत, लोकनाट्य, लोकनृत्य, वार्ता, तमाशा, भवाई,

नौटंकी, कठपुतली, ख्याता, जत्रा, कथा, गायन आदि की अबाध परंपरा उपलब्ध है। ये सभी जाति, क्षेत्र, भाषा, संस्कृति की भिन्नता और भौगोलिक सीमाओं में रहते हुए भी जन संचार का सशक्त एवं सक्षम माध्यम है। वैज्ञानिक साधनों के विकास होने पर भी पारंपारिक जन संचार शिथिल नहीं हो सके है सच्चाई यह है कि पारंपारिक जनसंचार लोक संस्कृति की देन है। दुनिया के किसी भी कोने में चले जाएँ चाहे वह कितना ही समृद्ध और वैज्ञानिक रूप से समृद्ध क्यों न हो उसकी अपनी लोक परंपरा होती है जो जनसंचार का काम करती है।

परंपरागत जनसंचार माध्यम के रूप में वार्ता को लिया जा सकता है। इसमें वार्ताकार और श्रोता दो पक्ष होते हैं। जिनमें परस्पर 'फीडबैक' की प्रक्रिया व्यक्त होती थी। जैसे महाभारत युद्ध के समय श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया गीता का उपदेश इसका बहुत अच्छा उदाहरण है।

डॉ. श्याम परमार एवं एच. के. रंगनाथ ने परंपरागत जन संचार की निम्न विशेषताओं को लक्ष्य किया है।

- १) यह स्थानिय एवं बेहद करीबी है और देश के हर क्षेत्र के जन समूह के साथ एकदम तालमेल बना लेते हैं।
- २) इनका प्राथमिक संबंध भावनाओं से होता है, न कि बुद्धिमत्ता से और इनमें प्रेरक संचार तुरंत प्रतिक्रिया की ज्यादा संभावनाएँ होती हैं।
- ३) यह एक समुदाय से संबंध रखते हैं न कि किसी व्यक्ति विशेष या सार्वजनिक उद्योग से। इनकी गुणवत्ता तथा मात्रा पर नियंत्रण के लिए कोई संगठित संस्था, व्यवस्था या व्यक्ति नहीं है।
- ४) इनमें जनता की भाषा, मुहावरों और संकेतों का प्रयोग होता है। इसके कारण इनमें अधिक भागीदारी मिलती है और ये सामुदायिक अनुष्ठानों के रूप में आयोजित होते हैं।
- ५) पारंपरिक जनसंचार अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं इन्हें आसानी से ग्रहण किया जा सकता है।

आधुनिक जनसंचार:

आधुनिक जनसंचार वैज्ञानिक प्रगति और टेक्नोलॉजी की देन है। प्राचीन काल में मनुष्य छोटे-छोटे जन समूहों में निवास करते थे। उस समय वे आमने सामने के संपर्क में रह सकते थे। इसलिए उस - समय परंपरागत जन संचार द्वारा काम चल जाता था। वर्तमान समय में अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी प्रगति ने दुनिया को एक गांव के रूप में परिवर्तित कर दिया है। ऐसे में लाखों किलोमीटर दूर रहने वाले विभिन्न जाति, वर्ग, संप्रदाय और भाषाओं के लोग एक साथ संचार करने में समर्थ हो गए हैं। इस प्रकार प्रौद्योगिकी क्रांति ने आधुनिक जन संचार को जन्म दिया है। आधुनिक जनसंचार के उपकरणों की मदद से सूचना संदेश को एक साथ ही व्यापक समाज तक पहुँचाया जा सकता है।

जॉन गुटेनबर्ग द्वारा १४४५ में मुनेबल टाइप अक्षरों के आविष्कार विचारों और सूचनाओं को मुद्रित रूप में एक साथ व्यापक लोगों तक प्रसारित करना संभव हो गया। इसने जनसंचार को वास्तविक रूप में संभव बनाया। साथ ही १९२० के दौर में रेडियो तथा १९४० के आसपास टेलीविजन या दूरदर्शन के विकास ने इलेक्ट्रॉनिक जन संचार के रूप में मानव समाज को 'जबरदस्त उपकरण प्रदान किया। इससे पहले फिल्म के रूप में एक महत्वपूर्ण जनसंचार माध्यम विकसित किया जा चुका था। इस प्रकार रेडियो टी.वी. तथा फिल्मों ने मुद्रित माध्यम की सभी सीमाओं को तोड़ते हुए व्यापक लोगों तक प्रभावी एवं शीघ्र पहुँच बनाने तथा पूरी दुनिया में संदेश के प्रसार की अपनी क्षमताओं के जरिए जनसंचार का स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया।

आधुनिक जनसंचार का स्वरूप:

मुद्रित जनसंचार:

मुद्रित जनसंचार वे हैं, जिनके द्वारा सूचना का संचार मुद्रित रूप में होता है। आम बोलचाल की भाषा में इसे प्रिंट मीडिया कहा जाता है। मुद्रित जन संचार का विकास मुद्रण कला के आविष्कार से संबंधित है। मुद्रण के आविष्कार के साथ ही समाचारपत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। इसके द्वारा विचारों और सूचनाओं को मुद्रित रूप में एक साथ व्यापक लोगों तक प्रसारित करना संभव हो पाया। इसमें हर एक व्यक्ति के पास एक समान रूप में संचार पहुँचता है। मुद्रित जनसंचार में समाचार, पेंफलेट्स, पोस्टर आदि को मुद्रित करके लोगों तक सूचनाओं को पहुँचाया जाता है। समाचार पत्र पत्रिकाएँ सच्चे अर्थों में मुद्रित जनमाध्यम हैं, जो आज भी २१ वीं शताब्दी में सर्वाधिक विश्वसनीय जनसंचार का रूप है क्योंकि इसमें समाचारों अर्थात् सूचनाओं का विश्लेषण, विवेचन और उनके प्रभाव के साथ ही भविष्य की दिशाएँ भी निश्चित करती हैं।

सामाजिक एवं राजनीतिक जागरूकता लाने में भी मुद्रित जनसंचार की भूमिका असंदिग्ध है। मुद्रित सामग्री को पाठक अपनी सुविधा के अनुसार पढ़ सकता है। हर व्यक्ति का अपना मानसिक स्तर होता है। अतएव मुद्रित सामग्री को पाठक अपने मानसिक स्तर के साथ पढ़ने की गति पर अपना नियंत्रण भी रख सकता है। मुद्रित सामग्री में चिंतन - मनन के भरपूर अवसर की संभावना है। परंपरागत जन संचार की तुलना में मुद्रित माध्यम की पहुँच का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है।

इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार का स्वरूप:

आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति ने संचार के क्षेत्र में १९२० के लगभग रेडियो तथा १९४० के आसपास टेलीविजन के विकास ने इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यम के रूप में क्रांति ला दी। अब घर बैठे ही सूचना का आदान प्रदान संभव हो गया। रेडियो पहला जनसंचार का माध्यम है जिसमें इलेक्ट्रॉनिक टेक्नोलॉजी का प्रयोग हुआ। यह एक श्रव्य माध्यम है। इसमें ध्वनि तरंगों के द्वारा आकाशवाणी से हजारों मील दूर बैठे श्रोता अपने रेडियो सेट पर सूचना समाचारों का संप्रेषण सुन सकते हैं। इस माध्यम ने जन संचार के क्षेत्र में नयी क्रांति कर दी। क्योंकि मुद्रित माध्यमों की पहुँच सीमित क्षेत्रों तक ही थी। और यह सिर्फ साक्षर या पढ़े लिखे लोगों का माध्यम भर था जबकि रेडियो के द्वारा साक्षर और निरक्षर दोनों ही

लाभांवित्र होने लगे । इसके द्वारा कम समय में अधिक से अधिक लोगों तक सूचनाओं की पहुँच संभव हो सकी । मैकब्राइड के अनुसार, "विकासशील देशों में रेडियों ही असली जनसंचार का माध्यम है और जन संख्या के बड़े भूभाग तक इसकी पकड़ है । दूसरा कोई ऐसा माध्यम नहीं है जो सूचना शिक्षा, संस्कृति और मनोरंजन के रूप में उस कुशलता के साथ पहुँचने की क्षमता रखता हो ।" -

भारत में लगभग ९ वे दशक तक आकाशवाणी सरकारी लिपण में पूर्णतः था । उदारीकरण के बाद अब विभिन्न गैर सरकारी F.M. चैनलों के माध्यम से मनोरंजन तथा सूचना का प्रसारण करते हैं ।

रेडियों, इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार का श्रव्य माध्यम है जबकि फिल्म और टेलीविजन, वीडियों कैसेट, सीडी आदि दृश्य - श्रव्य जनसंचार के अंतर्गत आते हैं । इन जनसंचार माध्यमों में ध्वनि के साथ-साथ चित्रों के द्वारा सूचना समाचार संदेश प्रेषित किए जाते हैं । जन संचार का यह स्वरूप आधुनिक विज्ञान प्रौद्योगिकी के विकास द्वारा संभव हुआ । एक समय फिल्म केवल मनोरंजन का ही माध्यम नहीं था, बल्कि इसके द्वारा समाज में शिक्षा का प्रसार भी किया जाता था । जड़ रुढ़ियों के विरुद्ध चेतना का प्रसार भी किया जाता था जाति-पाति, छुआछूत, अंधविश्वास, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों शोषण और मानव अधिकारों के विरुद्ध जागरूकता जैसे अभियानों में फिल्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।

सत्यजीत रे की फिल्में, मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ पर बनी फिल्में समाज में नयी चेतना जागृत करने का प्रमुख साधन रही । लेकिन समय के साथ यह जनसंचार का माध्यम आज प्रमुख रूप से मनोरंजन का माध्यम बनकर रह गया है ।

टेलीविजन के आविष्कार ने फिल्मों की लोकप्रियता में जबरदस्त संध लगाई और समय के साथ जनसंचार का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा । इसमें घर बैठे, सूचना समाचार, शिक्षा मनोरंजन से भी कुछ एक ही जगह मिला जाता है । इसकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि यह काफी सस्ता है और इसमें कार्यक्रमों की विविधता भी अपने पूर्ववर्तियों से अधिक है ।

२० वीं शताब्दी में बीडियों काप्सैक्ट डिस्क ने टेलीविजन से मिलकर एक नयी सामाजिक लोकप्रियता प्राप्त करता है । छोटे से प्लास्टिक से निर्मित डिस्क पर अधिक और व्यापक सामग्री का भंडार संभव होना ही इसकी प्रधान विशेषता है । इसके द्वारा कोई भी सूचना अधिक से अधिक मात्रा में एक स्थान से लाखों मील दूरी तक आसानी से ले जाया जा सकता है ।

नव इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार:

नव इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार उत्तर आधुनिक युग की महत्तम उपलब्धि व मनुष्य को विज्ञान के द्वारा दिया गया श्रेष्ठतम उपहार है । इसमें उन्नत टेक्नोलॉजी और नवीनतम प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता है । कम्प्यूटर नेटवर्क और उसे जोड़ने वाली इंटरनेट सेवा व इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार के रूप है । इनके द्वारा आज संपूर्ण दुनियाँ को एक गांव के रूप में संक्रमित किया जा चुका है । आज पूरी दुनिया के किसी भी कोने में बैठ कर आप किसी भी व्यक्ति से जैसे वह आपके सामने बैठा है वैसे बात कर सकते हैं और उसे देख भी सकते हैं ।

सच तो यह है कि इंटरनेट ने हमारे आधुनिक जन संचार माध्यमों को और भी प्रगत कर दिया है। उपग्रह तथा कम्प्यूटर प्रणाली ने समाचार पत्रों का लेखा - जोखा ही बदला दिया है। शब्द संसाधन (Word- Processing) ने समाचार पत्र कार्यालयों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आज इनकी सहायता से मुद्रित माध्यम का भी स्वरूप बदल गया है। अब त्वरित गति से एवं सुंदर रूप में समाचार पत्र छपने लगे हैं। बस आपके सिर्फ क्लिक बटन की दबने भर की देरी है। दुनिया भर की जानकारी, सूचना आपके सामने उपस्थित हो जाती है।

जनसंचार के स्वरूप को मार्शल मैक लूहान के शब्दों में स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है। जनसंचार तकनीकी उत्पादन तथा मनुष्य के शरीर का विस्तार है। जैसे जूता पैर का विस्तार है। संचार माध्यम मनुष्य का विस्तार करते हैं। यह अनेक प्रकार से होता है। जैसे बोलकर, लिखकर, सड़क, वस्त्र, अर्थ, मुद्रण, फोटो, समाचार पत्र, टेलीफोन, रेडियो, फिल्म एवं टेलीविजन आदि। उनके अनुसार सामाजिक परिवर्तन के लिए संचार माध्यम उत्तरदायी है।

अतः कहा जा सकता है कि नित - नवीन टेक्नोलॉजी के विकास के चलाते दुनिया में जनसंचार का स्वरूप दिन व दिन बदल रहा है। साथ ही इन जन संचार माध्यमों ने समाज की दिशा बदल दी है। ये माध्यम ही एक प्रकार से समाज दिशा भी बदल रहे हैं। हम निरंतर सूचनाओं ज्ञान और समाचारों की एक विविधता पूर्ण; आकर्षक एवं मनोरंजनमयी दुनिया की ओर ले जा रहे हैं। यह सही अर्थों में मनुष्य का विस्तार ही है।

जनसंचार की अवधारणा

जनसंचार की अवधारणा भूमंडलीकरण की देन है आधुनिक औद्योगिक और तकनीकी विकास ने इसे सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। प्राचीन काल में जब लोग छोटे-छोटे समूहों में रहा करते थे, तब आमने सामने के संपर्क से लोग एक दूसरे से जुड़ते थे परंतु आज स्थिती बदल गई है। लाखों-करोड़ों लोगों तक सूचनाएँ एक साथ और अत्यंत शीघ्रता से जनसंचार माध्यमों की सहायता से पहुँच जाती है।

जनसंचार की अवधारणा को समझने के लिए जनसंचार को संक्षेप में स्पष्ट करना आवश्यक है। 'जनसंचार' शब्द 'जन' और 'संचार' के योग से निर्मित है। जन अर्थात् (Mass) और संचार अर्थात् (Communication) - जन से यहाँ आशय विशाल जन समूह से है। और संसार का आशय सूचना या जानकारी का संप्रेषण इस प्रकार जनसंचार का सामान्य अर्थ विशाल जन समुदाय तक सूचना या जानकारी को संप्रेषित करना है। हर्ट ब्लूमर ने जन "Mass" शब्द को भीड़ समूह से भिन्न मानकर कहा कि जन "Mass" इन सबसे अलग अर्थ रखता है यहाँ जन का अर्थ उस दृष्टि से वृहत जन समुदाय के लिए प्रमुख किया जाता है जिसे संदेश संप्रेषित किया जाता है।

'संचार' प्रत्येक प्राणी की बुनियादी व स्वाभाविक प्रकृति व प्रवृत्ति है। इसके माध्यम से वह अपनी जानकारी, भावना, विचारों आदि का आदान-प्रदान करते हैं। इसमें भाषा का भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। भाषा का चाहे जो रूप हो मौखिक या लिखित इस प्रकार सूचना विचारों, भावनाओं को एक प्राणी से दूसरे प्राणी तक संप्रेषित करना ही संचार है। प्रारंभ में संचार का प्रमुख साधन सांकेतिक तथा मौखिक भाषा भी जो बाद में लिपि के आविष्कार के साथ लिखित हो गई।

जनसंचार शब्द का प्रयोग १९३० के आसपास होना शुरू हुआ। उस समय किसी यंत्र का जनमाध्यम के द्वारा संदेश या सूचना को एक विशाल जन समूह तक भेजे जाने का जनसंचार कहा गया। जैसे समाचारपत्र, रेडियों, टी.वी. आदि। आम तौर पर जनसंचार तथा जन माध्यम को एक ही समझा जाता है। परंतु जन संचार एक प्रक्रिया है, जबकि जन माध्यम इसका साधन है।

लेक्सीकॉन युनिवर्सल इनसाइक्लोपिडिया में जनसंचार की व्याख्या इस प्रकार है "कोई भी संचार, जो लोगों के महत्वपूर्ण रूप से व्यापक जन समूह तक पहुँचता हो जनसंचार है।"

वार्कर ने जनसंचार को इन शब्दों में परिभाषित किया है - "जनसंचार श्रोताओं के लिए अपेक्षा कृत कम खर्च में पुनर्उत्पादन तथा वितरण के विभिन्न साधनों का इस्तेमाल करके किसी संदेश को व्यापक लोगों तक, दूर - दूर तक फैले हुए श्रोता तक रेडियों, टी.वी. अखबार जैसे किसी माध्यम द्वारा पहुँचाया जाता है।"

डेनिस मैक्वेल ने जनसंचार की विशेषताएँ इस प्रकार बताई हैं:

- (१) जनसंचार के लिए औपचारिक एवं व्यवस्थित संगठन का होना जरूरी हैं, क्योंकि संदेश को किसी माध्यम द्वारा विशाल जनसमूह तक पहुँचना होता है।
- (२) यह संचार विशाल अपरिचित जनसमूह के लिए किया जाता है।
- (३) जन संचार के माध्यम सार्वजनिक होते हैं इनमें भाषा अथवा वर्ग के लिए कोई भेदभाव नहीं होता।
- (४) श्रोताओं की संरचना विजातीय होती है। वे विभिन्न तरह के संस्कृति वर्ग एवं भाषा से संबंधित होते हैं।
- (५) इस संचार द्वारा दूर - दराज के क्षेत्रों में एक ही समय पर संपर्क संभव है।

जनसंचार की अवधारणा मूलतः संचार से ही मूर्त रूपाकार ग्रहण करती है। अतः संचार वह प्रक्रिया है जो एक से अधिक समूह के लोगों को सूचना या जानकारी दी जाती है। संचार की प्रक्रिया में शामिल लोगों अथवा संख्या के लिहाज से जनसंचार के निम्नलिखित प्रकार माने जा सकते हैं।

- वैयक्तिक या आंतरवैयक्तिक संचार
- अंतर्वैयक्तिक संचार समूह संचार
- जनसंचार

अंतर्वैयक्तिक संचार वैयक्तिक स्तर की संचार प्रक्रिया है। अंतर्वैयक्तिक संचार में सूचना का आदान प्रदान प्रत्यक्ष एवं तत्काल होता है। समूह संचार में एक ही स्थान पर एकत्रित समूह से वार्तालाप अथवा संवाद के माध्यम से संचार होता है। जबकि जन संचार में एक से अधिक विभिन्न समूहों, व्यक्तियों को विभिन्न स्थान पर सूचना या जानकारी प्रदान की जाती है।

(१) वैयक्तिक संचार या अंतर्वैयक्तिक संचार:

इस प्रकार का संचार एक ही व्यक्ति अपने आप में या आपसे करता है। यह स्वयं मनुष्य के भीतर का संचार है। इसे मनुष्य का व्यक्तिगत चिंतन मनन भी कहते हैं। मनोविज्ञान में ऐसा माना जाता कि सभी प्रकार के संचार में मस्तिष्क का संबंध शरीर के समस्त अंगों से होता है। ज्ञानेन्द्रियों के जरिए वह उनमें संचार करता है। मस्तिष्क ही नहीं बल्कि अंगों से भी संदेश ग्रहण करता है; बल्कि संदेश प्रेषित भी करता है। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि यदि अंतर्वैयक्तिक संचार न हो तो किसी भी प्रकार का संचार संभव न हो पाएगा।

मैथिली शरण गुप्त ने 'पंचवटी' में लक्ष्मण के मन में उमड़-धुमड़ रहे विचारों का वर्णन करते हुए लिखा है- कोई पास न रहने पर भी जन मन मौन नहीं रहता, आप आप से कहता है, आप आप की ही सुनता है।

प्रस्तुत उदाहरण अंतर्वैयक्तिक संचार का उदाहरण है। हर व्यक्ति आत्मचिंतन के दौरान अपने आपसे विचार विमर्श करता है; अकेले में, दूसरों के बीच, बाजारों में, कार्यालयों में हर समय यह प्रक्रिया चलती रहती है। यह प्रक्रिया आत्मसंतोष देने के अतिरिक्त हमें अपने विचारों की सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत करने में भी सहायता देता है।

(२) अंतर्वैयक्तिक संचार:

व्यक्ति-व्यक्ति के बीच संपर्क, बातचीत टेलीफोन वार्ता, अथवा किसी एक व्यक्ति द्वारा कुछ लोगों के बीच विचार विमर्श अंतर्वैयक्तिक संचार कहलाता है। कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरवों और पांडवों की सेना के बीच खड़े अर्जुन कृष्ण के बीच हुए संवाद को परस्पर संप्रेषण का आदर्श उदाहरण कहा जा सकता है। अंतर्वैयक्तिक संचार में दो या तीन व्यक्तियों के बीच सीधा (संवाद) संचार होता है। घर में माँ - बाप, भाई - बहन, नौकर - चाकर और दोस्त यारों से आपसी विचार विमर्श रोज ही करते हैं। यह संचार की दो तरफा प्रक्रिया है। इसमें फीडबैक तुरंत मिलता है। इसमें संचारक चर्चा प्रारंभ होते ही फीडबैक प्राप्त करते हुए अपनी बात आगे बढ़ाता है।

यह पारस्परिक अंतर्क्रिया को प्रेरित करता है। इसमें संचारक और प्राप्त करता एक दूसरे के आमने- सामने होते हैं। न सिर्फ शरीर से बल्कि भावनाओं से भी।

- इसकी अपील भावनात्मक होती है और इसमें प्राप्त कर्ता को प्रभावित करने का काफी अवसर होता है।
- इसमें फीडबैक तुरंत और बेहतर मिलता है।
- इसमें बाधा की संभावना कम होती है।
- यह अनौपचारिक होता है, इसमें कोई नियम नहीं होते हैं, कोई बना बनाया ढांचा नहीं होता है। इसलिए यह स्वाभाविक और सहज संचार है।
- इसमें संचारक प्राप्त कर्ता के विषय में काफी कुछ जानता है। अतः उसकी स्थिति के अनुसार संचार करके उसे समगत किया जा सकता है।

अंतर्वैयक्तिक संचार का यह लाभ है कि संचारक तुरंत यह जान जाता है कि प्राप्तकर्ता:

- उसकी बात समझ रहा है या नहीं, वह उसकी बात का सही अर्थ लगा पा रहा है या नहीं।
- संचार कर्ता की बात पर प्राप्तकर्ता की क्या प्रतिक्रिया है ? (फीडबैक) -

समूह संचार:

"जब व्यक्तियों का एक समूह आमने सामने विचार विमर्श, गोष्ठी, भाषण, सभा आदि द्वारा विचारों का - आदान-प्रदान करता है तो उसे समूह संचार कहा जाता है। इसमें प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया मिलती है पर उतनी स्पष्ट नहीं जितनी की अंतर्वैयक्तिक संचार में। इसमें प्रायः औपचारिक एवं संस्थाबद्ध संचार होता है। इसमें व्यक्तित्व महत्वपूर्ण ढंग से खुलकर सामने

आता है। जन सभा, संगोष्ठी, वाद विवाद, पारिचर्चा नृत्य-नाट्य, भाषण कार्यालयी बैठक आदि इसके उदाहरण हैं।

समूह संचार की विशेषताएँ:

(१) समूह संचार में सीमित मात्रा में व्यक्तियों की भागीदारी होती है।

- समूह के सदस्यों के बीच विचारों एवं अनुभवों के परस्पर आदान प्रदान का अवसर मिलता है। उनमें निकटता के अवसर के साथ अपने पक्ष का अनुभव संभव है।
- समूह संचार में संचार प्रक्रिया प्रत्यक्ष होती है। - समूह संचार में समूह के सदस्य की समस्या के मूल उद्देश्यों के अनुरूप संदेश प्रेषित करते हैं।

इस प्रकार समूह संचार में संचारक और प्राप्तकर्ता के मध्य आमने सामने संचार प्रक्रिया होती है। पूरा का पूरा प्राप्तकर्ता समूह पूर्व निश्चय या सूचना के आधार पर एकत्रित होता है या समूह अपने मंतव्य के लिए विशेष संप्रेषक तक जाता है। समूह संचार का प्रत्येक सदस्य संप्रेषक से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अवगत होता है। अतः इसमें सूचना का संदेश एकत्रित जन समूह के लिए प्रेषित किया जाता है।

(३) जनसंचार:

जब कोई भी सूचना या जानकारी को व्यापक जन समूह तक पहुँचाया जाता है तो उसे जनसंचार कहते हैं। इसके अंतर्गत दुनिया भर में फैले दूर-दूर तक बिखरे तमाम तरह के समाज के लोगों तक सूचना या संदेश को पहुँचाया जाता है। अंतर्वैयक्तिक, वैयक्तिक तथा समूह संचार के लिए माध्यम महत्वपूर्ण नहीं था परंतु जन संचार के लिए किसी न किसी माध्यम या साधन की अनिवार्यता होती है। जैसे किसी एक स्थान पर क्रिकेट खेल खेला जाता है उस खेल को उसी समय पूरी दुनिया में रेडियों, टेलीविजन, इंटरनेट आदि संचार के माध्यम द्वारा श्रोता या दर्शक सुन रहे हो या देख रहे हैं। जनसंचार में मुद्रित माध्यम, जैसे समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियों, टेलीविजन, फिल्म, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि माध्यम के रूप में कार्य करते हैं।

जनसंचार की विशेषताएँ:

- जनसंचार में संचारक किसी माध्यम का उपयोग कर विशाल और विषम प्रकृति के समुदाय तक अपना संदेश प्रेषित करता है।
- संदेश या सूचना का सार्वजनिक प्रसारण इसमें गोपनीयता संभव नहीं।
- फीडबैक अप्रत्यक्ष तथा देर से।
- आम तौर पर एक तरफा संचार
- मीडिया इसमें अपनी जरूरत के अनुसार श्रोता का चुनाव करता है। उदा. शिक्षितों के लिए अखबार।
- श्रोता अपनी आवश्यकता के अनुसार माध्यम का चुनाव करता है।

- इसमें संदेश का संप्रेषण समाज के प्रति जिम्मेदार लोगो द्वारा किया जाता है।
- प्रभावशाली जनसंचार के लिए उसमें निम्नलिखित तत्वों का होना अनिवार्य माना जाता है।

स्पष्टता:

जनसंचार में सूचना, संदेश के लिए विचारों में स्पष्टता अनिवार्यतः होनी चाहिए। उसमें किसी प्रकार की शंका नहीं होनी चाहिए। कभी - कभी अस्पष्टता के चलते सूचना जानकारी भ्रामक हो जाती है।

पूर्णता:

जनसंचार में जानकारी या सूचना का पूर्ण होना जरूरी माना जाता है। यदि सूचना या जानकारी पूर्ण नहीं होगी तो उसे स्वीकार करने में कठिनाई होती है। ऐसे में सही जानकारी श्रोताओं या दर्शकों को तक नहीं पहुँच सकती है। रोचकता जनसंचार में सूचना अथवा जानकारी का प्रस्तुतीकरण रोचक आकर्षक, सरल भाषा में एवं सुबोध शैली में किया जाना चाहिए, जिससे उसमें रोचकता बनी रहती है।

संक्षिप्तता:

जनसंचार में सूचनाओं का संक्षिप्त होना आवश्यक माना जाता है क्योंकि यदि सूचना या जानकारी संक्षिप्त होती है तो वह पाठकों को अधिक समय तक याद रहती है तथा उसका सही उपयोग होता है।

निरंतरता:

जनसंचार में सूचना या जानकारी को बार-बार दुहराया जाता है। परिणामस्वरूप श्रोता, दर्शक या पाठक पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है।

उद्देश्य पूर्ण जनसंचार में सूचना या संदेश समूह विशेष के कल्याण से संबंधित तथा उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए। क्योंकि जनसमूह का मनोविज्ञान ऐसा होता है कि वह उन्हीं चीजों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दिलचस्पी लेता है जिसमें उसका लाभ संबंधित होता है।

जागरूकता:

जनसंचार से संबंधित व्यक्ति को जनसमूह की प्रतिक्रिया के प्रति जागरूक एवं सजग रहना जनसंचार की आवश्यक शर्त मानी जाती है।

इस प्रकार जनसंचार अत्यंत प्रभावशाली होता है; जो समूह के बीच सीधा संपर्क स्थापित कर जन आकांक्षाओं को पूर्ण करता है तथा जन समूह के कल्याण के लिए अग्रेसित होता है।

जनसंचार की प्रक्रिया समूह संचार की भाँति आमने सामने या प्रत्यक्ष रूप में नहीं घटती है। इसके कुछ घटक तत्व होते हैं जिसके माध्यम से यह घटित होती है। प्रथम संप्रेषक अर्थात् (Communication) दूसरा संदेश (Message) तथा तीसरा संदेश प्राप्त करने वाला या ग्रहिता जिसे (Receiver) कहते हैं। जनसंचार की प्रक्रिया में सामान्यतः दो छोर होते हैं

एक छोर पर वक्ता होता है जो सूचना का स्रोत है। दूसरे छोर पर सूचना को प्राप्त करने वाला होता है, तो सूचना का लक्ष्य है। बीच में होता है माध्यम इस माध्यम के द्वारा ही सूचना या संदेश को ग्रहीता या (Receiver) तक पहुंचाता है। इस पूरी प्रक्रियामें गृहीता की प्रतिक्रिया या (Feedback) की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यही फीडबैक जन संचार को प्रभावी बनाता है।

जनसंचार की यह प्रक्रिया आधुनिक युग में अनेकानेक माध्यमों द्वारा संपन्न होती है। जैसे- जैसे हमने वैज्ञानिक प्रगति की है विज्ञान ने हमें नित - नवीन सुविकसित संचार माध्यम प्रदान किए हैं। सामान्य वार्तालाप से लेकर टेलिफोन, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि संचार के माध्यम हैं जो सूचना के प्रसार का कार्य करते हैं। इस रूप में जनसंचार एक गतिशील प्रक्रिया है जो संबंधों पर आधारित होती है। वह संबंध और व्यक्तियों को जोड़ने का एक हथियार है एक व्यक्ति को दूसरे से - एक व्यक्ति को एक समूह से, एक समूह को दूसरे से और एक देश को दूसरे देशों से जोड़ने का काम भी कर करता है।

अतः हम कह सकते हैं कि जनसंचार की अवधारणा वस्तुतः आधुनिक युग की देन है। वर्तमान औद्योगिक एवं तकनीकी विकास ने इसे सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। प्राचीन समय में जब लोग छोटे- छोटे समूहों में निवास करते थे, तब आमने सामने के संपर्क से एक दूसरे से जुड़े रहते थे। वर्तमान समय में स्थिति बिल्कुल बदल गई है लाखों करोड़ों तक सूचनाएं एक साथ और त्वरित गति जनसंचार माध्यमों द्वारा पहुँचायी जाती है। यह तकनीकी क्रांति का परिणाम है।

जनसंचार माध्यम के विविध रूप

जनसंचार माध्यम वे साधन हैं जिनकी सहायता से संदेश बृहत जनसमूह तक प्रेषित किए जाते हैं। संचार की प्रक्रिया विभिन्न प्रकार के माध्यमों द्वारा संपन्न होती है। जैसे-जैसे हमने औद्योगिक प्रगति की है, विज्ञान ने हमें नित - नवीन सुविकसित संचार माध्यम प्रदान किए हैं। हर नया आविष्कार संचार और प्रचार के नए - नए आयामों का प्रवर्तन कर रहा है। टेलीफोन, रेडियो सिनेमा, टेलीविजन तथा कंप्यूटर के आविष्कार ने संचार के साधनों में आमूल - चूल परिवर्तन ला दिया है। इनमें भी टेलीविजन और इंटरनेट के आविष्कार ने सो व संभव कर दिया जिसकी केवल एक शताब्दी पूर्व कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें, रेडियो, सिनेमा, टी.वी. जनसंचार के प्रमुख माध्यम आज कितना विराट रूप धारण कर चुके हैं, इसकी जानकारी कम रोचक नहीं है।

मुद्रित माध्यम:

जनसंचार के माध्यमों एक माध्यम मुद्रित माध्यम है। यह वह जनसंचार माध्यम है जिसने संचार को कल, आज और कल की सीमाओं का अतिक्रमण करने की क्षमता प्रदान की। मुद्रित माध्यम वस्तुतः लिखित भाषा का यांत्रिक विस्तार है। लिखित भाषा के दो विशिष्ट रूप अतीत में विकसित हुए जो आज भी बदस्तूर कायम हैं। पहला रूप तो अंतर्वैयक्तिक संप्रेषण में बोली हुई भाषा का स्थान लेकर सामने आया। इसमें व्यक्तिगत पत्र आदि आते हैं। दूसरा रूप समूह संचार में प्रयुक्त होनेवाली भाषा की जगह स्थापित हुआ, जहाँ लेखन के माध्यम से ही कही जा सकने वाली बात को समय और स्थान की सीमाओं के पार पहुँचाने की अभिलाषा प्रमुख थी। इसीके दूसरे रूप के विस्तार के रूप में हमें मुद्रित माध्यम प्राप्त हुआ है।

पुस्तक:

मुद्रित माध्यम का सबसे प्राचीन, सबसे स्थायी और सबसे व्यापक प्रकार पुस्तक है। पुस्तक का अस्तित्व मोटे तौर पर १५ वीं शताब्दी में गुहनबर्ग की यांत्रिक मुद्रण व्यवस्था के समय से ही माना जा सकता है। इसके पहले भी पुस्तकों का अस्तित्व था लेकिन उन पुस्तकों को हम पांडुलिपियाँ कहते थे क्योंकि ये पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं।

१९ वीं शताब्दी में पुस्तक प्रकाशन में कई परिवर्तन हुए। फोटो ग्राफी के आविष्कार के कारण पुस्तकों की रूप सज्जा में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। फोटो टाइप सेटिंग और कालांतर में डेस्कटॉप पब्लिशिंग के कारण से पुस्तकों को आकर्षक ले आउट और फॉन्ट प्रजातियाँ मिली जिनसे उनको और भी आकर्षक ढंग से प्रकाशित करना संभव हो पाया।

भारत में मुद्रण कला का आरंभ गोवा में १५५६ में हुआ और उसके बाद यह प्रौद्योगिकी तटीय शहरों से होती हुई कलकत्ता पहुँची। भारतीय भाषा में छपने वाली पहली पुस्तक बंगला भाषा की व्याकरण की पुस्तक थी।

समाचार पत्र:

समाचार पत्र मुद्रित माध्यम के एक सशक्त माध्यम के रूप में अस्तित्व आया। इसका प्रसार संख्या पुस्तकों से अधिक है। मुद्रण प्रौद्योगिकी का सबसे ज्यादा उपयोग समाचार पत्र छापने के लिए होता है। समाचार पत्रों में प्रयुक्त होनेवाले कागज को तकरीबन ५६३८ समाचार पत्र छपते हैं और कुछ समाचार पत्रों के तो १०-१५ संस्करण तक छपते हैं। भारत में सबसे पहला समाचार पत्र बंगाल गजट को माना जाता है जिसे १७८० में जेम्स ऑगस्ट हिक्की ने निकाला था। किसी भारतीय भाषा में निकलने वाला समाचार पत्र १८१६ में बंगला में प्रकाशित हुआ था। लेकिन बहुत समय तक नहीं चल पाया। पुस्तकों की तरह फोटोग्राफी के आविष्कार ने अखबारों के पन्नों को भी आकर्षक बनाया।

पत्रिकाएँ:

पत्रिकाएँ मुद्रित माध्यम का वह प्रकार हैं जो समास में पुस्तकों और समाचार पत्रों के बीच की संचार आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। पत्रिकाएँ गंभीर चिंतन, सामाजिक राजनीतिक घटनाओं के विस्तृत विश्लेषण की सशक्त माध्यम हैं।

स्वतंत्रता पूर्व हिंदी में सरस्वती, हंस जैसी पत्रिकाओं ने शिक्षित जनमानस में चेतना जागृत करने का कार्य किया। स्वतंत्रता के बाद अनेक प्रकार की पत्रिकाओं का उदय हुआ। साप्ताहिक हिंदुस्तान, धर्मयुग जैसी पत्रिकाओं ने पारिवारिक व बहु विषयक पत्रिकाओं की भूमिका निभाई तो नंदन और पराग बच्चों की, सारिका, वामा, सहेली जैसी पत्रिकाएँ महिलाओं की ओर उन्मुख हुई। साप्ताहिक दिनमान और रविवार ने समाचार पत्रिकाओं की आवश्यकताओं को पूरा किया। आज भी अनेक पत्रिकाएँ जैसे इंडिया टुडे, आऊट लुक, तहलका आदि ने समाचार विश्लेषण आदि से सुसज्जित हैं।

परचे (हैड बिल), पोस्टर और विज्ञापन:

मुद्रित माध्यमों में पुस्तक, समाचार पत्र और पत्रिकाओं के साथ-साथ परचे (हैड बिल) पोस्टर और विज्ञापनों भी आते हैं। दीवारों पर लगाए जाने वाले पोस्टर और भीड़ से बाँटे जाने वाले परचे जहाँ मुद्रण का इस्तेमाल कर बोले हुए शब्दों का स्थान लेने हैं वहीं अखबारों और पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले विज्ञापन मुद्रित माध्यम की सशक्त प्रयुक्ति बनकर उभरे हैं। परचों का प्रयोग सबसे ज्यादा राजनीतिक प्रचार के लिए होता है। लेकिन समय-समय पर विभिन्न वाणिज्यिक संस्थाएँ और अन्य संस्थान भी लोगों तक विशेष जानकारीयों पहुँचाने लिए इसका इस्तेमाल करते हैं। हैडबिल किसी नए उत्पाद के बाजार में आने की घोषणा या किसी दुकान के खुलने या कीमतों में विशेष छूट की घोषणा करने के लिए वितरित किए जाते हैं। आजकल अक्सर समाचार पत्रों के बीच से ऐसे हैडबिल रखकर वितरित करने का प्रचलन बढ़ा है।

विज्ञापन की शुरुआत मुद्रित माध्यम से ही मानी जाती है। सबसे पहले विज्ञापन पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में छपे और आज भी विज्ञापन पर होने वाले खर्च का सबसे बड़ा हिस्सा समाचार पत्र और पत्रिकाओं को ही जाता है।

मुद्रित माध्यम का उद्भव और विकास:

मुद्रण का उद्भव चीन से माना जाता है जहाँ ८३८ ई में पहली पुस्तक छपकर सामने आई। यह पुस्तक चीनी मिट्टी से बने अक्षरों की मदद से छापी गई थी। मुद्रण के लिए ब्लॉक बनाने की पद्धति का प्रयोग भी पहली बार (७१२ ई) में चीन में हुआ। दुनिया का पहला छापाखाना स्थापित करने का श्रेय इंग्लैंड को जाता है जहाँ १४७६ में पहला छापाखाना लगाया गया। इसके बाद से मुद्रित माध्यम संचार के एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरा और पिछली पांच शताब्दियों से लगातार सशक्त होता गया। आज भूमंडलीयकरण और साइबर संचार के युग में भी मुद्रित माध्यम का महत्व कम नहीं हुआ है।

सीसे के टुकड़ों पर छपाई योग्य अक्षरों को बनाने का श्रेय जर्मनी के गुटेनबर्ग को जाता है। उन्होंने १४४५ ई में इस पद्धति से बाइबिल का प्रकाशन किया। यह एक ऐसा क्रांतिकारी कदम था जिसने दुनिया में संप्रेषण और संचार की शक्ति ही बदल दी। कुछ ही दशकों में पश्चिमी देशों में किताबों की संख्या तेजी से बढ़ी। उदाहरण के लिए इंग्लैंड को ही लें तो हम पाते कि १५१० में वहाँ किताबों के १३ नए संस्करण निकले। १५३१ में इनकी संख्या बढ़कर २१९ हो गई और फिर १८०० में ६०० और आज लगभग १९,००० प्रतिवर्ष हो गई है। इतना ही नहीं इन संस्करणों की प्रतियों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है।

भारत में मुद्रित माध्यम का विकास:

भारत में १५५६ में गोवा में पहला छापाखाना खोला गया। इसे ईसाई मिशनरियों में अपने धर्म प्रचार के लिए खोला था। भारत दुनिया के उन दस देशों में से है जहाँ सबसे अधिक समाचार पत्र छपते हैं। और सबसे अधिक पुस्तकों का प्रकाशन होता है। जहाँ तक अंग्रेजी की पुस्तकों के प्रकाशन का सवाल है भारत का विश्व में तीसरा स्थान है। २००१ के आँकड़ों के अनुसार हमारे यहाँ ५६३८ दैनिक समाचार पत्र, १८५८२ साप्ताहिक, ६८८१ पाक्षिक और १४६३४ मासिक पत्र निकलते हैं। इसके अलावा, मिले-जुले ३५९० गैर-समाचार प्रकाशन होते हैं।

आज भारत के हर प्रदेश और केंद्र शासित राज्य से समाचार पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित होते हैं। उत्तर प्रदेश में सबसे ज्यादा (८३९७) प्रकाशन होते हैं। इसके बाद दिल्ली (६९२७), महाराष्ट्र (६६१८), पश्चिम बंगाल (३७३८) का नंबर आता है।

भारतीय प्रेस की विशेषता यह भी है कि हमारे यहाँ १०१ भाषाओं में पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। १८ प्रमुख भाषाओं में हिंदी में सबसे अधिक २०.५८९, अंग्रेजी में ७.५९६ बंगला में २.७४१, उर्दू में (२.९०६), मराठी में (२.९४३), तमिल में (२.११९), मलमालय और तेलगु (१.२८९) में १.५०५ पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है। इसके अलावा देश की लगभग सभी छोटी - बड़ी भाषाओं समाचार - पत्र, पत्रिकाएँ और पुस्तकें प्रकाशित होती हैं।

मुद्रित माध्यम की विशेषताएँ:

मुद्रित माध्यम लिखित भाषा का ही विस्तार है। इसलिए यह लिखित भाषा की तकरीबन सभी विशेषताओं को आत्मसात करता है। लिखित और मुद्रित माध्यम की एक विशेषता यह है कि इसमें संवेदनाओं के लिए कम जगह होती है। इसलिए यह विचार और चिंतन का

प्रमुख माध्यम है। लिखित माध्यम में भाषा का इस्तेमाल उतना तात्कालिक नहीं होता जितना बोली हुई भाषा में होता है और यही वजह है कि यह ज्यादा संस्कार युक्त भाषा का प्रयोग करता है और मुद्रित माध्यम में तो लिखी हुई भाषा पर और भी अधिक विचार करने की गुंजाइश है। इतनी सुविचारित भाषा से चलनेवाले इन माध्यमों की यह शक्ति रही है कि वह ज्ञान और विचार के सशक्त साधन रहे हैं।

मुद्रित माध्यमों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनके कारण मठों और महलों में जंजीरों में जकड़ी किताबें मुक्त हुईं। पुस्तकालयों का जमाना आया। साथ ही छपाई मशीन के आविष्कार ने जनसंचार के नए तरीके भी ईजाद किए। समाचार पत्रों का प्रकाशन ऐसा ही एक नया तरीका बना जिसने एक विकसित और संगठित समाचार बनाने में मदद की। इसी कारण फ्रांसीसी क्रांति के बाद नेपोलियन ने प्रेस को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ घोषित किया।

मुद्रित माध्यमों ने न केवल राजनीतिक जागरूकता के लिए काम किया बल्कि उसने शिक्षा के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन किए, औद्योगिकीकरण को प्रक्रिया को तेज किया और जिस सूचना क्रांति को हम देख रहे हैं उसकी नींव भी रखी। मुद्रित माध्यम ने लोगों को किसी देश की सीमा में ही एक जुट होने और एकता कायम रखने के गुण सिखाए। साथ ही उसने विभिन्न जातियों, वर्गों और संस्कृतियों को भी यह अवसर दिया कि वह अपनी अस्मिता को मजबूत करें।

मुद्रित माध्यम को साक्षरता की संस्कृति का जनक कहा जाता है। यूँ तो अक्षर ज्ञान मुद्रित माध्यम से बहुत पहले से समाज में सत्ता का सूचक रहा है, लेकिन मुद्रित माध्यम ने अक्षर को और अधिक गरिमा प्रदान की और इसके बाद साक्षरता सामाजिक सत्ता के एक सशक्त प्रकार्य के रूप में उभरी। शिक्षा और विशेषकर आधुनिक शिक्षा को भी मुद्रित माध्यम और साक्षरता ने एक मजबूत आधार दिया। धीरे धीरे साक्षरता हमारे जीवन में ऐसे रच बस गई कि लोग बोलने से पहले अपने विचारों को लिखने लगे साक्षरता की ही एक और देन है मानकीकरण इसको समाज और राष्ट्र के निर्माण का आवश्यक अंग माना गया है। यही कारण है कि आज भी भारत में मानकीकरण की आवश्यकता केवल उन लोगों को है जो मुद्रित माध्यम का व्यवहार में लाते हैं।

साक्षरता का विकसित समाजों में कितना गहरा प्रभाव पड़ता है इसकी मिसाल यही है कि जहाँ-जहाँ मुद्रित माध्यम के लंबे प्रचलन के बाद रेडियों आया वहाँ वहाँ रेडियो का कान से संबंध होने और उसके मौखिक माध्यम होने को बार बार दुहराया गया ताकि इन माध्यमों में काम करने वाले अपने लिखित भाषा के संस्कारों से उबर कर रेडियों के योग्य भाषा लिख सकें।

(आकाशवाणी) रेडियों:

आकाशवाणी अर्थात् रेडियों एक श्रव्य माध्यम है। यह एक ऐसा संचार माध्यम है; जिसके द्वारा कोई भी संदेश व्यापक जन समुदाय तक एक साथ पहुँचाया जा सकता है। किसी रेडियों स्टेशन अर्थात् आकाशवाणी से जिस समय संदेश प्रसारित होता है ठीक उसी समय हजारों मील दूर बैठे लोग वह संदेश अपने रेडियों सेट पर सुन सकते हैं।

रेडियों का आविष्कार १९ वीं शताब्दी में हुआ। वर्ष १९९६ में इटली के इंजीनियर मारकोनी द्वारा रेडियो सिग्नल भेजने का प्रदर्शन किया गया था। रेडियों पर मनुष्य की आवाज पहली बार १९०६ ई में सुनाई दी। इसके उपरान्त जनसंचार का यह एक उपयोगी माध्यम बना क्योंकि श्रव्य होने के कारण अशिक्षित लोगों में इसकी पकड़ अधिक है।

भारत वर्ष में रेडियों का प्रसारण १९२६ ई से शुरू होता है। बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास में व्यक्तिगत रेडियों क्लब स्थापित किए गए। इसके बाद १९२७ में प्रसारण सेवा का गठना हुआ। सन १९३६ में इसे आकाशवाणी (ऑल इंडिया रेडियो) नाम दिया गया। स्वतंत्रता के समय यानी सन् १९४७ में भारत में आकाशवाणी के छह केंद्र और अठारह ट्रांसमीटर थे। इनका प्रसारण कवरेज क्षेत्र की दृष्टि से २.५ प्रतिशत और जन संख्या के लिहाज से मात्र ११ प्रतिशत था। वर्ष २००२ तक आकाशवाणी नेटवर्क में २०८ केंद्र हैं, जिसका कवरेज ९० प्रतिशत क्षेत्र तक है। भारत जैसे विविधता वाले देश में आकाशवाणी द्वारा २४ भाषाओं और १४६ बोलियों में प्रसारण हो रहा है। इसके अंतर्गत १४९ मीडियम वेव फ्रीक्वेंसी ट्रांसमीटर, ५५ हाई फ्रीक्वेंसी शार्टवेव ट्रांसमीटर और १३० फ्रीक्वेंसी मॉड्यूलेशन (एफ.एम.) ट्रांस मीटर हैं।

आकाशवाणी कार्यक्रम का उद्देश्य 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' पर केंद्रित रहता है। ताकि सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के माध्यम से जन जन की खुशहाली और उनकी कल्याण को प्रोत्साहन मिले। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आकाशवाणी राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय तीन स्तरीय प्रसारण उपलब्ध कराता है; देश भर में फैले अपने विविध केन्द्रों के जरिए स्थानीय संगीत- विविध कार्यक्रम समाचार इत्यादि कार्यक्रमों द्वारा लोगों की जनसंचार संबंधी मांगें पूरी करता है।

जनसंचार माध्यम के रूप में रेडियो:

निस्संदेह आज रेडियो जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है। टेलीविजन के आगमन के बाद भी रेडियो जनसंचार माध्यम के रूप में सर्वाधिक सशक्त हाथियार है। खासकर भारत के संदर्भ में इसका सबसे पहला कारण है कि - रेडियो का सस्ता और सुलभ होना और इसकी खासियत यह है कि रेडियों के माध्यम से आसानी से श्रोताओं तक संदेश पहुँचाया जा सकता है। वस्तुतः जो जनसंचार माध्यम संदेश का जितना व्यापक प्रसारण करता है, वह उतना ही कारगर होता है। इस दृष्टि से रेडियों का कोई जोड़ नहीं है।

जनसंचार माध्यमों की विशेषता होती है कि वह शीघ्र और तत्क्षण संदेशों का प्रसारण करता है। इस दृष्टि से भी रेडियो बेजोड़ है। समाचार पत्रों में खबरे छपती हैं, परंतु छपते-छपते कम से कम १०- १२ घंटे तो लग ही जाते हैं और पाठकों तक पहुँचते पहुँचते और भी देर हो जाती है। तत्कालीन समय में टेलीविजन में खबरे रेडियो के साथ आ सकती थी, परंतु उस घटना के चित्र उस समय नहीं आ सकते थे। अतः हमेशा किसी महत्वपूर्ण सूचना या संदेश के लिए लोग रेडियों की ओर दौड़ते थे। लेकिन समय के साथ बदलाव होना तय है तकनीकी क्षेत्र में अमुलाग्न बदलाव ने आज के युग में स्मार्ट टीवी या मोबाइल फोन के जरिये भी किसी खबर को तुरंत पढ़ा या सुना जा सकता है। लेकिन कुछ विशेष परिस्थिति और विशेष व्यक्तियों के लिए रेडिओ आज भी महत्वपूर्ण है।

जनसंचार माध्यमों में प्रसारण और प्रकाशन की नियमितता होती है। इस कसौटी पर भी - रेडियो खरा उतरता है। इसके कार्यक्रम की घोषणा एक दिन पहले या उसी दिन सुबह कर दी जाती है। कुछ कार्यक्रमों, मसलन समाचार का समय और अवधि तो हमेशा एक जैसी होती है। कुछ विशेष अवसरों पर ही इसे बढ़ाया या परिवर्तित किया जाता है।

दृष्टिहीन व्यक्तियों के लिए रेडियो एक वरदान है। जो पढ़ नहीं सकते, देख नहीं सकते उनके लिए अखबार और टेलीविजन जैसे जनसंचार के माध्यम व्यर्थ है। उन्हें तो केवल रेडियो का सहारा है। निरक्षर लोगों के बीच भी रेडियो खूब लोकप्रिय है। आप गांव में या शहर की झुग्गी झोपड़ियों में रेडियो से उठती धुन का आनंद ले सकते हैं।

श्रव्य माध्यम के रूप में रेडियो की विशेषताएँ:

रेडियो की दुनिया आवाज की दुनिया है। इसका अपना अनूठा और आकर्षक संसार है, इस दुनिया का अपना सम्मोहन है। रेडियो के दीवानों और दीवानगी की एक लम्बी परंपरा है। रेडियो की 'आवाज की दुनिया' में हम एक ही पल में न जाने कहाँ से कहाँ तक पहुँच जाते हैं। श्रोता को पूरी छूट होती है कि वह संगीत का रसास्वादन करे, ज्ञान प्राप्त करें, नवीनतम सूचना ग्रहण करें या किसी विदेशी स्टेशन से वहाँ के समाज और संस्कृति से जुड़े।

रेडियो पूरी तरह से श्रव्य माध्यम है। श्रव्य माध्यम होने के कारण इसकी कुछ विशिष्टताएँ भी हैं और सीमाएँ भी। रेडियो माध्यम की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह श्रोताओं को साथ लेकर चलता है। श्रोता अपनी कल्पना शक्ति का इस्तेमाल करते हैं और 'आवाज की दुनिया' में खो जाते हैं। इसमें आवाज के माध्यम से कार्यक्रम श्रोताओं तक पहुँचता है और श्रोताओं को कल्पना की उड़ान की पूरी छूट मिल जाती है। वह अपनी कल्पना शक्ति के सहारे दृश्य जुटाता है और कई बार वह अनोखे संसार में पहुँच जाता है। कई बार श्रोता रेडियो कार्यक्रम के प्रस्तुत कर्ताओं की भी एक मनचाही तस्वीर बना लेता है। अतः प्रत्येक श्रोता के दिमाग में प्रस्तुतकर्ता की अलग-अलग तस्वीर बनी होती है; इसी कारण हजारों मील दूर बैठे उद्धोषक से वे करीबी रिश्ता जोड़ लेते हैं। रेडियो के कई उद्धोषक इतने लोकप्रिय हुए कि घरों में परिवार के सदस्य जैसे बन गए हैं। पटना केंद्र से एक धारावाहिक आता था - 'लोहासिंह' यह पात्र घर-घर का सदस्य बन गया था। इस तरह रेडियो लखनऊ से एक धारावाहिक का 'बहरे बाबा' जैसा पात्र ऐसा ही एक उदाहरण है। विविध भारती के सिबाका गीत माला के उद्धोषक अमीन सायानी को कौन भूल सकता है।

रेडियो से जुड़ी कल्पना और अन्य माध्यमों से जुड़ी कल्पना में एक महत्वपूर्ण अंतर है। दृश्य माध्यम में अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि वे दर्शकों की विचार शक्ति को कुंठित कर देते हैं और मौलिक सोच को प्रभावित करते हैं। परंतु रेडियो के साथ बात उल्टी है। यह श्रोताओं की कल्पना शक्ति और विचार शक्ति को उन्मुक्त उड़ान भरने का पूरा मौका देता है। वस्तुतः यह माध्यम श्रोताओं की कल्पना शक्ति को आंदोलित भी करता है।

रेडियो पर सब कुछ आवाज के माध्यम से निरंतर प्रसारित होता रहता है। इस निरंतरता के कारण समसामयिकता और वर्तमान का बोध होता है। श्रोता महसूस करता है कि स्टूडियो से सीधा प्रसारण हो रहा है और वह उसका आस्वादन कर रहा है। इस बात का आभास होते ही श्रोता कार्यक्रम से जुड़ जाता है। इसका एक अच्छा उदाहरण रेणु के उपन्यास 'मैला

आंचल' में मिलता है। उस समय रेडियों भारत के लोगों खासकर देहात के लोगों के लिए नयी चीज थी। उपन्यास का एक पात्र रेडियों का बिल्कुल मानवीकरण कर देता है। वह पात्र उपन्यास में कहता है "रेडियो डांट भी सकता है, रेडियो किसी समस्या को सुलझा भी सकता है आदि आदि।" कहने का तात्पर्य यह है कि रेडियों 'वर्तमान' और 'जीवंत' होने का बोध कराता है।

रेडियों जन संचार का एक ऐसा माध्यम है, जिसे जब, जैसे और जहाँ चाहे वहाँ सुना जा सकता है। आप इसे बाथरूम में भी सुन सकते हैं और खेत-खलिहान में भी, आप पढ़ते वक्त भी इसे सुन सकते हैं और खाना बनाते वक्त भी। वस्तुतः रेडियो के इस लचीलेपन के दो कारण हैं:

१) दृश्य हीनता

२) ट्रांजिस्टर क्रांति

रेडियो हमें कुछ दिखाता नहीं, बल्कि सुनाता है, अतः इसमें अपेक्षाकृत कम एकाग्रचित्त होने की आवश्यकता पड़ती है। टेलीविजन देखते समय हमें आँख और कान दोनों को सक्रिय रखना पड़ता है। हम टेलीविजन देखते समय दूसरा काम नहीं सकते हैं। परंतु रेडियो के साथ यह सुविधा है कि आप कोई काम करते समय भी रेडियो के कार्यक्रम सुन सकते हैं। मसलन नहाते समय कमेंट्री सुन सकते हैं; फसल काटते समय गाना सुन सकते हैं; 'चौपाल' सुन सकते हैं। आवाज का माध्यम होने के कारण अन्य जन संचार की तुलना में रेडियो को यह सुविधा अपने आप मिल गई है।

रेडियो पर समाचार और सूचनाएँ तेजी से अर्थात् कम से कम समय में प्रसारित की जा सकती हैं। श्रव्य माध्यम होने के कारण रेडियो के साथ यह विशिष्टता जुड़ जाती है। कहीं घटना घटी, संवाददाता ने फोन से स्थानीय रेडियो स्टेशन को खबर भेजी संवाददाता ने फोन से स्थानीय रेडियो स्टेशन को खबर भेजी और वहाँ से आकाशवाणी को खबर पहुँचाई तथा फिर खबर चारों ओर फैल जाती है। अपने कार्यक्रमों की व्यवस्था के अनुसार तत्काल खबर हजारों हजार श्रोताओं तक पहुँच जाती है। समाचार में यह खबर दूसरे दिन आती थी। या फिर अगर कोई दिन या शाम को प्रकाशित होनेवाला समाचार पत्र (मिड-डे या सांध्य टाइम) भी हो तो भी लोगों तक खबर पहुँचाने में कुछ घंटे तो लगते ही हैं अतः तत्परता की दृष्टि से रेडियो बेजोड़ माध्यम है।

नवीन प्रौद्योगिकी व वैज्ञानिक प्रगति ने रेडियों या आकाशवाणी में भी नवीन परिवर्तन किए हैं। जिसके परिणाम स्वरूप एम. एम. रेडियो एवं वेव रेडियो, वर्ल्ड स्पेसरेडियों का भी प्रचलन बढ़ गया है।

एफ. एम. रेडियो का उदय सर्वप्रथम अमेरीका और यूरोप में १९८० के दशक में हो गया था। परंतु भारत में इसका आगमन १९९० के बाद हुआ। टेलीविजन के आने के बाद रेडियों का जीवन खतरे में पड़ गया था क्योंकि टेलीविजन (अर्थात् दूरदर्शन ध्वनि-दृश्य माध्यम होने के कारण हर वर्ग में लोकप्रिय हो गया। वहीं रेडियों की पुरानी प्रसारण विधि के कारण इसका प्रभाव श्रोताओं पर खत्म होता गया। परंतु एफ. एम. रेडियों के आगमन से श्रोता न

सिर्फ डिजीटल तकनीक में मनमोहक कार्यक्रम सुन सके बल्कि इसकी दूर-दराज के गांवों में पहुँच ने दोबारा अपना श्रोता वर्ग तैयार कर लिया।

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा निजी एवं सरकारी संस्थाओं को ५०० से अधिक एफ. एम. रेडियो स्टेशन चलाने की अनुमति मिलने के बाद अब शहर और गांव में एफ.एम. रेडियों की धूम है। अब वह चाहे ए. आई. आर का एफ. एम रेडियो हो या फिर ९८.३ MHZ पर रेडियों मिर्ची रेडियों सीटी या रेड एफ.एम।

वेब रेडियों और वर्ल्ड स्पेस रेडियों वर्तमान में देश में १०० से अधिक वेब रेडियों एवं वर्ल्ड स्पेस रेडियों स्टेशन हैं जिनसे विश्व के अनेक देशों के मनमोहक कार्यक्रम प्रसारित होते हैं जो पहले संभव नहीं थी।

(दूरदर्शन) टेलीविजन:

दूरदर्शन या टेलीविजन जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है। इस माध्यम में दृश्य-श्रव्य दोनों का समावेश होता है। अन्य माध्यमों की अपेक्षा यह अधिक प्रभावशाली व इसका अपना महत्त्व है। दूरदर्शन तरंगों के माध्यम से एक साथ दृश्य और ध्वनि को सुदूर स्थानों तक उसी गति से भेजने में सफल हुआ है, जिस तीव्र गति से रेडियों द्वारा तरंगे भेजी और ग्रहण की जाती हैं। दूरदर्शन द्वारा जनसंचार के क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। रेडियो की यह सीमा थी कि वह माध्यम पूरी तरह आवाज पर निर्भर था जबकि समाचार पत्र मुद्रित शब्दों पर। इसलिए इन दोनों माध्यमों से जो छूट जाता था, वह दूरदर्शन अर्थात् टेलीविजन ने पूरा कर दिया। रेडियों व समाचार पत्र के माध्यम से जो कहा जाता था, उसकी दृष्टि के लिए जीवंत प्रमाण सामने नहीं आ पाते थे। लगता था कि यथार्थ का आधार इनके पास नहीं है। दूरदर्शन ते जीवंत दृश्य दिखाकर लोगों का विश्वास जीत लिया इसके साथ ही मनोरंजन का विविधतापूर्ण खजाना घर और रेडियो की तुलना में बहुत महंगा है, लेकिन इसके प्रभाव सभी वर्ग आ चुके हैं और विशाल जन समूह के सिर पर इसका जादू चढ़ा हुआ है। इसने विश्व की दूरियों को मिटा दिया है। आज समाचार पत्र का पाठक भी उसमें दूरदर्शन या टेलीविजन के कार्यक्रमों की सूचना पढ़ना नहीं भूलाता।

दूरदर्शन या टेलीविजन प्रौद्योगिक का विकास:

टेलीविजन विगत तीन-चार दशकों की ही उपलब्धि है। यों दूर तक तस्वीरों को प्रसारित करने की युक्ति १८९० में ही ज्ञात हो चुकी थी और १९३० के अंत में ब्रिटेन में टेलीविजन एक घरेलू शब्द बन चुका था। जबकि संसार का पहला नियमित टेलीविजन या दूरदर्शन प्रसारण सार्वजनिक स्तर पर १९३६ में हुआ।

जॉन लॉगी बेयर्ड पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने ब्रिटेन में १९२६ में टेलीविजन का पहला प्रदर्शन किया। इसके बाद १९२७ में फिलो फॉर्न्सवर्थ ने इलेक्ट्रॉनिक टेलीविजन संकेत प्रवाहित कर टेलीविजन की स्क्रीन पर छवि को साकार किया। कुछ वर्ष पहले १९२३ में बलादीमीर ज्वोरकिन ने भी ऐसा प्रयास किया था मगर उन्हें भारी सफलता तब मिली जब उन्होंने पहली पिकचर ट्यूब (आयकोनोस्कोप) का आविष्कार किया। वह पहली तकनीक थी जिससे बिजली धारा को छवि के रूप में परिवर्तित किया जा सकता था।

टेलीविजन ने अपना अलग चरण १९३० ई के आसपास बढ़ाया। नये इलेक्ट्रॉनिक कैमरा एवं रिसीविंग ट्यूब ने तस्वीर की गुणवत्ता को बढ़ा दिया। साथ ही इसमें दृश्य के साथ ध्वनि को भी जोड़ा जा चुका था। ऐसा करने के लिए रेडियो ट्रांसमीटर में मामूली सा परिवर्तन कर दिया गया था। अब आवाज वाले टेलीविजन का पहला सार्वजनिक प्रसारण ब्रिटेन में १९३० में हुआ।

धीरे-धीरे टेलीविजन सारी दुनिया में तेजी से फैलने लगा। लेकिन अभी वह जनसंचार की अवधारणा से दूर था। ब्रिटेन में ही मात्र ३०० व्यक्तिगत रिसीवर थे जो १९३० से १९३८ के बीच ४००० हो गए। सन् १९३९ में तो केवल दो महिने में ही ७००० सेट बिके। फ्रांस में नियमित दूरदर्शन प्रसारण १९३८ में शुरू हुआ तथा अमेरिका में १९४१ में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान युरोप में टेलीविजन प्रसारण बंद हो गए। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रसारण सेवाएँ फिर शुरू हुई। १९५३ में संयुक्त राज्य ने विश्व में सर्वप्रथम रंगीन टेलीविजन प्रसारण शुरू किया। जबकि १९५२ में इंग्लैंड, फ्रांस, नीदरलैंड तथा पश्चिमी जर्मनी के बीच सफलता पूर्वक पुनः प्रसारण संभव हुआ। १९६२ में सेटेलाईट के जरिये पहले जीवंत (live) कार्यक्रम का आदान प्रदान युरोप तथा अमेरिका के बीच हुआ।

भारत में टेलीविजन माध्यम की शुरुआत १५ सितंबर १९५९ से हुई जब युनेस्को की विशेष परियोजना के तहत तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भारत के पहले पहले दूरदर्शन केन्द्र का उद्घाटन दिल्ली में किया। वर्ष १९७२ में दूरदर्शन के प्रसारण को स्थायी रूप दिया गया। इसके पूर्वतक यह आकाशवाणी के अंग के रूप में कार्य करता था। १९७६ में इसे दूरदर्शन नाम से एक स्वतंत्र इकाई बनाया गया। १९८२ में जब भारत में एशियाई खेलों का आयोजन किया गया, तब दूरदर्शन ने पहली बार रंगीन प्रसारण की शुरुआत की। लगभग इसी समय विभिन्न शहरों में टेलीविजन के लिए ट्रांसमीटर लगाए गए और सन् १९८४ तक भारत के लगभग सभी प्रमुख शहरों तक 'दूरदर्शन' का प्रसारण पहुँच चुका था। आज भारत का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जो दूरदर्शन प्रसारण के बाहर हो यही नहीं भारत में एक अनुमान के अनुसार १० करोड़ घरों में टेलीविजन सेट लगे हुए हैं। और पचास करोड़ आबादी दूरदर्शन प्रसारण देखती है। केवल प्रसारण सुविधा के चलते अब भारत में टेलीविजन पर १०० से अधिक चैनल उपलब्ध हैं।

तकनीक के साथ-साथ टेलीविजन के रूप रंग, कार्यक्रम निर्माण विश्वसनीयता गुणवत्ता इत्यादि में जो परिवर्तन हुए हैं, उससे 'दूरदर्शन' के प्राथमिक उद्देश्यों में भी परिवर्तन आया है। भारत में दूरदर्शन की शुरुआत करते समय कुछ खास उद्देश्य रखे गए थे। ये उद्देश्य इस प्रकार हैं -

१. सामाजिक कल्याण, और राष्ट्रीय एकता में अहम भूमिका निभाना
२. जनता में वैज्ञानिक चेतना का विकास करना
३. कला व संस्कृति के प्रति लोगों को जागरूक बनाना
४. खेल कूद, परिवार कल्याण, पर्यावरण, संतुलन और संरक्षण के लिए जानकारी देना।
५. कृषि को प्रोत्साहित करना

६. लोगों को सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करना जनसंचार माध्यम के रूप में दूरदर्शन या टेलीविजन की विशेषताएँ

आकाशवाणी या रेडियों ने केवल आवाज के माध्यम से संप्रेषण होता है। दूरदर्शन या टेलीविजन में आवाज के साथ-साथ दृश्य भी होते हैं। यदि रेडियों की भाषा में स्वर है, ध्वनियाँ हैं तो दूरदर्शन की भाषा दृश्य और श्रव्य के मिश्रण से बनती है जिसके दृश्यों में चित्र और चलचित्र का समावेश होता है और श्रव्य भाषा, भाषेतर ध्वनियाँ और संगीत आदि का पुट होता है। रेडियों पर बोलने वाले को केवल सुना जा सकता है इसलिए रेडियों पर बोली हुई, भाषा का विन्यास और शैली ऐसी होनी चाहिए कि कही गई बात श्रोता तुरंत समझ लें। टेलीविजन में बोलने वाला व्यक्ति दर्शक को दिखलाई भी देता है - बहुत कुछ शब्द कहते हैं तो बहुत कुछ भंगिमाएँ और हाव-भाव जैसे व्यक्ति यदि सामने न भी हो और दृश्य है तो भी कई बार शब्द की आवश्यकता नहीं पड़ती। दृश्य ही काफी होता है। उदाहरण स्वरूप बर्फ से ढकी पहाड़ की चोटियों के वर्णन के लिए रेडियों में शब्द और ध्वनियों के जरिए ऐसा वर्णन होना चाहिए जो श्रोता के मन में उनका चित्र बना सके, लेकिन टेलीविजन में शब्द न हों, आवाज न हो तो भी दृश्य अर्थ संप्रेषित का देता है। अर्थात् जो चित्र आकाशवाणी में शब्दों और ध्वनियों के माध्यम से बनता है। वही चित्र टेलीविजन पर साक्षात् दिखता है। यही टेलीविजन की सबसे निबड़ी विशेषता है।

दृश्य श्रव्य माध्यम:

टेलीविजन जनसंचार का ऐसा माध्यम है जिसमें शब्द भी हैं ध्वनियाँ भी हैं और दृश्य भी हैं। टेलीविजन चलते-फिरते दृश्यों का माध्यम है। टेलीविजन जो जैसा है उसे वैसा ही दिखाता है। नाटक, लोककृत्य, गाथाएँ, लोक संगीत जैसे जनसंचार के पारंपारिक माध्यम भी अगर सशक्त रहे हैं तो इसलिए कि वहाँ भी कलाकारों और दर्शकों या श्रोताओं के बीच जो दृश्य संपर्क होता है वह रसनिष्पत्ति में सहायक होता है। रेडियों में दृश्य का निर्माण शब्दों द्वारा दिया जाता है अतः श्रोता को शब्दों को सुनकर ही दृश्य की कल्पना करनी होती है। जबकि टेलीविजन दृश्य श्रव्य माध्यम होने के कारण इसमें दर्शक दृश्य को देखता भी है और सुनता भी है।

व्यापक पहुँच और विश्वसनीयता का आभास लगभग पूरी दुनिया को समेट ड्राइंग रूम (बैठक) में लाने का काम दूरदर्शन ने बखूबी किया है। उपग्रह प्रौद्योगिकी के द्वारा हम दुनिया के किसी भी कोने से आँखों देखा हाल प्राप्त कर सकते हैं। पलक झपकते ही दुनिया के किसी भी कोने में पहुँच सकते हैं वहाँ भी जा सकते हैं जहाँ जाने की कल्पना भी न की हो। उन हस्तियों के दर्शन भी कर सकते हैं, उन्हें अपने सामने चलते-फिरते, बोलते हुए देख सकते हैं, जिनसे शायद कभी मिलने का स्वप्न भी न देखा हो। यह अनोखा संचार माध्यम सामान्य व्यक्ति से लेकर विशिष्ट व्यक्ति की पहुँच के भीतर है।

इस प्रकार दुनिया की सभी सूचनाओं को बड़ी आसानी से प्रेषित करने का काम दूरदर्शन माध्यम की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। कला, संस्कृति, विज्ञान, टेक्नोलॉजी, राजनीति खेल कूद, पर्यावरण इत्यादि जैसे तमाम विषयों की जानकारी एक शहर से दूसरे शहर तक, एक देश से दूसरे देश तक पहुँचाकर जहाँ दूरदर्शन ने दुनिया को एक आंगन के रूप में तब्दील कर दिया है वहीं अपना दायरा भी बहुत बढ़ा लिया।

दूरदर्शन एक विश्वसनीय संचार माध्यम है क्योंकि लोग सुनी सुनाई बातों की तुलना में आँखों देखी पर ज्यादा भरोसा करते हैं। ऐसी कई बातें होती हैं। जिन पर लोग विश्वास नहीं करते हैं लेकिन दूरदर्शन के माध्यम से टेलीविजन के परदे पर उन्हीं बातों को देखकर उन्हें सहज ही स्वीकार कर लेते हैं।

तात्कालिकता का माध्यम:

दूरदर्शन अर्थात टेलीविजन सूचनाओं को तुरंत (तत्काल) लोगों तक दृश्यों के माध्यम से पहुँचाता है। २६ नवंबर २००८ को मुंबई में हुए आतंकवादी हमले के कुछ ही मिनटों में सारी दुनिया ने इस हमले के दृश्य अपने अपने टेलीविजन सेट पर देखा। टेलीविजन की यह क्षमता अभूतपूर्व है। समारोह, अंतिम यात्रा, कोई अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो, चुनावी सरगर्मी का माहौल, १५ अगस्त का कार्यक्रम, २६ जनवरी या क्रिकेट में इनके सीधे प्रसारण के माध्यम से दृश्य को करीब ला देना दूरदर्शन की महत्वपूर्ण विशेषता है।

टेलीविजन के छोटे परदे की चमक दमक ऐसी होती है कि दर्शक इसके प्रलोभन के सामने अपने आपको रोक नहीं पाता। इस कारण कई दूसरी बातें भी सामने आई हैं जैसे पढ़ने के बजाए लोग देखना ही पसंद करते हैं। क्योंकि वह आसानी से उपलब्ध है और समय कम लेता है। इससे लोगों में पढ़ने लिखने की प्रवृत्ति कम होती जा रही है। परंतु एक ही स्थान पर सभी सूचनाओं को प्राप्त कर लेना निश्चय ही एक बड़ी उपलब्धि है। लेकिन यह इस बात की गारंटी नहीं है कि लोग अधिक ज्ञानवान होंगे और बेहतर निर्णयों पर पहुँचेंगे। बहुत अधिक सूचनाएँ लोगों को दिग्भ्रमित भी कर सकती हैं।

चमक दमक और क्लोज अप का माध्यम:

टेलीविजन क्लोज अप का माध्यम है। परदे (स्क्रीन) का छोटा होना ही इसे ऐसा बनाना है। लंबे लंबे और दूर-दूर तक के शॉट्स टेलीविजन के छोटे परदे के लिए उपयुक्त नहीं हैं? लांग शॉट्स में क्या दिखाया जा रहा है यानी विषय वस्तु क्या है यह स्पष्ट नहीं हो पाता। क्लोज अप में दिखाई गई विषय वस्तु स्पष्ट दिखती है और दर्शक पर अपना प्रभाव भी छोड़ती है। दर्शक के लिए क्लोज अप अर्थात पात्र का चेहरा और उसकी भाव-भंगिमाएँ महत्वपूर्ण हो जाती हैं। टेलीविजन कैमरे की एक विशेषता यह होती है कि वह चेहरे के छोटे से छोटे भाव को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करता है। साथ ही इस माध्यम को लगातार नए चेहरे की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि दर्शक एक ही चेहरे की समस्त रेखाओं को देखते-देखते उकता जाता है और उसे नए चेहरे और उस चेहरे की रेखाओं की आवश्यकता पड़ती है।

विज्ञापन का माध्यम:

दूरदर्शन का उपयोग व्यावसायिक हितों के लिए भी किया जाता है। विज्ञापन द्वारा कंपनियाँ अपने उत्पादों को दूरदर्शन के दर्शकों तक पहुँचाती हैं। दूरदर्शन के दर्शक जितने ज्यादा होंगे विज्ञापन उतने ही ज्यादा लोगों तक पहुँचेंगे। भारत में एक अनुमान के तहत लगभग ५० करोड़ लोगों के बीच दूरदर्शन की पहुँच है इसलिए इसके जरिए उत्पादों को भी इतने ही लोगों तक पहुँचाया जा सकता है। विज्ञापन टेलीविजन पर दृश्य रूप में आते हैं और दृश्यों का प्रभाव शब्दों से अधिक पड़ता है इसलिए उत्पादों के विज्ञापनों को दृश्यों के रूप प्रस्तुत करना अधिक प्रभावकारी माना जाता है। विज्ञापन दाता कंपनियों का प्रयत्न रहता है कि वे

अपने उत्पाद के लिए ऐसे तरीके अपनाएँ जिससे अधिक से अधिक दर्शक प्रभावित हों और उनके उत्पादों को खरीदने के इच्छुक हों।

लोकतंत्र का सशक्त माध्यम:

अपनी व्यापक पहुँच के कारण दूरदर्शन अर्थात् टेलीविजन जनसंचार का एक लोकतांत्रिक माध्यम भी है। यह अपनी बात एक समान तरीके से जन जन तक पहुँचाता है चाहे वह झुग्गी झोपड़ी में रहते हो या किसी आलीशान महल में। इस प्रकार दूरदर्शन विशिष्ट व्यक्तियों की बातें सामान्य जन तक और सामान्य जन के दुख-दर्द, उनकी समस्याएँ, विशिष्ट वर्ग तक पहुँचाता है। तमिलनाडु का तमिल बोलने वाला व्यक्ति पंजाब के पंजाबी या कश्मीर के कश्मीरी से एक सांस्कृतिक, वैचारिक और सामाजिक रिश्ता बना सकता है। विभिन्न भाषाओं और जातीय अस्मिताओं के प्रसारण की बाध्यता इस माध्यम को लोकतांत्रिक बनाती है और समाज में एकरूपता या बहुसांस्कृतिक समाज में आवश्यक सहिष्णुता पैदा करने में सहायक होती है।

'जनसंचार माध्यम के विविध रूप - सिनेमा (फीचर फिल्म) और इंटरनेट'

आधुनिक संचार माध्यमों में दृश्य-श्रव्य माध्यम में फिल्म एक लोकप्रिय माध्यम है। इसमें ध्वनि के साथ दृश्यों या चित्रों का भी समावेश होता है। फिल्मों को देखते-सुनते समय हमारी सभी इंद्रियाँ सक्रिय रहती हैं और इसके द्वारा भेजा गया संदेश या सूचना हम आसानी से ग्रहण करते हैं। यही कारण है कि इसका प्रभाव क्षमता अन्य संचार माध्यमों की तुलना में कहीं अधिक होती है। फिल्मों के सुंदर एवं आकर्षक दृश्य, प्रभावपूर्वक ध्वनियाँ, संगीत और गति रोचकता और कल्पनाशीलता दर्शकों को अपने आप जकड़ लेती है।

फिल्म या सिनेमा मुख्यतः मनोरंजन का माध्यम रहा लेकिन वृत्तचित्र और न्युज शैली के द्वारा वह सूचना एवं शिक्षा के प्रचार और प्रसार का भी माध्यम बना। टेलीविजन के आगमन के पहले तक फिल्मों ही मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के मनोरंजन का लोकप्रिय माध्यम था भारत में तो आज भी यह काफी लोकप्रिय माध्यम है। प्रो. जवरीमल्ल पारख के अनुसार फिल्मों में परंपरागत कला रूपों के साथ आधुनिक कलाओं का भी समावेश होता है। कथा, संवाद, अभिनय, फोटोग्राफी, संगीत, नृत्य आदि कई विधाओं और कलाओं की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति इस माध्यम में संभव है।

फिल्म (सिनेमा) का उदय (फिल्म तकनीक की खोज) एक शताब्दी पहले जिस मूवी कैमरे के कारण सिनेमा का आविर्भाव हुआ उसने देखते ही देखते अपने मायावी संसार में सारी दुनिया को जकड़ लिया। फ्रांस के जब दो भाइयों लुई और अगस्त ल्युमिए ने पहली बार मूवी कैमरे का प्रयोग किया तब कोई नहीं जानता था कि कुछ ही सालों में यह आविष्कार जनसंचार के क्षेत्र में क्रांति का वाहक बनेगा। फिल्मों का आगमन कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। फिल्मों की तकनीक का संबंध फोटोग्राफी की खोज और विकास से है। फोटोग्राफी में स्थिर छायाचित्र होते हैं। स्थिर छाया चित्रों के संयोजन से गतिशील चित्र का विकास १८९० के दशक में हुआ। गतिशील चित्रों के आविष्कार का श्रेय थामस एडिसन को दिया जाता है। इस तरह का पहला प्रयास एडवर्ड मुइब्रिज ने १८७२ और १८७७ के बीच किया था, जब उन्होंने कई गतिशील चित्रों का निर्माण किया। मुइब्रिज ने घुड़दौड़ के मैदान में कई सारे तार बांध दिए और प्रत्येक तार को एक स्थिर कैमरे के शहर से जोड़ दिया। दौड़ता हुआ घोड़ा तारों को गिरा देता था जिससे कई सारे चित्र लगातार कैमरे द्वारा लिए गए। इन स्थिर चित्रों को एक डिस्क पर लगाकर उन पर लालटेन की रोशनी डालकर दौड़ते हुए घोड़े का बिंब प्रदर्शित किया गया। मुइब्रिज के कार्य से प्रेरित होकर फ्रांस के वैज्ञानिक E. J. Marey ने १८८२ में एक ही कैमरे से बहुत से चित्रों की शूटिंग करने वाले उपकरण की खोज की।

१८८८ में एडिसन ने डब्ल्यू. के. एल. डिक्सन के निर्देशक में गतिशील चित्रों का प्रयोग किया और वेक्स सिलेंडर पर फोटोग्राफी को रिकार्ड करने का प्रयास करने का प्रयास किया

। १८८९ में डिकसन ने इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त की जब उसने जार्ज ईस्टमैन की सैल्युलारड फिल्म का इस्तेमाल करने का निश्चय किया। सैल्युलाइड फिल्म बाद में गतिशील छायांकन का श्रेष्ठ माध्यम बन गई। क्योंकि इसे रोल किया जा सकता था और मन चाही लंबाई दी जा सकती थी। २८ डिसेंबर १८९५ को फिल्मों के इतिहास की वास्तविक शुरुआत हुई। जब ल्युमिए बंधुओं ने पेरिस कैफे के बेसमेंट में दर्शकों से पैसे लेकर गतिशील तस्वीरों का संक्षिप्त सा प्रदर्शन किया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक आते आते दुनिया के कई हिस्सों में मूवी कैमरे का प्रयोग होने लगा था। इनके द्वारा दिखाई जानेवाली तस्वीरें प्रायः ३५ मिमी की होती थी और प्रति सेकेंड १६ फ्रेम (स्थिर चित्र) होते थे।

सवाक फिल्मों का आरंभ (बोलती फिल्म का आरंभ):

लगभग तीन दशक तक सिनेमा मूक बना रहा। १९२७ के उत्तरार्द्ध में वार्नर ब्रदर्स का आंशिक सवाक फिल्म 'जाज सिंगर' ने अपार सफलता अर्जित की। १९२८ में संपूर्ण सवारक (बोलती) लाइट्स और न्यूयार्क का निर्माण किया हुआ। एक दो साल में ही मूक फिल्मों का निर्माण प्रायः बंद हो गया। हालाँकि चित्र और ध्वनि के संयोजन की कोशिशें फिल्मों के निर्माण के साथ शुरू ही गई थी। परंतु बोलती फिल्मों की संभावना तभी साकार हो पायी जब वार्नर ब्रदर्स ने बीटाफोन प्रणाली का प्रयोग शुरू किया जिसने पृथक फोनोग्राफिक डिस्क के साथ चित्र का संयोजन किया। इस प्रकार चित्रों के साथ संवादों और संगीत का मिश्रण आरंभ हुआ।

फिल्मों में दृश्यों के साथ संवादों और ध्वनियों के प्रयोग ने उसे जीवन के करीब ला दिया। अब फिल्म जीवन की पुनर्चना नजर आने लगी। यथार्थ से इतनी मिलती जुलती पुनर्चना किसी अन्य माध्यम में संभव नहीं था। लेकिन इस माध्यम ने यथार्थ, अमूर्त और पूर्णतः काल्पनिक सोच को भी यथार्थ की तरह प्रस्तुत करने की संभावना पैदा कर दी। फिल्म ने इस प्रकार एक साथ ही यथार्थ और अयथार्थ, सत्य और कल्पना का सम्मिश्रण करने का द्वार खोल दिया।

फिल्म की खोज में धीरे-धीरे कई चीजें जुड़ती चली गईं। आरंभ में फिल्मों में सिर्फ गति थी, बाद में आवाज को भी रिकार्ड किया जाना संभव हो सका। इस तरह पहले फिल्में श्वेत-श्याम होती थीं, बाद में रंगीन फिल्में बनना संभव हो पाया। फिल्मों के तकनीकी विकास से आज चार प्रकार की फिल्में बनाई जा सकती हैं-

- १) कथा आधारित वर्णनात्मक फिल्में इनमें कोई कहानी प्रस्तुत की जाती है।
- २) गैर कथात्मक वृत्त चित्र इनमें दुनिया के वास्तविकता को प्रस्तुत किया जाता है।
- ३) एनिमेशन फिल्में, जिनमें कृत्रिम रूप से बनाए गए चित्रों को इस रूप से पेश किया जाता है। मानों उनमें गति हो और वे बोल सकते हों
- ४) प्रयोगात्मक फिल्में इनमें फिल्म तकनीक की अधिकतम संभावनाओं का इस्तेमाल करके अयथार्थ और अमूर्त का सृजन किया जाता है।

फिल्म अन्य कई कला रूपों की अपेक्षा अभी नई है। सिर्फ सौ साल का इतिहास है। टेलीविजन जो तकनीकी दृष्टि से इसी का विस्तार है, तकनीक को शामिल करले तो यह दुनिया का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है। इस कला माध्यम में कई कलाओं की विशेषताओं को एक साथ देखा जा सकता है। उपन्यास की भाँति इसमें कहानियाँ कही जा सकती हैं, नाटक की तरह इसमें जीवित चरित्रों के द्वंद्वों का चित्रण किया जा सकता है, चित्रकला की तरह यह प्रकाश, रंग, छाया, आकृति और गठन को संयोजित कर सकती है। संगीत की तरह यह लय और सुर के सिद्धांतों के अनुसार गतिशील हो सकती है। नृत्य की तरह इसमें आकृतियों की गतिशीलता को संगीत की स्वर लहरियों के साथ प्रस्तुत कर सकता है, और फोटोग्राफी की तरह यह जो सामने दिखाई देता है, उन द्विआयानी दृश्यों को त्रिआयामी यथार्थ होने का आभास दे सकता है। फिल्म की इस अभूतपूर्व क्षमता ने ही इसे इतना व्यापक और लोकप्रिय बना दिया है।

फिल्म तकनीक का विकास अन्य आधुनिक संचार माध्यमों के समान फिल्म में भी संकेतों और बिंबो की भाषा का प्रयोग होता है। फिल्म द्वारा व्यक्त संदेश को समझने के लिए इसकी तकनीक की सामान्य जानकारी आवश्यक है। यह गतिशील दृश्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

फिल्म में दृश्यों को वस्तुतः फोटोग्राफी की भाँति स्थिर छायांकन के रूप में ही शूट किया जाता है। अर्थात् जो दृश्य हमें गतिशील नजर आते हैं, वे मूलतः कुछ स्थिर चित्र हैं जिन्हें क्रम से एक सेकेंड के अंदर चौबीस की गति से हमारी आँखों के आगे से गुजर जाता है। उनकी यह गति हमें आभास देती है कि हमारी आँखों से गुजरने वाले चित्र वस्तुतः चित्र नहीं गतिशील दृश्य हैं। लेकिन फिल्मांकन के लिए दृश्यों से पूर्व इन स्थिर चित्रों को ध्यान में रखा जाता है। जिन्हें फिल्म की भाषा में 'फ्रेम' कहा जाता है। फिल्म निर्देशक इन फ्रेमों की श्रृंखला के रूप में दृश्यों की कल्पना करता है और फिर दृश्यों के संयोजन के विभिन्न समूहों के योग से फिल्म का निर्माण करते हैं।

फिल्म में किसी दृश्य की परिकल्पना 'फ्रेम' के रूप में होती है और प्रत्येक फ्रेम को कैसे फिल्माया जाएगा इसी से कैमरे की भूमिका तय होती है। फिल्म में कैमरे की भूमिका दो रूप में होती है। एक तो वह उस वस्तु से कितना दूर है जिसे फिल्माया जाता है, दूसरे वह उस वस्तु से किस कोण पर है। दूरी के आधार पर जो शॉट लिए जाते हैं, वे वस्तु से या तो काफी दूर होते हैं, या नजदीक या फिर न दूर न नजदीक इसे फिल्म की भाषा में लांग शाट क्लोज अप शाट और मीडियम शाट कहते हैं।

कोण की दृष्टि से वस्तु का फिल्मांकन वस्तु के उपर से वस्तु के सामने से या वस्तु के नीचे की ओर से किया जाता है। जिसे क्रमशः हाई एंगल, स्ट्रेट एंगल और लो एंगल कहा जाता है। एक और कोण से भी फिल्मांकन होता है। जिसे 'ओवर दि सोल्डर शाट' यानी कंधे की ओर से फिल्मांकन कह सकते हैं।

संपादन:

फिल्म में दृश्यों का प्रभाव शॉट बढ़ाते हैं। इन शॉट का उपयुक्त संपादन उस प्रभाव को और अधिक बढ़ा देता है। संपादन की कुछ महत्वपूर्ण विधियों का संक्षिप्त उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है:

- १) वास्तविक समय का इस्तेमाल करना है, यानी दृश्य में जितने समय की गतिविधि का अंकन हुआ है, उतने समय को यथावत दिखा दें।
- २) दूसरा तरीका मोंटाज का निर्माण है अर्थात विभिन्न दृश्यों को कट द्वारा परस्पर जोड़कर अर्थ उत्पन्न करना। महान रूसी फिल्मकार आइन्सटाइन मोंटाज द्वारा मनचाहा अर्थ सृजित करने में दक्ष थे।
- ३) समांतर संपादन द्वारा विरोधी शॉट का प्रयोग करना ताकि विभिन्न स्थानों पर चलने वाली घटनाओं को एक साथ दिखाया जा सके।
- ४) समय और क्रिया में बदलाव दिखाने के लिए फेड इन और फेड आउट पद्धति का प्रयोग किया जाता है। डिजाल्व का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ फेड आउट पर फेड इन को सुपर इंपोज किया जाना हो।
- ५) जब कहानी को अतीत की ओर मोड़ा जाता हो। स्मृति के रूप में और किसी रूप में तो फ्लैशबैक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। फ्लैशबैक प्रायः किसी पात्र की स्मृति के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इसलिए फ्लैशबैक में उस पात्र के जरिए किया जाता है।

प्रकाश और संगीत:

फिल्म में प्रकाश का प्रयोग संकेतो के लिए किया जाता है। किसी दृश्य में कहाँ, कितनी रोशनी चाहिए यह दृश्य को जीवंत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फिल्म 'प्यासा' में गुरुदत्त ने लाईट का ऐसा ही सृजनात्मक प्रयोग किया है।

फिल्म में प्रकाश की भांति संगीत अर्थात पार्श्व संगीत, ध्वनियों आदि का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण स्वरूप हॉरर फिल्म में सरपेंस क्रियेट (निर्माण) करने के लिए, उत्सुकता और तनाव के लिए हलका सा प्रकाश, पूर्ण सन्नाटा और उनमें कभी उल्लू की आवाज, या चमगादड़ का फड़फड़ाना था किसी अजनबी के महज पदचाप सारे माहौल को खास ढंग से संकेतित कर देते हैं।

संकेत और अर्थ संप्रेषण:

फिल्म में जिन संकेतों का प्रयोग किया जाता है। उन्हें समझना प्रायः बहुत मुश्किल नहीं होता है। यदि फिल्म में प्रयुक्त संकेत दर्शको के लिए सहज हो और वह उनसे पूर्व परिचित हो तो वह उनमें व्यक्त अर्थ को सरलता से ग्रहण कर लेता है। फिल्मकार प्रायः ऐसे संकेत प्रयुक्त करते हैं जो विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों में भी एक से अर्थ को ध्वनित करें। लेकिन जब फिल्मकार किसी खास संस्कृति से संबद्ध संकेतों का इस्तेमाल करता है। तो कई बार उनके संप्रेषण में कठिनाई महसूस होती है। अतः फिल्मों में ऐसे रोजमर्रा के शाब्दिक और अशाब्दिक संकेतों का अधिक प्रयोग हो जो आसानी से संप्रेषित हों।

फिल्म और समाज:

फिल्मों की शुरुआत से ही फिल्म और समाज के संबंधों की व्याख्या अलग-अलग ढंग से होती रही है। क्या फिल्में समाज पर कोई प्रभाव डालती हैं? क्या फिल्मों द्वारा लोगों की

चेतना और सोच में बदलाव लाया जा सकता है ? फिल्मों के प्रति लोगों में नशे की हद तक आकर्षक क्यों होता है ? फिल्म लोगों की किन भावनाओं और इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करती है ? मार्क्सवादी विचारक वाल्टर बेंजामिन ने विचार करते हुए लिखा है कि पूँजीवादी समाज से पूर्व के समाज में कला और जनता के बीच एक दूरी थी। कला का एक प्रभामंडल व्याप्त होता था । लेकिन आज जनता में यह इच्छा रहती है । कि वस्तुएँ आपके ज्यादा नजदीक और अधिक मानवीय हों । उन्होंने अपनी इस इच्छा पर इस बात से विजय प्राप्त की है कि कला का यांत्रिक पुनरुत्पादन संभव है । यह पुनरुत्पादन अब पूजा की वस्तु नहीं रह गए हैं, वरन् बाजार में बेची और खरीदी जाने वाली वस्तुएँ हैं । कला अब अपने दर्शकों आत्मसात करने की जगह स्वयं अपने, दर्शकों द्वारा आत्मसात की जा रही है । वास्तव में फिल्में राजनीतिक आंदोलनों की शक्तिशाली वाहक बन गई हैं, यहाँ जनता स्वयं अपने सामने खड़ी नजर आती है ।

इंटरनेट:

बीसवी शताब्दी के अंतिम दशक में जनसंचार के क्षेत्र में जिस नवीनतम माध्यम ने क्रांति उपस्थित की है वह है इंटरनेट इस शताब्दी का मनुष्यता को दिया गया यह एक सर्वश्रेष्ठ उपहार है । आज के इस सूचना युग (Age of information) का सर्वाधिक तेज एवं सशक्त माध्यम है । इसने जन संचार के सभी माध्यमों चाहे मुद्रित माध्यम समाचार पत्र पत्रिकाएँ पुस्तकें आदि हो या रेडियो (आकाशवाणी, दूरदर्शन (टेलीविजन) या फिल्म आदि सभी को अपने में समाहित कर लिया । यह जनसंचार का एक हाई टेक रूप और सूचना क्रांति का संवाहक सही अर्थों में इसने पूरी दुनिया को एक गांव के रूप में बदल दिया है । इसके महत्त्व के विषय में गिरीश्वर मिश्र ने कहा है कि "इंटरनेट - ने लोगों को वह सामर्थ्य दी है कि वे खुद इस दुनिया में अपने लिए बोलें । वस्तुतः इंटरनेट ने सूचना और विषयवस्तु के साथ एक सर्जनात्मक संबंध की दिशा दिखाई है । इससे पूर्ववर्ती जनसंचार माध्यम केवल विषय-वस्तु या सूचना देते थे, निष्क्रिय और संवादहीन इंटरनेट व्यक्ति को उसकी सीधी भागीदारी का सशक्त माध्यम उपलब्ध करता है । "

इंटरनेट कम्प्यूटरों का एक विराट नेटवर्क है जो दुनियाभर में फैले छोटे-बड़े कम्प्यूटरों को आपस में जोड़ता है । यह एक संजाल (जाल) है जो टेलीफोन लाइनों तथा केबल के माध्यम से एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से संपर्क करता है । यह विश्व का सबसे बड़ा तथा लोकप्रिय नेटवर्क है । इसके माध्यम से हम विश्व के किसी भी व्यक्ति से संपर्क कर सकते हैं । विश्व के लगभग सभी नेटवर्क इंटरनेट से जुड़े हैं । यह विश्व से किसी भी कम्प्यूटर या साइट से युजर को जोड़ देता है । जैसे दो व्यक्ति टेलीफोन पर बातचीत कर रहे हों । जिस तरह दुनिया भर में टेलीफोन का जाल बिछा है और हम दुनिया में किसी से भी फोन पर बात कर सकते हैं, ठीक उसी तरह इंटरनेट भी दुनिया भर के कम्प्यूटरों को जोड़कर बनाया गया जाता है । इसको **www** अर्थात् **world wide web** भी कहते हैं । यह टेलीफोन लाइनों के माध्यम से दूर-दूर स्थानों और देशों के कम्प्यूटरों को जोड़कर बनाया गया नेटवर्क है, जो कि -

- १) आपस में अंतः संबंधित या इंटरकनेक्टेड है ।
- २) सूचनाओं के आदान-प्रदान और डाटा में साझीदारी की सुविधा देते हैं ।

3) एक सिंगल नेटवर्क की तरह काम करते हैं।

इंटरनेट का विकास गत दशक में हुआ है जिसके माध्यम से उपभोगता शब्दों, चित्रों, ध्वनि, की सहायता से किसी व्यक्ति, संस्था अथवा विषय की सूचनाएँ ले दे सकता है और प्रयोग आसानी से कर सकता है।

इंटरनेट का विकास:

इंटरनेट का विकास संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के रक्षा विभाग की एडवांस रिसर्च प्रोजेक्ट के द्वारा १९६० में हुआ। तत्कालीन रूस और अमेरिका में शीतशुद्ध (Cold war) चल रहा था ऐसे में अमेरिका को संदेश भेजने के लिए ऐसे माध्यम की जरूरत पड़ी जिसके माध्यम से रूस द्वारा हमले की स्थिति में आर्मी, नेवी और एयर फोर्स के बीच तालमेल बना रहे और वह माध्यम इलेक्ट्रॉनिक टेक्स्ट आधारित इंटरनेट था। यह उस समय सिर्फ सेना के अधीन था।

इंटरनेट के प्रथम सर्वदेशीय नेटवर्क की शुरुआत १९६२ में अमेरिका की मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (MIT) के जे. सी. आर. लिंकलैंडर ने की। सन १९६२ के ही दिसम्बर महीने में डिफेंस एडवांस प्रोजेक्ट एजेन्सी ने इसके विस्तार के लिए कदम उठाया। सन् १९६९ में एडवांस रिसर्च प्रोजेक्ट एजेन्सी ने संयुक्त राज्य अमेरिका के चार विश्वविद्यालयों के कम्प्यूटरों की नेटवर्किंग करके बाकायदा इंटरनेट की शुरुआत की। इसका एक अन्य उद्देश्य था, आपात स्थिति में जबकि संपर्क के सभी माध्यम फेल हो चुके हों, तब आपस में इसके द्वारा संपर्क स्थापित किया जा सके।

आठवें दशक तक आते आते इंटरनेट दो कम्प्यूटरों के बीच संचार का प्रमुख माध्यम बन गया। समय के साथ इसमें अन्य टेक्नोलॉजी का प्रयोग होता रहा और यह अधिक उन्नत रूप में आज संचार का प्रमुख माध्यम बनकर उभरा है। यह कह सकते हैं कि २१ वीं शताब्दी की संचार की सबसे महत्तम उपलब्धि है। यह सूचना आदान-प्रदान करने की संसार की सबसे बड़ी व्यवस्था है। यह न तो प्रोग्राम है नाही सॉफ्टवेयर वह एक ऐसा प्लेटफॉर्म या स्थल है जहाँ से लोग विभिन्न सूचनाएँ मुफ्त में प्राप्त कर सकते हैं।

संचार क्रांति के औचित्य तथा भविष्य का आकलन करते हुए 'राष्ट्रीय सहारा' समाचार पत्र के हस्तक्षेप परिशिष्ट में विचार से आकलन किया गया है कि किस गति से इंटरनेट आज इस संचार - क्रांति को दुनिया में नए आयामों को बना रहा है। जिस सूचना महामार्ग की इन दिनों दौड़ मची है, वह इंटरनेट के असीमित उर्वर गर्भ से ही पैदा हुआ है। विश्व में इस समय जितने कम्प्यूटर नेट सक्रिय हैं, उनमें इंटरनेट सबसे बड़ा है। हालांकि दुनिया भर में अभी तक कितने कम्प्यूटर इससे जुड़े हैं या कितने लोग इस महा तंत्र का लाभ उठा रहे हैं इसकी निश्चित संख्या बता पाना बहुत कठिन है। - इंटरनेट पर किसी का भी एकमात्र नियंत्रण नहीं है। दुनिया के किसी कोने में बैठकर आप अपने किसी परिचित से इंटरनेट के माध्यम से बातें कर सकते हैं, जरूरी सूचनाएँ ले व सकते हैं, बाजारों- दुकानों पर नजर रख सकते हैं आदि आदि। -

भारत में इंटरनेट:

भारत में इंटरनेट की शुरुआत १९८७ में एन.सी.एस.टी. और आइ.आइ.टी. बाम्बे के बीच डायल अप ई-मेल सेवा द्वारा हुई। इसके पश्चात विदेश संचार निगम लिमिटेड (VSNI) ने १५ ऑगस्ट १९९५ में कामर्शियल इंटरनेट एक्सेस सेवा की शुरुआत की। अपने प्रारंभिक रूप में यह सेवा दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता और चेन्नई महानगरों तक सीमित थी। इसके प्रति उत्सुकता को देखते हुए १९९५ के अंत तक बंगलौर और पुणे में भी इस सेवा का विस्तार कर दिया गया। बाद के वर्षों में सरकार ने अपने स्वामित्व को समाप्त करते हुए प्राइवेट कम्पनियाँ को भी इंटरनेट सर्विस चलाने की मान्यता प्रदान की। परिणाम स्वरूप विभिन्न उत्पादों के डिस्ट्रीब्यूटर्स, बैंक व वित्तीय संस्थान प्रतिष्ठान पत्रकार और छात्रों ने इसे हाथ अपना लिया।

आजकल इंटरनेट केवल संदेशों के भेजने या प्राप्त करने का माध्यम मात्र पर नहीं रह गया है। यह व्यापार करने और वस्तुओं के बेचने खरीदने का भी सर्वोत्तम माध्यम बन गया है। इतना ही नहीं - सभी भारतीय भाषाओं को इंटरनेट के माध्यम से प्रयोग करने की क्षमता का विकास किया जा रहा है। आज भारत में कई ऐसे इंटरनेट सर्विस प्रोवाइडर (प्रदाता) हैं जो अंग्रेजी के अलावा हिंदी, उर्दू, तामिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, बांग्ला और पंजाबी जैसी भारतीय भाषाओं में संदेश भेजने व प्राप्त करने की सुविधा प्रदान कर रहे हैं।

जनसंचार माध्यम के रूप में इंटरनेट:

वस्तुतः इंटरनेट कम्प्यूटरों के संजाल का नाम है। जिसमें वह भागीदारी कर सकता है जिसके पास कम्प्यूटर है। इस लिए इसे एक विशेष वर्ग का संजाल भी कह सकते हैं। परंतु आजकल शहरों में अनेक प्रकार के सायबर कैफे हैं जहाँ पर आप कुछ रूप में खर्च करके नेट सर्फिंग कर सकते हैं और देश-दुनिया की खबरे से रूबरू हो सकते हैं। इंटरनेट समाचार पत्रों के एकाधिकार से अलग एक भिन्न प्रकार का एकाधिकार बनाता है। क्योंकि इसका कोई भी मालिक नहीं होता है। मीडिया का मालिक पूंजीपति वर्ग हो सकता है जबकि बेबसाइड का मालिक मामूली व्यक्ति भी बन सकता है। इंटरनेट पर यह सुविधा होता है कि कोई भी अपनी वेबसाइट खोल सकता है। इस काम के लिए मात्र एक कम्प्यूटर, एक टेलीफोन कनेक्शन के साथ इंटरनेट कनेक्शन लेने भर की दरकार होती है। मोबाइल धारकों को अब टेलीफोन कनेक्शन की आवश्यकता भी नहीं होती है। मामूली रूप से खर्च करके कोई भी अपनी वेबसाइट खोल सकता है जो बड़ी से बड़ी वेबसाइट की भाँति पूरी दुनिया में देखी जा सकती है।

इंटरनेट वस्तुतः जनसंचार का एक नया माध्यम है। इस माध्यम में भी संचार के मूल तत्वों का स्वरूप वही रहता है जो प्रिंट या मुद्रित माध्यम, श्रव्य या रेडियो अथवा दृश्य श्रव्य माध्यमों में होता है। बस यहाँ उन्नत किस्म की तकनीक का प्रयोग होता है। इंटरनेट में संचार की तकनीक एक दूसरे से भिन्न हो सकती है। लेकिन संचार की गति और उसकी कीमत, लोगों तक उसकी पहुँच, संग्रहण शक्ति और सुविधा जिससे सूचनाएँ एकत्रित की जा सकें, सूचना का महत्व और बुद्धिमत्ता कभी भी स्थानान्तरित नहीं की जा सकती।

प्रसिद्ध ई-पत्रकार स्नेहलता दूबे का मानना है कि आनेवाले समय में वेब पत्रकारों की - जिम्मेदारी और अधिक बढ़ जाएगी। उन्हें इस बात पर ध्यान देना होगा कि कोई भी महत्वपूर्ण समाचार छूट न जाय और अर्थहीन समाचार साइट पर न चला जाए क्योंकि यहाँ खबरों का प्रवाह अबाध गति से होता है ऐसे में समाचारों की महत्ता को पहचानकर उसे ऑनलाइन करना एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी होगी।

एसे में एक वेबपत्रकार को काफी सजगता और कुशलता से काम करना होगा और उसे साथ ही दुनिया भर के वेब समाचारों पर भी अपनी आँखें जमाए रखना होगा कि वे लोग किन खबरों को प्रमुखता दे रहे हैं।

२१ वी शताब्दी इंटरनेट जनसंचार के माध्यम का एक ऐसा प्लेटफॉर्म बनकर उभरा है जहाँ पर एक ही जगह पर पूरी दुनिया की सूचनाओं का आदान-प्रदान संभव है। जनसंचार के किसी भी माध्यम में अभी तक संभव नहीं हो पाया है। इसके लिए कोई भी भौगोलिक दूरी मायने नहीं रखती है। इस माध्यम के द्वारा कोई भी व्यक्ति या पत्रकार कई वर्षों से आफिसों में व्याप्त भ्रष्टाचार और अनियमितताओं को उजागर कर सकता है। इसके लिए इंटरनेट एक अचूक हथियार बनकर उभरा है।

भारत जैसे प्रजातंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार घोटालों को भी आसानी से कोई भी पत्रकार उजागर कर सकता है। क्योंकि इंटरनेट पर सूचना को खुले तौर पर आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। कोई भी सूचना बस एक क्लिक करने भर की देरी में आपके समक्ष उपलब्ध हो जाती है। इस तरह देखा जाय तो इंटरनेट सच का पर्दाफाश करने का भी एक सशक्त माध्यम है। इंटरनेट के इस रूप से हमारी सत्यं शिवं सुंदरम् की उक्ति भी चरितार्थ होती है।

जनसंचार माध्यम और विज्ञापन

वर्तमान समय में जनसंचार माध्यम के कई स्वरूप हमारे समक्ष आये हैं जो निरंतर आम जनता तक अपनी बात पहुँचाने व जनसंपर्क में सबसे ज्यादा सफल हैं- रेडियो, टेलीविजन, दूरदर्शन, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, सिनेमा, मोबाईल, इंटरनेट, पैम्पलेट, होर्डिंग इत्यादी इन्हीं जनसंपर्क व जनसंचार माध्यमों के द्वारा विभिन्न कंपनियों, उद्योगपति, सरकार, भिन्न - भिन्न विज्ञापन, प्रस्तुत करके आम जनता तक अपने माल विक्री के लिए आसानी से पहुँच पाते हैं, साथ जनहित में जारी कई प्रकार की सूचनाएँ व अधिकारों की जानकारी भी इस माध्यम द्वारा दी जाती है।

हमारे अध्ययन की पहला पढ़ाव यह है कि हम जाने विज्ञापन क्या है, विज्ञापन का दीर्घ रूपी अध्ययन हम इसके अर्थ व परिभाषा के अध्ययन द्वारा कर सकते हैं।

विज्ञापन का अर्थ:

विज्ञापन शब्द अंग्रेजी शब्द 'Advertisement' का हिन्दी रूपांतर है। Advertisement लैटिन भाषा के 'एडवर्ट' से बना है। जिसका अर्थ है 'to turn to' या मोड़ देना।

इस प्रकार विज्ञापन का आशय उस क्रिया से है जो "किसी व्यक्ति को किसी विशेष तत्व की ओर मुड़ने पर विवश कर देती है।"

विज्ञापन की परिभाषाएँ:

१) द न्यू एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार:

"विज्ञापन संप्रेषण का वह प्रकार है जो कि उत्पादक अथवा कार्य को उन्नत करने, जनमत को प्रभावित करने, राजनीतिक सहयोग प्राप्त करने, एक विशिष्ट कारण को आगे बढ़ाने अथवा विज्ञापनदाता द्वारा कुछ इच्छित प्रतिक्रियाओं को प्रकाशित करने का उद्देश रखता है।"

२) शैल्डन के अनुसार:

"विज्ञापन वह व्यावसायिक शक्ति है जिसके अंतर्गत मुद्रित शब्दों द्वारा विक्रय वृद्धि में सहायता मिलती है, ख्याति निर्माण होती है एवं साख बढ़ती है।"

३) बी. एस. राठौर के अनुसार:

"विज्ञापन सूचनाओं को सार्वजनिक भुगतान प्राप्त साधनों द्वारा प्रचारित करता है। जिसका उद्गम स्पष्टतः सौजन्य प्राप्त संगठन के रूप में पहचाना जाता है।"

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि विज्ञापन शब्दों चित्रों, आलेखों आदि के सहयोग से तैयार की गई ऐसी सूचना प्रद विज्ञप्ति है, जो उपभोक्ताओं को प्रभावित

कर अपने उत्पादन को खरीदने के लिए तैयार करती है। वह जिज्ञासाएँ पैदा करती है और उनका समाधान भी सूझाती है। इसलिए आज विज्ञापन किसी भी व्यवसाय की अनिवार्य शक्ति बनकर सामने आया है।

विज्ञापन के गुण:

- १) विज्ञापन में ध्यान आकर्षित करने की क्षमता हो
- २) अभिनव एवं मौलिक साज-सज्जा हो
- ३) विज्ञापित वस्तु की मुख्य विशेषता पर बल हो
- ४) साक्षर और विद्वान सभी के लिए विज्ञापन सुबोध हो
- ५) तथ्यों की तर्कपूर्ण प्रस्तुति हो।
- ६) विज्ञापन में गतिशीलता हो।
- ७) चित्र, लिखित तथ्य, ट्रेडमार्क और शीर्षक आदि सभी में समन्वित हो। सबका मिलाजुला प्रभाव दर्शक और पाठक पर पड़े।
- ८) विज्ञापन इस कौशल्य से प्रस्तुत हो कि वह रुचिकर हो, मनोरम लगे, बार-बार स्मृति को प्रभावित करे एवं खरीदने अथवा अपनाने हेतु सबको विवश कर दें।

विज्ञापनो का वर्गीकरण:

१) उद्देश के आधार पर वर्गीकरण:

- अ) **वस्तुओं या सेवाओं के विज्ञापन:** ये विज्ञापन किसी वस्तु या सेवा की प्रतिष्ठा या बिक्री बढ़ाने के लिए बनाये और जारी किए जाते हैं। आज बाजार में जो विज्ञापन देखने को मिलते हैं उनमें अधिकांश इस श्रेणी में आते हैं।
- ब) **संस्थानीय विज्ञापन:** इन विज्ञापनों का उद्देश्य किसी वस्तु या सेवा की बजाए कम्पनी के लिए प्रतिष्ठा और सद्भावना अर्जित करना होता है। जैसे- नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए आँख का दान माँगने का विषय है।

२) माँग के प्रभाव स्तर के आधार पर विज्ञापनों का वर्गीकरण:

- अ) **प्राथमिक माँग पैदा करने वाले विज्ञापन:** इन विज्ञापनों में किसी एक ब्रांड की बजाए समूचे वस्तु वर्ग के लिए माँग बढ़ाने पर जोर दिया जाता है। उदा. "अंडा उत्पादक समन्वय समिती का विज्ञापन संडे हो या मंडे रोज खाएँ अंडे।" नेशनल एग को ऑर्डिनेशन कमेटी का वह विज्ञापन जिसका उद्देश्य अंडो की प्राथमिक माँग को बढ़ाना है।
- ब) **चुनिंदा माँग को उत्प्रेरित करने वाले विज्ञापन:** इन विज्ञापनों में किसी वस्तु का सामूहिक या सामान्य विज्ञापन न होकर एक ब्राण्ड विशेष का विज्ञापन होता है। इन

विज्ञापनों का उद्देश्य बाजार में एक ब्रांड विशेष की प्रतिष्ठा बनाना होता है। ये विज्ञापन प्रतिस्पर्धात्मक होते हैं और इनमें वस्तुओं के गुणों का लंबा चौड़ा बखाना होता है। उदा. "पेट का मोटापा घटाने का आसान और असरदार साधन" "टमी ट्रिमर"।

इस प्रकार से विज्ञापन के अन्यप्रकार भी हैं।

१) प्रत्यक्ष कार्यवाही वाले विज्ञापन:

जिनमें उपभोक्ता को तुरंत कार्यवाही के लिए कहा जाता है, उदा. 'तुरंत संपर्क करें १५% की छूट स्टॉक रहने तक, बजट से पहले कार खरीदे।'।

२) अप्रत्यक्ष कार्यवाही वाले विज्ञापन:

इन विज्ञापनों का प्रयास उपभोक्ताओं में विज्ञापन कर्ता और उसके द्वारा निर्मित वस्तुओं के बारे में एक अनुकूल वातावरण पैदा करना होता है। उदा. राष्ट्रीय निर्माताओं के अधिकांश विज्ञापन अभियान अप्रत्यक्ष कार्यवाही वाले होते हैं।

३) व्यक्तिगत विज्ञापन:

उदा. "शुक्र है घर में डेटॉल साबुन रहता है।" इसका प्रयोग व्यक्ति स्वयं करते हैं।

४) सहकारी विज्ञापन:

उदा. "बीमारी, शिक्षा, जन्म, या हो घर में ब्याह 'सरकारी बैंक में जाइए, बैंक ही करे निबाह।"

इस प्रकार से औद्योगिक विज्ञापन, वर्गीकृत विज्ञापन, सजावटी विज्ञापन, वित्तीयविज्ञापन, राजनीतिक विज्ञापन इत्यादी प्रकार हैं।

विज्ञापन कानून और संहिताएँ:

विज्ञापनकर्ता को मौजूदा कानूनों के बारे में यथेष्ट जानकारी होनी चाहिए। भारत में अनेक उपभोक्ता संरक्षण और विज्ञापन से संबंधित अनेक अधिनियम लागू हैं। जिनकी अवहेलना करना दंडनीय है। इन अधिनियमों का ब्यौरा नीचे प्रस्तुत है।

१) व्यापार एवं व्यापारिक माल चिह्न अधिनियम (१९५८):

यह अधिनियम व्यापारिक चिह्नों को सुरक्षा प्रदान करता है। एक व्यापारिक चिह्न पर इसके निर्माता का स्वामित्व होता है और उसे केवल उसके द्वारा ही प्रयोग किया जा सकता है। अन्य किसी द्वारा उसका दुरुपयोग करना अपराध है।

२) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (१९८६):

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, १९८६ उपभोक्ताओं के हितों के बेहतर संरक्षण के लिए है और इस प्रयोजन के लिए उपभोक्ता विवादों निपटारे के लिए उपभोक्ता परिषदों और अन्य प्राधिकरणों की स्थापना और उनसे संबंधित विषयों को उपलब्ध कराने के लिए है। जैसे-

- क) ऐसे माल के विपणन के विरुद्ध संरक्षित किए जाने का अधिकार जो जीवन और संपत्ति के लिए परिसंकटमय है।
- ख) जहाँ भी संभव हो वहाँ प्रतिस्पर्धा मूल्यों पर माल तक पहुँच का आश्वासन दिए जाने का अधिकार।
- ग) अनुचित व्यापारिक व्यवहार वा उपभोक्ताओं के अनुचित शोषण के विरुद्ध प्रतितोष का अधिकार
- घ) उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार।

३) औषधि एवं प्रसाधन साम्रगी अधिनियम १९४०:

यह एक उपभोक्ता संरक्षण विधान है, जिसका मुख्य संबंध देश में विनिर्मित औषधियों के मानकों और शुद्धता से तथा औषधियों के विनिर्माण, विक्रय और वितरण के नियंत्रण से है। सरकार किसी भी ऐसी औषधि या प्रसाधन साम्रगी के आयात, उसके उत्पादन और उसके वितरण आदि पर रोक लगा सकती है यदि वह उत्तम स्तर की नहीं है। इस अधिनियम में यह भी प्रावधान है कि विज्ञापनों में सरकारी विश्लेषक की रिपोर्ट का इस्तेमाल करना अपराध है।

४) एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (संशोधन) अधिनियम १९६९:

इस अधिनियम के दो मुख्य उद्देश्य हैं। एक आर्थिक शक्ति के सघनीकरण को रोकना ताकि एकाधिकार वाले व्यापारिक व्यवहार पर अंकुश लगाया जा सके और राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुरूप विकासों को बढ़ावा मिले। दो, ऐसे गलत व्यापारिक व्यवहारों पर रोक लगाना जो उपभोक्ताओं के हितों के विरुद्ध हैं।

५) बाट और माप मानक अधिनियम १९७६:

यह अधिनियम वाणिज्यिक व्यवहारों, औद्योगिक मापों और जनता तथा मानव सुरक्षा के लिए आवश्यक मापों में मेट्रिक शुद्धता सुनिश्चित करके उपभोक्ताओं को बेहतर सुरक्षा प्रदान करने के लिए परिकल्पित है। गैर मानकीय, बाटों मापों के द्वारा वस्तुओं के विक्रय या परिदान जैसे गंभीर अपराधों के लिए दंड का प्रावधान है।

६) पंजाब आबकारी अधिनियम १९१४:

इस अधिनियम के अधीन ऐसे आवेदनों पर प्रतिबंध है जो मदिरा के प्रयोग को प्रचारित करते हैं। अन्य राज्यों में भी ऐसे ही कानून लागू हैं जिनमें मदिरा और नशीली वस्तुओं के प्रचार पर प्रतिबंध लगे हुए हैं।

इसी प्रकार से चिह्न एवं नाम (अनुपयुक्त प्रयोग परशोक) अधिनियम, १९५०, खाद्य अपमिश्रण निवारण (संशोधन) अधिनियम, १९८६ स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम १९८६ इत्यादी भी हैं।

विभिन्न जनसंचार माध्यमों में विज्ञापन:

विज्ञापन का जादू आज चतुर्दिक व्याप्त है। विज्ञापन केवल बिक्री के लिए ही नहीं होता। इससे छवि निर्माण का कार्य लिया जाता है। जनसंचार पत्र पत्रिकाओं से लेकर राजमार्ग, रेलवे स्टेशन, बस - स्टैंड, सिनेमाघर, चौराहा, यातायात, वाले सभी क्षेत्र विज्ञापन के केंद्र बिंदु हैं। विज्ञापनों के माध्यम से संदेश अत्यंत कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। तो विभिन्न जनसंचार माध्यमों में विज्ञापन को निम्न स्वरूप से स्पष्ट किया जा सकता है -

१) समाचार पत्र:

भारत में साक्षरता, शहरीकरण और आय में वृद्धि परिणामस्वरूप समाचार पत्र के पाठकों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है। समाचार पत्रों की आय के दो स्रोत हैं एक विज्ञापन से होने वाली आय और - दूसरे मुद्रित प्रतियों की बिक्री से होने वाली आय आमतौर पर समाचार पत्रों की कुल आय का लगभग आधा हिस्सा विज्ञापनों से प्राप्त होता है जबकि वे समाचार पत्रों में मात्र २८ से ३५ प्रतिशत जगह घेरते हैं। कुछ ऐसे समाचार पत्र भी हैं जो ५० प्रतिशत से अधिक स्थान विज्ञापनों को देते हैं।

समाचार पत्रों में लगभग हर किस्म के विज्ञापन प्रकाशित होते हैं और वे समाज के एक बड़े वर्ग की विविध जरूरतों को पूरा करते हैं।

गुण / लाभ:

- १) समाचार पत्रों में विज्ञापन द्रुतगति से प्रकाशित कराए जा सकते हैं। विज्ञापन कर्ता अपने विज्ञापन अगली सुबह समाचार पत्रों में छपवा सकते हैं। इतना ही नहीं, यदि विज्ञापन में अंतिम समय में भी कोई रद्दों बदल किया जाना है, तो ऐसा करना संभव है।
- २) दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित विज्ञापन प्रति पाठक औसत खर्च की दृष्टि से सस्ता है। विज्ञापन तैयार करने में भी कम खर्च आता है।
- ३) अधिकांश पढ़ी-लिखी जनता समाचार पत्रों की पाठक है। समाचार पत्रों में ऐसी सामग्री होती है।

जो सब के लिए ज्ञानवर्धक और रुचिकर है।

सीमाएँ:

- १) समाचारपत्रों का जीवन बहुत छोटा होता है। अगले दिन नया समाचार पत्र आ जाने के कारण बीते दिन का समाचार पत्र बासी हो जाता है।
- २) शहरी नागरिकों को जीवन इतना व्यस्त हो गया है कि समाचार-पत्रों को तन्मयता और गंभीरता से पढ़ना संभव नहीं रह गया है।
- ३) कुछ समाचार पत्रों को छोड़कर अधिकांश का मुद्रण स्तर घटियाँ हैं और इसलिए समाचार पत्रों में प्रकाशित विज्ञापन पाठकों को आकर्षित नहीं करते।

- ४) समाचार पत्रों में जिन पृष्ठों पर विज्ञापन भरे होते हैं उन्हें अनेक लोग आदतवश या समय के अभाव के कारण यँ ही बड़ी लापरवाही से पलट जाते हैं।

२) पत्रिकाएँ:

आज देश में पत्रिकाओं की खूब भरमार है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि से संबंधित पत्रों में लोगों की रुचि के जागरण और नई मुद्रण तकनीकों के आ जाने के परिणाम स्वरूप पत्रिका प्रकाशन में विज्ञापन में भी अभूतपूर्व विकास हुआ है।

पत्रिकाएँ अनेक प्रकार की होती हैं- साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, एवं वार्षिक। हर पत्रिका का अपना विशेष पाठक वर्ग होता है।

पत्रिकाओं में विज्ञापन हेतु पृष्ठ के हिसाब से स्थान खरीदा जाता है। रंगीन विज्ञापन वाले पृष्ठ का मूल्य श्वेत व श्याम पृष्ठ से कई गुणा अधिक होता है। दूसरे, तीसरे और चौथे कवर पर प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों की दर सबसे अधिक होती है। विज्ञापन को भीतर के २ पृष्ठों पर एक साथ (double spread) प्रकाशित कराया जा सकता है। यदि एक विज्ञापन को कई अंकों में दोहराया जाना है तो पत्रिकाएँ विज्ञापन कर्ताओं को एक निश्चित छूट देती हैं।

गुण / लाभ:

- १) अधिकांश पत्रिकाओं में कागज और छपाई उत्तम किस्म का होती है, इसलिए इनमें विज्ञापन आकर्षक ढंग से, विविध रंगों और सुंदर टाइपो में प्रकाशित कराये जा सकते हैं।
- २) समाचार पत्रों की अपेक्षा पत्रिकाओं का जीवन लंबा होता है।
- ३) पत्रिकाएँ महिनो और वर्षो तक रखी जा सकती हैं। इनमें छपी सामग्री को बाद में भी पढ़ा जा सकता है।

सीमाएँ:

- १) पत्रिकाओं के लिए विज्ञापन तैयार करने पर काफी खर्च आता है और इसे बनाने में कई कठिनाइयाँ विद्यमान हैं।
- २) पत्रिकाएँ छोटे विज्ञापनकर्ता के लिए लाभदायी नहीं हैं क्योंकि विज्ञापन की दरें बहुत महंगी होती हैं।
- ३) पत्रिकाएँ, निम्न आय वर्गों तक नहीं पहुँच पाती, वे कम पढ़े लिखे होते हैं और उनके पास - पर्याप्त धन नहीं होता।

३) रेडियो (आकाशवाणी):

रेडियो माध्यम संचार का नेत्ररहित तथा अंधा माध्यम भी कहा जाने लगा है क्योंकि इसमें संचार और सूचना प्राप्तकर्ता एक दूसरे को देख नहीं सकता है। यह ध्वनि के द्वारा श्रोताओं

के कानों को स्पर्श करता है। इसलिए इसे नितांत श्रव्य माध्यम भी कहा जाता है। रेडियों की सभ्यताएँ बहुत अधिक हैं। बशर्ते की कार्यक्रम रुचिकर हो। परिश्रम लगने और नये अनुसंधान की नई तकनीकों को अपनाकर रेडियों कार्यक्रमों को व विज्ञापन को प्रभावी बनाया जा सकता है।

रेडियों पर विज्ञापनों का सिलसिला विविध भारती कार्यक्रम के अंतर्गत १ नवंबर १९६७ से शुरू हुआ जो अब विविध भारती के २९ केंद्रों पर व E.M. के सभी चैनलों पर जारी है। रेडियों पर होने वाले विज्ञापनों से आकाशवाणी को प्रति वर्ष लगभग ३० करोड़ रुपये की आय होती है।

यद्यपि दूरदर्शन के आ जाने से रेडियों माध्यम को काफी आघात पहुँचा है। लेकिन क्योंकि रेडियो माध्यम दूरदर्शन की अपेक्षा कहीं ज्यादा सस्ता है व आम जनता में आसानी से उपलब्ध हो जाता है।

रेडियों पर दो किस्म के विज्ञापन प्रसारित होते हैं:

१) स्पाट विज्ञापन:

स्पाट विज्ञापन छोटी अवधि के होते हैं ७, १०, १५, २०, ३० सेकेंड के। इन्हें किसी निश्चित समय पर प्रसारित किया जाता है।

२) प्रायोजित कार्यक्रम विज्ञापन

'चित्रलोक मिले जुले गाने', 'संगम', 'सबरस', 'जयमाला', 'छायागीत', आदि मनोरंजन कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रायोजित विज्ञापन प्रसारित कराए जा सकते हैं। इनमें एक विज्ञापनकर्ता के लिए ६० सेकेंड से लेकर दो मिनट तक का समय मिलता है।

गुण / लाभ:

- १) रेडियों संदेशों को बहुत थोड़े समय में तैयार किया जा सकता है और इनमें यदि आवश्यकता हो तो आखिरी समय तक संशोधन या परिवर्तन संभव है।
- २) रेडियों के माध्यम से विशाल भौगोलिक क्षेत्र को संबोधित किया जा सकता है।
- ३) संदेशों को राष्ट्रभर में प्रसारित करना आसान है। नित्य प्रसारण के कारण संदेशों में निरंतरता भी रखी जा सकती है।
- ४) दूसरे माध्यमों की तुलना में रेडियो सस्ता है और इस तक स्थानिय व छोटे विज्ञापन कर्ताओं की पहुँच मुमकिन है।

सीमाएँ:

- १) रेडियो पर विज्ञापन देखा नहीं जा सकता है, पढ़ा भी नहीं जा सकता और अक्सर इतना संक्षिप्त होता है कि इसे भूल जाना संभव है।

- २) यदि किसी ने एक बार विज्ञापन नहीं सुना या किसी कारण वश रेडियो चालू नहीं हो तो उस श्रोता तक संदेश पहुँचाने के लिए पुनः प्रयत्न करने पड़ेंगे।
- ३) रेडियो पर दिए गए बहुत सारे संदेश बरबाद जाते हैं क्योंकि रेडियो संदेशों के तन्मयता से नहीं सुना जाता।

४) दूरदर्शन टेलीविजन:

दूरदर्शन का मानव व्यक्तित्व पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यह एक हक-श्रव्य माध्यम है। आज यह एक लोकप्रिय माध्यम बन गया है। जन संचार का एक सशक्त माध्यम तो दूरदर्शन बन ही गया है और भविष्य में भी इस माध्यम से अपार संभावनाएँ उजागर होंगी।

दूरदर्शन पर उन सब वस्तुओं का विज्ञापन होता है जो दैनिक उपभोग की है। दूरदर्शन पर व्यावसायिक विज्ञापनों की शुरुआत जनवरी १९७६ को हुई और तब से लेकर आज तक वर्ष दर वर्ष विज्ञापन कर्ताओं की संख्या में बढ़ोत्तरी होती रही है। और दूरदर्शन की आय में भी वृद्धि हो रही है। देश में विज्ञापनों पर होनेवाले कुल व्यय का लगभग २० प्रतिशत दूरदर्शन विज्ञापनों पर होता है। टेलीविजन (दूरदर्शन) विज्ञापनों की दो किस्में हैं।

१) स्पोर्ट विज्ञापन:

स्पोर्ट छोटी अवधि के विज्ञापन होते हैं। १० सेकेंड / १५ सेकेंड आदि / ये टेलीविजन के विभिन्न केंद्रों या नेशनल नेटवर्क पर दिए जा सकते हैं। उदा. 'सुपर एक स्पेशल' समय वर्ग में हिन्दी फीचर फिल्म और चित्रकार शामिल हैं। 'सुपर ए' में रात्रि ९.०० बजे से ९.३० का समय शामिल है। 'ए स्पेशल' में रविवार को प्रातः प्रसारित होनेवाले कार्यक्रम।

२) प्रयोजित कार्यक्रम विज्ञापन:

राष्ट्रीय नेटवर्क और क्षेत्रीय स्टेशनों से प्रयोजित कार्यक्रमों के लिए विज्ञापनों का प्रायोजन स्वीकार किया जाता है ३० मिनट के किसी कार्यक्रम के लिए ४० और ६० (why फीट) अवधि के विज्ञापन टेप टेलीकास्ट कराये जा सकते हैं।

ये विज्ञापन एक ही कंपनी के हो सकते हैं बशर्त कंपनी निर्धारित मूल्य देने को तैयार हो। दो-तीन कंपनियां मिलकर भी प्रायोजन कर सकती हैं।

गुण / लाभ:

- १) यह माध्यम बेहद चुनिंदा और लचीला है और इसीलिए इसे आवश्यकता अनुसार इस्तेमाल किया जा सकता है।
- २) विज्ञापन किसी कार्यक्रम विशेष में दिया जा सकता है या एक निश्चित समय पर।
- ३) इस माध्यम की पहुँच बड़ी व्यापक है। सभी धर्मों, वर्गों, जातियों, प्रांतों और आयु के लोग टेलीविजन कार्यक्रमों के दर्शक हैं।
- ४) टेलीविजन अधिक प्रतिष्ठा वाला माध्यम है।

सीमाएँ:

- १) टेलीविजन विज्ञापन का जीवन बहुत छोटा होता है। यदि किसी ने एक बार इसे 'मिस' कर दिया तो उसे दोबारा सुनना और देखना तभी संभव होगा जब दोबारा उसे टेलीविजन किया जाए।
- २) अनेक टेलीविजन विज्ञापन ऐसे होते हैं जो विज्ञापनों की भीड़ में अपना असर खो देते हैं।
- ३) किसी किसी कार्यक्रम में एक ही वस्तु के प्रतिस्पर्धात्मक विज्ञापन भी देखने को मिलते हैं जो - वांछित प्रभाव के स्थान पर दर्शकों में भ्रम ही पैदा करते हैं।

बाह्य:

इस प्रकार से जनसंचार माध्यम के कई अन्य प्रकार हैं जिनमें भी विज्ञापन आसानी से दिखाएँ जाते हैं। (बाह्य जनसंचार माध्यम में विज्ञापन)

१) होर्डिंग (प्रकाशन):

यह एक तरह का बड़े आकार का प्रदर्शन बोर्ड होता है। जिसे ऐसे स्थानों पर लगाया जाता है जहाँ जन-जन का ध्यान सहज में आकृष्ट किया जा सके। इस बोर्ड में विज्ञापन का संदेश आकर्षक चित्र बनाकर व्यक्त किया जाता है। आजकल बसों, ट्रेनों, रेलवे स्टेशनों, रेलवे क्रासिंग पर भी होर्डिंग लगाए जाते हैं।

२) धातु के मुद्रित इस्तिहार:

ये इस्तिहार रंगदार होते हैं और उन्हें टीन एल्यूमीनियम की चादरों पर चित्रित किया जाता है। इन संदेश वाहक इस्तेहारों को डाकघरों बैंकों और सरकारी कार्यालयों में प्रदर्शित किया जाता है।

३) न्यून साइन:

यह भी एक प्रकार की होर्डिंग ही होती है। जिसमें बिजली का उपयोग करके विज्ञापन का प्रदर्शन दिन रात किया जाता है। अब कहीं कहीं न्यून साइन द्वारा ताजा समाचार भी यदा-कदा ऐसे स्थानों पर दिखाए जाते हैं, यहाँ लोगो की आवाजाही बनी रहती है। शिमला नगर में हिमाचल टाइम्स के संपादक 'श्रीदेव पांढी' ने हिमाचल की राजधानी शिमला और शिमला नगर के सर्वाधिक भीड़-भाड़ वाली माल रोड पर यह तकनीक अपनाकर विंडो जर्नलिज्म का सफल प्रयोग किया है।

४) सिनेमा स्लाइड तथा विज्ञापन फिल्में:

सिनेमा घरों में स्लाइड का कुछ क्षणों तक पर्दे पर प्रदर्शित किया जाता है। जिसमें संक्षिप्त संदेश ही प्रचारित किया जाता है। इसी तरह संदेश तथा प्रचार कार्य की दृष्टि से विज्ञापन फिल्में दिखाई जाती हैं। बड़े 'आविष्कार और नई' प्रगति को प्रदर्शनियों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। आजतक मेलों और उत्सवों में प्रदर्शनियों लगाई जाती हैं। बड़े राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय

राष्ट्रीय मेलै आधुनिक संचार साधनों की देन है। विश्वसनीयता तथा सहयोग की भावना को प्रेषित करने के लिए प्रदर्शनियाँ एक कारगर साधन है। उदाहरणार्थ पंचवार्षिक योजना की उपलब्धियों को भी प्रदर्शनियों के माध्यम से दर्शाया जाने लगा है। इन सभी बाह्य प्रकार की प्रभावशाली तकनीकों का महत्त्व इस बात पर होता है, कि इनके माध्यम से संदेश को किस कारगर ढंग से प्रदर्शित किया गया है।

६) फिल्म वीडियो कैसेट रिकार्डर:

जनसंचार में फिल्में एवं वीडियो कैसेट रिकार्डर भी सशक्त माध्यम बन गए हैं। यह अब व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि वह इन माध्यमों का किस प्रकार सफल व लाभकारी प्रयोग करता है। फिल्मों से जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जरूरत है ऐसी विज्ञापन फिल्में बनाने की जो कि शिक्षापद एवं प्रेरक हो।

७) इंटरनेट:

वर्तमान तकनीकी युग में विभिन्न प्रकार की वेबसाइटों Yahoo, Gogle, MNS इत्यादी के वेब-पेज को खोलने ही विभिन्न प्रकार के विज्ञापन शिक्षा मनोरंजन व्यवसाय इत्यादी से संबंधित उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में कई प्रकार से विज्ञापन किया जाता है। जो कि मानव के हितार्थ ही है और इनका प्रयोग सार्थक ढंग से किया जाना अपेक्षित है।

संचार माध्यमों की भाषा

आज वर्तमान समय में संचार के कई माध्यम हमारे समक्ष उपस्थित हैं, रेडियों, टेलीविजन, फिल्म, इंटरनेट, समाचारपत्र पत्रिकाएँ, मोबाईल इत्यादि। परंतु यदि हम इन सभी संचार माध्यमों - की भाषा पर ध्यान केंद्रित करें तो सभी माध्यमों की भाषा में हमें भिन्नता नजर आती है। श्रव्य माध्यमों के अंतर्गत मुख्य रूप से रेडियो, टेपरिकार्डर, ग्रामोफोन और लाउडस्पीकर आदि को सम्मिलित किया जाता है। श्रव्य माध्यमों की प्रस्तुति में वक्ता की शक्ति दिखाई नहीं देती है। केवल वक्ता की आवाज सुनाई देती है। इसके अतिरिक्त इन माध्यमों में मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों में संगीत का भी पुट होता है।

श्रव्य भाषा की प्रकृति के अंतर्गत हम मुख्य रूप में:

- १) रेडियों की भाषा
- २) रेडियों समाचार की भाषा और
- ३) रेडियों विज्ञापन की भाषा पर विचार करेंगे।

१) रेडियो की भाषा:

रेडियो 'उच्चारित' माध्यम है, इसलिए इसकी सफलता का मूल आधार भाषा है, यों तो भाषा का उपयोग सभी जनसंचार माध्यमों में किया जाता है, किंतु रेडियों की तो यह आत्मा ही है। सभी प्रसारण विशेषज्ञ इस संबंध में एकमत हैं कि व्यापक जन समुदाय तक संदेश पहुँचाने के लिए प्रसारण की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिससे श्रोतावर्ग आसानी से समझ सके। एक बार जो वाक्य, उक्ति अथवा शब्द प्रसारित हो गया, वह हवा के झोंके की भाँति आगे निकल जाता है, इसलिए सफल प्रसारण की बुनियादी आवश्यकता है - भाषा की सरलता रेडियों की भाषा पर विचार करते समय निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना जरूरी है -

- (१) भाषा की पहली शर्त - सरलता,
- (२) वाक्य रचना जटिल न हो,
- (३) तकनीकी शब्द और
- (४) रेडियों जन-माध्यम।

(१) भाषा की पहली शर्त सरलता:

रेडियो कार्यक्रमों में भाषा को सरल और सुबोध बनाना वास्तव में निरंतर चलती रहने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा के प्रसार के साथ 'लोगों' में साक्षरता बढ़ी है, जिससे उनके भाषाज्ञान का स्तर भी ऊँचा उठा है। उसी के अनुरूप आकाशवाणी में कार्यक्रमों की भाषा में भी परिष्कार हुआ है। बल्कि देश की जनता तक बात पहुँचाना है। जिस भाषा को जन सामान्य समझ

सकता है, वही प्रसारण की भाषा हैं, इसलिए आकाशवाणी सब प्रकार के आग्रहों और विवादों से मुक्त रह कर अन्य भाषाओं के उन शब्दों को सहज और स्वाभाविक ढंग से प्रयोग करने में विश्वास रखता है।

आकाशवाणी में अंग्रेजी शब्दों को लेकर प्रायः समस्या पैदा होती है। कसौटी अंग्रेजी शब्दों के बारे में वही है कि अधिक से अधिक लोग समझ सके तथा भाषा की आत्मा भी नष्ट न हो। कई बार अंग्रेजी शब्दों के दुरुह तथा अनुवाद के कारण भाषा बोझिल हो जाती है। टेलीफोन, इंजीनियर, डॉक्टर, मशीन, कम्प्यूटर, कांस्टेबल, फोटोग्राफर, बजट, कर्पूर, गोल, कंपनी, टीम इत्यादि अनेक शब्द हैं। जिनके प्रयोग से आकाशवाणी को कोई परहेज नहीं है और ये शब्द आप अकसर रेडियों पर सुनते होंगे। ये शब्द बोल चाल में हिन्दी के अपने शब्द बन चुके हैं, दूसरी और ऐसे शब्द भी हैं, जो अंग्रेजी तथा हिन्दी शब्द को मिलाकर बने हैं, न वे पूरी तरह अंग्रेजी शब्द हैं और न ही तत्सम या तद्भव, वे हैं रेलगाड़ी टेलीफोन केंद्र, बसअड्डा, डाक टिकट आदि। प्रसारण धर्मी तो यही देखते हैं कि कौन-सा शब्द या शैली उन लोगों की समझ में आते हैं, जिनके लिए समाचार या अन्य कार्यक्रम प्रसारित किए जा रहे हैं।

(२) वाक्य रचना जटिल न हो:

शब्द भाषा की मूल ईकाई है, परंतु वाक्यों से पृथक् उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं, इसलिए रेडियों में वाक्य ऐसे बोले जाएँ, जिनका अर्थ निकालने के लिए श्रोता को बौद्धिक कसरत न करनी पड़े। रेडियो की पहली आवश्यकता है कि वाक्य छोटे हो। कई बार वाक्य छोटे तो होते हैं, किंतु उनकी रचना इतनी जटिल होती है कि उसे समझने के लिए मस्तिष्क पर दबाव डालना पड़ता है।

रेडियो की भाषा में शब्द संख्या कम तथा वाक्य सरल और संबोध होने चाहिए। मौखिक माध्यम होने के कारण आकाशवाणी में अभिव्यक्ति की एक माँग यह भी है कि शब्द और वाक्य में ऐसे प्रयोग किए जाएं, जिन्हें बोलने में सुविधा हो, दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मुख के सुख को ध्यान में रखकर शब्दों का चयन किया जाए। यह सही है कि अनेक बार भाव को आलंकारिक शैली में प्रस्तुत करना तथा भाषा को अतिरिक्त रूप से प्रभावशाली बनाना आवश्यक हो जाता है, किंतु मुख सुख तथा वाचन सुविधा की आवश्यकता की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। उच्छृंखल, स्खलन, प्रच्छन्न, अप्रत्याशित, पारस्परिक, पतनोन्मुख, वितृष्णा, संलग्नता, प्रगल्भता, अन्योन्याश्रित, मुकर्कर, मासूमियत, जमीदोत आदि ऐसे असंख्य शब्द हैं, जो भाषा को प्रभावशाली तथा अधिक अर्थवान बनाने की क्षमता रखने के साथ 'कर्णप्रिय भी हो सकते हैं, किंतु इनके उच्चारण में कठिनाई हो सकती है।' कई बार वाचक गलत पढ़कर अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं ऐसे शब्दों से बचना चाहिए। कठिन शब्दों का उच्चारण करते हुए वाचक को कई बार रुकना भी पड़ जाता है जिससे कार्यक्रम के प्रवाह और रोचकता में कमी आ जाती है तथा श्रोता का तारतम्य भंग हो जाती है।

(३) शब्द:

आकाशवाणी का विषय संसार बहुत व्यापक है। समाचारों से लेकर संगीत और छात्रों से लेकर मजदूरों के लिए विविध प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, जो कार्यक्रम विशिष्ट तथा शिक्षित वर्गों के लिए हैं उनमें साहित्यिक अथवा परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग किया जा सकता है। टेक्नोलॉजी, विज्ञान विषय है जिनकी चर्चा करते समय संबंधित विषय में सीमित रूप से प्रयोग होने वाले शब्द अथवा वाक्यावली का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है।

हम जब किसी वैज्ञानिक, डॉक्टर अथवा आधुनिक विषयों के विशेषज्ञों से साक्षात्कार करते हैं, तो उनमें वे अनेक तकनीकी शब्दों का प्रयोग करते हैं जो बहुधा अंग्रेजी में होते हैं, क्योंकि आमतौर पर उनकी शिक्षा-दिशा अंग्रेजी में ही हुई होती है। इससे बच पाना फिलहाल संभव नहीं है, इसलिए तकनीकी शब्दों को ज्यों-का-त्यों ले लेने में संकोच नहीं करना चाहिए।

(४) रेडियों जन माध्यम:

रेडियों जन माध्यम है। इस देश के कोने कोने में सुना जाता है। हर भाषा एवं बोली के लोग इसे सुनते हैं इसलिए जन साधारण कार्यक्रमों में उन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, जो सामान्य बोलचाल में प्रस्तुत होते हैं। कठिन शब्दों से सदैव बचना चाहिए। रेडियों के वाक्य सरल हो, छोटे-छोटे हों, शुद्ध तथा रोचक हैं। अधिक जटिल मिश्र, वाक्यों से बचना चाहिए। शब्दों तथा वाक्यों में विषय के अनुरूप प्रभाव की क्षमता होनी चाहिए। भारी भरकम शब्दावली, शब्दभंडार और उलझे हुए वाक्य सफल - रेडियों लेखन के लिए अच्छे नहीं हैं। रेडियो लेखन के लिए समय सीमा का ध्यान रखना जरूरी है। रेडियो लेखन रेडियो विधा के अनुरूप होनी चाहिए। निष्कर्ष रूप में प्रसिद्ध कवि स्व. भवानी प्रसाद मिश्र की एक कविता की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं -

जिस तरह हम बोलते हैं

उसी तरह तू लिख

और इसके बाद भी

हमसे बड़ा तू दिख

२) रेडियों समाचार की भाषा:

आकाशवाणी से प्रसारित कार्यक्रमों में संगीत के बाद जो कार्यक्रम सबसे अधिक सुने जाते हैं - वे हैं, समाचार और विचार रेडियों पर प्रसारित समाचार, रेडियों की भाषा में 'बुलेटिन' कहलाते हैं। बुलेटिन में समाचारों को उनकी महत्ता के आधार पर क्रमबद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है। बुलेटिन दो प्रकार के होती है।

१. देशी श्रोताओं के लिए: सार्वदेशिक बुलेटिन (राष्ट्रीय) प्रादेशिक बुलेटिन (राज्यस्तरीय)
२. विदेशी श्रोताओं के लिए विशुद्ध विदेशी श्रोताओं के लिए: प्रवासी भारतीयों के लिए बुलेटिन

समाचार दर्शन (न्यूजरील):

इसमें समाचारों को अधिक रोचकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। किसी खेल प्रतियोगिता या - दुर्घटना स्थल से आँखों देखा हाल, साक्षात्कार के अंश, व्याख्यान और रोचक घटनाओं का वर्णन, समाचार दर्शन' की विषयवस्तु हो सकते हैं। समाचार बुलेटिन एक ही समाचार वाचक की आवाज में प्रसारित होता है, जबकि समाचार दर्शन में रिकार्डिंग के अंश भी प्रसारित किए जाते हैं।

श्रव्य माध्यमों (रेडियों) के समाचारों की भाषा, लिखित माध्यमों (समाचार पत्र पत्रिका) के समाचारों के विस्तार के समान न होकर उनके आमुख के समान होती हैं क्योंकि जिस प्रकार लिखित समाचारों के आमुख (इंटो) में सारी की सारी आवश्यक सूचनाएँ देनी होती हैं उसी प्रकार श्रव्य माध्यमों के समाचारों में विस्तार से समस्त आवश्यक सूचनाएँ देनी होती हैं। रेडियों या आकाशवाणी के लिए समाचार लिखते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन समाचारों को निरक्षर, अनपढ़ व्यक्ति भी सुनते हैं। अतः आपके द्वारा चुने गए, शब्द बहुत आसान होने चाहिए। लंबे वाक्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। समाचार के सभी वाक्य परस्पर अच्छी तरह से संबद्ध होने चाहिए। वे टूटे फूटे या अलग अलग नहीं लगने चाहिए। शब्द स्तर पर यदि पर्याय का चयन करना पड़े तो सर्व प्रचलित या, बहुप्रचलित पर्याय का चयन करना चाहिए। रेडियों के लिए इस प्रकार की भाषा का चयन करना चाहिए कि वर्णन सुनकर सजीव वर्णन जैसा लगे। समाचार में प्रयुक्त वाक्य सरल होने चाहिए और इतने लंबे हो कि वह एक ही साँस में पढ़े जा सकें। मुहावरे और साहित्यिक भाषा का समाचारों में प्रयोग नहीं करना चाहिए। समाचार में प्रयुक्त शब्द इस तरह होने चाहिए कि वे कर्णग्राह्य भी हों। रेडियों समाचारों में प्रायः ऐसा प्रयास करना चाहिए कि समाचार सदैव ताजे लगे, अतः भूतकाल का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

यही सारी बातें पत्र-पत्रिकाओं के समाचार पत्रों में भी लागू होती हैं।

रेडियों विज्ञापन की भाषा रेडियों विज्ञापन अत्यंत सीमित अवधि का प्रसारण है। इसमें भूमिका की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। मुख्य बिंदु बहुत सीधे एवं त्वरित गति से सामने आने चाहिए। आरंभ के छह-सात सेकंड का समय रेडियों विज्ञापन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इसमें कोई ऐसी बात जरूर सामने आनी चाहिए, जो वस्तु के विषय में उपभोक्ता की उत्सुकता या रुचि पैदा करे।

रेडियो विज्ञापन श्रव्य माध्यम है, यह सुनने के लिए लिखा जाता है। इस दृष्टि से भाषा एवं प्रस्तुति को ध्यान में रखना चाहिए। भाषा में बहुत उलझाव नहीं होना चाहिए। सरल एवं आम बोलचाल के शब्द होने चाहिए, उच्चारण में सरलता होनी चाहिए। विज्ञापन का संदेश सीधा संप्रेषित होना चाहिए तथा सूचना होनी चाहिए। कई तरह की सूचनाएँ भरने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

रेडियो विज्ञापन को प्रभावी बनाने के लिए नाटकीयता, लघु दृश्य या चरित्रों का सहारा लिया जा सकता है। ध्वनि प्रभाव भी विज्ञापन को जीवंत बनाते हैं। व्यक्ति उस वातावरण में पहुँच जाता है, जिसकी सृष्टि विज्ञापनदाता करना चाहता है। विज्ञापन लेखक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि विज्ञापन की शैली इस प्रकार की हो कि प्रत्येक व्यक्ति को यह

भास हो कि विज्ञापन उसी से संबंधित है। विज्ञापन अपील करने वाली भाषा एवं शैली में लेना चाहिए। उसमें ऐसी कोई बात जरूर हो कि श्रोता उस पर ध्यान देने को बाध्य हो जाए।

३) विज्ञापन की भाषा:

विज्ञापन की भाषा विज्ञापन एक कला है जो उपभोक्ताओं को इतना प्रभावित कर देती है कि वे विज्ञापन वस्तु को खरीदने के लिए बाध्य हो जाते हैं। यह विज्ञापन ही है, जो बहुत बड़े समाज में किसी भी उत्पादन की साख जमा देता है और उसके विक्रय में वृद्धि कर देता है। जैसा 'लीच' ने कहा है कि विज्ञापन की परिभाषा में चार तत्वों का समावेश होना आवश्यक है १. उत्पादित वस्तु २. माध्यम ३. श्रोता, दर्शक या पाठक और ४. लक्ष्य।

एक टेलीविजन विज्ञापन में मुख्यतः पाँच प्रकार्य होते हैं:

(अ) किसी उत्पाद की ओर दर्शकों - का ध्यान आकर्षित करना।,

(ब) उस उत्पादन के खरीद का प्रतिदान मार्गना,

(स) दर्शकों में उस उत्पाद के प्रति इच्छा जागृत करना,

(द) उत्पाद की पूर्ति को नियमित रखना,

(य) आमंत्रित करना।

इन कार्यों को पूरा करने के लिए विज्ञापनों की भाषा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

माध्यम की दृष्टि से विज्ञापन मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं।

१) मुद्रित माध्यम के विज्ञापन, जैसे- समाचार पत्र, पत्रिकाएँ आदि के विज्ञापन।

२) श्रव्य माध्यम के विज्ञापन, जैसे रेडियों या लाउडस्पीकर के विज्ञापन।

३) श्रव्य दृश्य माध्यम के विज्ञापन, जैसे फिल्म और टेलीविजन के विज्ञापन।

टेलीविजन (दूरदर्शन) के लिए जब विज्ञापन तैयार किए जाते हैं, तब चित्रों या दृश्यों के साथ- साथ संगति तो रहता ही है। भाषा भी अपने रोचक और नाटकीय रूप में काम करती है। उसमें कई तरह के अर्थ छिपे रहते हैं। अलग-अलग तरह से वो विज्ञापनों को अपने लहजे के अनुसार अलग तरह की भाषा का इस्तेमाल किया जाता है।

जिन विज्ञापनों की हम देखते या पढ़ते हैं। उनके कई प्रकार हमें दिखाई पड़ते हैं। कुछ विज्ञापन ऐसे होते हैं जो सार्वजनिक सेवा प्रस्तुत करनेवाले होते हैं। कुछ ऐसे होते हैं। जिनमें सरकारी या अर्द्ध-सरकारी सूचनाएँ होती हैं। जैसे इनकम टैक्स संबंधी जानकारी या सरकारी की उपलब्धियों की - सूचना आदि। कुछ विज्ञापन ऐसे होते हैं, जिनमें व्यक्तिगत सूचनाएँ हो सकती हैं। (जैसे कुछ खो जाने या मिल जाने की जानकारी वाले विज्ञापन) कुछ विज्ञापन ऐसे होते हैं जो वैवाहित श्रेणी के होते हैं या टेंडर नोटिस, नौकरी की विज्ञप्तियों, सार्वजनिक सूचनाएँ देने वाले होते हैं। इन सबसे अलग व्यावसायिक श्रेणी के विज्ञापन होते हैं। जो विशुद्ध रूप से उत्पादन के प्रचार प्रसार के लिए होते हैं।

इन सभी तरह के विज्ञापनों की भाषा तथा उनकी प्रस्तुति में अंतर रहता है। यह अंतर इन विज्ञापनों के उद्देश्य के कारण आ जाता है। साथ ही भाषा और विज्ञापन के लक्ष्य समूह (Target Group) के कारण भी होती है अर्थात् यह देखा जाता है कि यह विज्ञापन किन लोगों के लिए है। बच्चों के लिए, घरेलू महिलाओं के लिए, वृद्धों के लिए या नौकरीपेशा लोगों के लिए, किसानों के लिए, श्रमिकों के लिए, ट्रक मालिकों के लिए या अन्य लोगों के लिए।

इस विचार से विज्ञापनों को दो वर्गों में बाँटना ठीक रहेगा।

१) औपचारिक तथा

२) अनौपचारिक

तदनुसार उनमें से मुख्य रूप से, औपचारिक तथा अनौपचारिक दो तरह की भाषा प्रयोग की जाती है।

१) औपचारिक विज्ञापनों की भाषा:

औपचारिक विज्ञापनों की भाषा व्यावसायिक या अनौपचारिक प्रकार के विज्ञापनों की भाषा से भिन्न होती है। इस तरह के विज्ञापनों का उद्देश्य किसी तरह का माल बेचना नहीं होता, बल्कि विचारों या सेवाओं की सूचना समाज के तरह-तरह के वर्गों तक पहुँचाना होता है। इन विज्ञापनों का मुख्य उद्देश्य होता है। अधिक से अधिक लोगों तक सही और प्रामाणिक सूचनाएँ पहुँचाना उनमें जागरूकता पैदा करना, विश्वासनीयता पैदा करना, उनके हितों की ओर ध्यान आकर्षित करना। कई विज्ञापन ऐसे होते हैं। जिनमें लिखा रहता है-

----- द्वारा जनहित में जारी

उदा. पूरब से सूर्य उगा, फैला उजियारा। जागी हर दिशा-दिशा, जागा जग सारा। चलो पढ़ाये। कुछ कर दिखाये

- राष्ट्रीय साक्षरता मिशन -

इस तरह के विज्ञापनों की भाषा औपचारिक, संस्कृतनिष्ठ सरल सीधी अर्थात् अधायुक्त होती है। टेलीविजन पर ऐसे विज्ञापन दिखाते समय आवश्यकता के अनुसार दृश्य जोड़ दिए जाते हैं।

जैसे सूर्योदय का दृश्य, चिड़ियों की चहचहाट बच्चों को अपने माता पिता या दादा-दादी की ऊँगली थामकर स्कूल जाते हुए दिखाया जा सकता है।

इस तरह के विज्ञापनों का उद्देश्य समान है। नागरिकों में जागरूकता पैदा करना स्वाभिमान पैदा करना, उन्हें उनके हित की सूचना देना आदि

२) अनौपचारिक विज्ञापनों की भाषा:

औपचारिक विज्ञापनों से अलग अनौपचारिक विज्ञापन है। इनमें मुख्य लक्ष्य प्रायः उपभोक्ताओं को अपना माल बेचना होता है। उन्हें आकर्षित और प्रेरित करना होता है कि वे अमुक ब्रांड के माल को ही खरीदे। ऐसे विज्ञापन तर्क देते हैं। भावनाओं को उभारते हैं

ग्लैमर पैदा करते हैं। तदुसार उनकी भाषा भी रोचक, आकर्षक, नाटकीय दृश्य और भावों के अनुसार कोमल कठोर कामुक या विवाद करुणा या हास्यपूर्ण शब्दावली से युक्त किसी भी प्रकार की हो सकती है। व्यंग- विनोदपूर्ण शब्दावली का प्रयोग तथा रोचक संवाद ऐसे विज्ञापनों की आत्म होती है। इनका दृश्यों और संगीत के साथ सामंजस्य बिठाया जाता है, ऐसे विज्ञापनों में संस्कृत निष्ठ शब्दावली के साथ-साथ अन्य भाषाओं के शब्दों का समावेश भी रहता है। विशेष रूप में अंग्रेजी की आम बोलचाल की शब्दावली का धड़ल्ले से प्रयोग किया जाता है। ऐसे प्रयोग सजीवता लाते हैं। नाटकीयता और रोचकता की भी सृष्टि करते हैं।

अनौपचारिक विज्ञापन के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।

उदा. १) खुशियों का ऑफर... दिल से... सारे के सारे प्रोडक्शन पर, " वारंटी पर वारंटी है। रेफ्रिजरेटर और टेलीविजन पर बढ़िया से बढ़िया एक्सचेंज ऑफर, जीरो परसेंट फाइनेन्स स्कीम है। आखिरी दिन है। साथ में सूटकेस और ट्राली फ्री है... जल्दी से जल्दी... करे दिल से। इन दो उदाहरणों में भाषा का प्रयोग ध्यान देने योग्य है अंग्रेजी के बहुत से शब्दों का सहज रूप में - प्रयोग किया गया है। कुल मासूमियत दिन भर रहें कैसे.....

कुल मिलाकर हम यह पाते हैं कि अनौपचारिक विज्ञापनों की भाषा में मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती हैं।

- १) प्रायः सभी तरह के शब्दों का प्रयोग ये शब्द शुद्ध संस्कृतनिष्ठ तत्सम भी हो सकते हैं। तद्भव भी और देशज भी। साथ ही इनमें अंग्रेजी तथा उर्दू फारसी के शब्दों का भी मेल रहता है। यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दी के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग बहुत कम मिलता है।
- २) भाषा में प्रवाह होता है। लयात्मकता विज्ञापन में जान डाल देती है।
- ३) रोचकता, चमत्कारपूर्णता, नाटकीयता, चटपटापन, लक्षणा और व्यंजना शक्ति से परिपूर्ण वाक्यों का प्रयोग भी किया जाता है। भाषा में ध्वनिमूलकता रहती है। ध्वनिमूलक वौचित्र्य से आशय है। ध्वनि का बार बार प्रयोग इससे विज्ञापन सुनने में भी अच्छा लगता है और वह याद हो जाता है। कहें कि जुबान पर चढ़ जाता है।
- ४) तुकबंदी और काव्यात्मकता का प्रयोग विज्ञापन की भाषा का महत्वपूर्ण गुण है।
- ५) तुलनात्मकता विज्ञापन की विश्वसनियता बढ़ाती है। इसलिए ऐसे विज्ञापनों की भाषा में पारदर्शिता और सरलता होती है।
- ६) अतिशयोक्ति का प्रयोग
- ७) मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग

- ८) श्लिष्ट पदों का प्रयोग ताकि विज्ञापन में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थपूर्ण बातें कही जा सकें।
- ९) संवाद योजना, प्रश्रसूचकता विस्मयबोधकता, अनौपचारिक विज्ञापनों की भाषा के सर्व प्रमुख गुण हैं।

इस प्रकार हम यह भी पाते हैं कि औपचारिक विज्ञापनों की भाषा सीधी अभिधामूलक, परिभाषिक शब्दावली के प्रयोग से युक्त प्रायः नीरस हो सकती है। किंतु अनौपचारिक विज्ञापनों की भाषा सदैव सरल सरस, जीवंत, प्रवाह या लय युक्त तथा कोमल होती है।

३) टेलीविजन की भाषा:

टेलीविजन की भाषा पर ध्यान देना जरूरी है। क्योंकि टेलीविजन यह दृश्य श्रव्य माध्यम है। जिसका लोगो पर बहुत गहरा प्रभाव होता है। हर माध्यम की अपनी भाषा होती है। टेलीविजन व फिल्म की भी अपनी भाषा है। यहाँ शब्द भी बोलते हैं, रंग भी, चेहरे भी, मौन भी, संगीत भी मुख्य रूप निम्न मुद्दों पर ध्यान देना आवश्यक है।

(भाषासंबंधी) विशेषताएँ।

- १) भाषा सरल और सर्वग्राह्य (अधिक से अधिक लोगों की समझ में आनेवाली) होनी चाहिए।
- २) वाक्य छोटे व पात्रों के अनुकूल, सरल हो।
- ३) ऐसा प्रयास रहे कि एक बात, एक ही वाक्य में सरलता से स्पष्ट हो जाये।
- ४) बोलचाल के शब्द और मुहावरों ऐसे होने चाहिए जो जन - मानस में रच-बस गए हैं। कठिन शब्दों से जितना बचा जा सके, उतना ही अच्छा रहता है। ऐसा होने पर दर्शक को भी सुविधा रहती है।
- ५) अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों के आवश्यकतानुसार अपनाने में हिचक नहीं होनी चाहिए। शर्त यही है कि उन्हें अधिक से अधिक लोग समझ सकें।

इस प्रकार अन्य कार्यक्रमों के पटकथा की भाषा में ध्यान रखना चाहिए। साथ ही उनमें दृश्य योजना बनाकर कई खंडों में पटकथा लिखी जा सकती है।

टेलीविजन के कार्यक्रम के लिए जिस भी भाषा का प्रयोग किया जाए परंतु सबसे पहले आवश्यक है कि पहले शोधकार्य कर लिया जाए, तब लिखने बैठे ताकि भाषा का स्वरूप ठीक हो। पूरे कथानक को, घटनाचक्रों, दृश्य को अपने भीतर रचा-बसा लेना ही भाषा का गुण होता है, इसलिए ऐसी शब्दावली सहित भाषा का प्रयोग किया जाए। कल्पना शक्ति से भी काम लिया जाता है, साथ ही भाषा के बीच संगीत प्रभाव के बिंदु सोचे जाते हैं।

जनसंचार माध्यमों में हिन्दी का प्रयोग सामर्थ्य एवं सीमाएँ

संचार माध्यमों में हिन्दी के प्रयोग की दशा:

संचार में लोगों के बीच संप्रेषण के लिए शब्द ही माध्यम होते हैं। अनेकानेक भाषाओं के शब्द भंडार इसके मूलाधार होते हैं। साहित्यिक क्षेत्र की हिन्दी परिनिष्ठित होती है और जनसंचार की हिन्दी उससे कुछ सहज बोध्य होती है।

हिन्दी का अब तो केवल कविता नाटक, उपन्यास, कहानी में ही नहीं बल्कि देश के सभी सरकारी, गैर सरकारी आदि विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग होने लगा है। अब हिन्दी अनेक क्षेत्रों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई है। यह हिन्दी अब व्याकरण की समस्याओं और कुछ विधाओं तक सीमित परंपरागत अर्थ को लांघ कर बाहर आ चुकी है। आज हिन्दी प्रशासन, विधि, चिकित्सा, न्याय शिक्षा, तकनीकी एवं ऐसे अनेक क्षेत्रों में पत्रकारिता में सशक्त माध्यम बन गई है। जीविको- पार्जन, व्यवसाय, खेल जगत आदि क्षेत्रों में इसका वर्चस्व देखा जा सकता है। सिनेमा, विज्ञापन, दूरदर्शन आदि माध्यमों के द्वारा संचार पर हिन्दी छा गई है।

हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी अब केवल साहित्य की भाषा नहीं है बल्कि जनसंचार के एक सशक्त माध्यम के रूप में हिन्दी लोकजीवन में छा गई है। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू तथा भारतीय संविधान में मान्यता प्राप्त अन्य प्रादेशिक भाषाएँ इस देश की सामाजिक संस्कृति के विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं, इन सभी भाषाओं में हिन्दी का राष्ट्र व्यापी रूप है राष्ट्रीय आंदोलनों में स्वतंत्रता के पूर्व हिन्दी एक अखिल भारतीय भाषा के रूप में इस देश को जोड़ने का कार्य करती रही है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने तो हिन्दी को ईश्वर के आशीर्वाद स्वरूप माना है।

हिन्दी में तकनीक शब्दावली के विकास से विधि शब्दावली की एकरूपता से प्रशासनिक शब्दावली आदि की एकरूपता से जनसंचार को और समृद्ध किया है।

हिन्दी की सरल भाषा तथा लोक प्रचलित प्रयोगों के महत्त्व के कारण जनसंचार में तेजी आई है। जनसंचार को हिन्दी में मशीन, चेक, बैंक, ड्राफ्ट, डायरी, बस, कार, रेडियों, सिनेमा, कार्ड, बिल, कमीशन आदि शब्द बहुत ही लोकप्रिय रूप में चल रहे हैं। बोलचाल की भाषा का प्रयोग जनसंचार के सभी माध्यमों में हो रहा है।

समाचार पत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन, टेलीविजन आदि में ही नहीं बल्कि डाक, तार, बैंकों, चिकित्सालयों, महाविद्यालयों में भी सरल हिन्दी का प्रयोग धडल्ले से चल रहा है। पत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों समाचारों, एवं अन्य संचार प्रणाली में संचार के अनेक भाषाओं के शब्द अनुदित होकर आ रहे हैं। अनुवाद कला ने इस दिशा में बड़ा काम किया है। हिन्दी का प्रयोजन मूलक संदर्भ भाषा की जटिलता को दूर कर रहा है।

आज का जनसंचार बहुआयामी हो गया है। इससे आज सभी लाभ उठा रहे हैं। इसके उद्भव को क्रम से बतलाया गया है कि आदम एवं हौवा ने परस्पर संदेशों का आदान-प्रदान करके

जनसंचार की निरंतर चलने वाली श्रृंखला की पहली कड़ी संचार को प्रदान की है। आज तो मुद्रण, पत्र, डाक, दूरभाष, टेलीफोन, रेडियो, दूरदर्शन आदि संचार के दृश्य एवं श्रव्य कई माध्यम हो गए हैं। सभी उपकरण विज्ञान के विकास के परिणाम हैं। स्मरण कराने के लिए पहले चित्रों, चित्र - लिपियों को प्रयोग में लाया गया फिर भाषा लिखित एवं मौखिक रूप में आयी। सरकार ने भी और जनता ने भी इसके विकास में भूमिका निभाई।

जनसंचार के माध्यमों में श्रव्य - दृश्य साधनों और प्रदर्शनी का विशिष्ट महत्त्व है। इसका अभिप्राय है कि मॉडलों, तस्वीरों और विभिन्न प्रदर्शनियों में रखने योग्य उपकरण अनेक प्रकार के नमूने और डिजाइन आदि वर्तमान हैं। प्रचार के मुद्दों पर केंद्रित नृत्य, नाटक, संगीत के प्रदर्शन एवं आयोजन भी इस प्रसंग में सम्मिलित किए जा सकते हैं। जनसंचार के सभी माध्यमों में कुछ नियम, कानून, नीतियाँ एवं विशिष्टताएँ हैं। जिनकी जानकारी के बिना संचालक सफल नहीं हो पाते। हमारे काव्य माध्यम है जो वाणी के सुंदर प्रयोग से संबद्ध है। हमारे यहाँ शीत में वाणी के तप के बारे में कहा गया है।

अर्थात् जो भाषण उद्वेग न करने वाला प्रिय एवं हितकर और यथार्थ है और जो वेदशास्त्रों के पढ़ने का एवं परमेश्वर का नाम जपने का अभ्यास है वही निस्संदेह वाणी का तप है। हमारे भारत वर्ष में तो बोलने की संस्कृति रही है जिसमें कहा गया है कि 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यंप्रिय' अर्थात् सत्य तो बोलना ही चाहिए लेकिन वह भी प्रिय हो कटु न हो। अगर कड़वे सत्य बोलने की अनिवार्यता ही हो तो उसे मधुर शब्दों में प्रकट करें। हमारे ग्रंथों में तो कहा गया है कि शिकायत अगर हमारी जिह्वा छोड़ दे तो संसार वश में हो सकता है। प्रियवादियों के लिए सभी अपने होते हैं। उनके लिए कोई पराया नहीं है। इसलिए हमारे काव्य 'सत्यं शिवम् सुंदरम्' का उद्धोष करते हैं। श्रव्य-काव्य एवं दृश्य-काव्य में जो वाणी या शब्दों के प्रयोग की बात की गई है उसे सप्रयुक्त करके ही कहने का विधान है।

विश्व में भाषाओं की होड़ में हमारी हिन्दी भी एक है भले ही इसे राष्ट्र संघ में भाषा के रूप में मान्यता नहीं मिली है लेकिन संचार के कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा को लाने की चेष्टा भारत सरकार एवं हमारे संचार माध्यम कर रहे हैं। यह एक अच्छा प्रयास कहा जाएगा। हमारी भारतीय संस्कृति, संस्कृत में व्यक्त है जिसके अनेकों ग्रंथ हैं, लेकिन हिन्दी अनुवाद के माध्यम से इनका प्रचार-प्रसार आज तक बहुत हुआ है। हमारे देश का नेतृत्व ने एक बार हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर प्रस्तुत कर सब को चकित तो कर दिया था, आज के समय में हमारी हिन्दी भाषा का गौरव भी बढ़ा है।

जनसंचार माध्यमों में हिन्दी के प्रयोग की सीमाएँ:

आज सूचना का युग है। सूचना तकनीकी के इस युग में हर चीज तेजी से बदल रही है। क्या भाषा, क्या संस्कृति क्या विचार, क्या फैशन | निश्चय ही हिन्दी का क्षेत्र बहुत बड़ा है भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश आदि प्रदेश हिन्दी भाषी हैं लेकिन अब एक बात की ओर ध्यान दे। इन सब राज्यों में जो हिन्दी बोली जाती है। क्या वह एक जैसी है ? इसका उत्तर होगा जी नहीं। अब उर्दू को ले लेते हैं। भाषिक दृष्टि से उर्दू कोई अलग भाषा नहीं है। उर्दू और हिन्दुस्तानी को साथ जोड़ लें तो हिन्दी का क्षेत्र भी व्यापक हो जाता है। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत की राज्य भाषा हिन्दी है और पाकिस्तान की राज्य भाषा उर्दू है। इसलिए इन दोनों में हिन्दी तथा उर्दू संपर्क भाषा रूप में व्यवहार में आती है।

हमने हिन्दी के इस व्यापक क्षेत्र पर विचार इसलिए किया है ता कि यह समझने में सुविधा रहे कि फिल्म टेलीविजन, उपग्रह, चैनलों और इंटरनेट आदि जनसंचार माध्यमों में हिन्दी का इतना व्यापक प्रयोग क्यों हो रहा है और यहीं से सवाल पैदा हो जाता है भाषा का । यानि ये जनसंचार माध्यम आज जिस भाषा का प्रयोग हिन्दी के रूप में कर रहे है क्या वह अच्छी हिन्दी है ? उदाहरण "एक नया टूथपेस्ट ट्रॉई किया । " शुरू में यह और ऐसे ही प्रयोग चौकाते थे, चिढ़ाते भी थे लेकिन शायद अब नहीं । हिन्दी के इस नए अवतार इंग्लिश के प्रयोग के कारणों पर बाद में विचार करेंगे ।

पहले हम इन आधुनिक जनसंचार माध्यमों की प्रकृति को देख लें टेलीविजन आज सबसे शक्तिशाली जन माध्यम है । टेलीविजन की इस शक्ति लोकप्रियता और सफलता को देखते हुए विश्व के अन्य देशों की हमारे यहाँ भी अनेक उद्योगपति घरानों एवं इकाईयों ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया है । दूरदर्शन (१) दूरदर्शन (२) दूरदर्शन स्पोर्ट्स, इ. एस.पी.एन इत्यादि । यही कारण है कि टेलीविजन पर दिखाए जानेवाले कार्यक्रम बहु आयामी है । हम मनोरंजन प्रधान कार्यक्रम में प्रयोग हो रही हिन्दी पर विचार करें । हिन्दी फिल्मों में पहले से ही हिन्दी के क्षेत्रीय रूपों का प्रयोग होता चला आ रहा था ।

फिल्मी संवादों में और गीतों में स्थानीयता अथवा क्षेत्रीयता के रंग के अलावा उनमें अंग्रेजी मिश्रण भी धीरे बढ़ने लगा। सारांश यह है कि हिन्दी फिल्मों में भाषा की व्यापक शैलियाँ प्रयुक्त हुई हैं । और आज भी हो रही है । फिल्मों की भाँति ही टेलीविजन के धारावाहिकों में हिन्दी के विविध रूप मिलते हैं । एक श्रेणी और है बाल धारावाहिकों की, यह धारावाहिक शिक्षा एवं मनोरंजन के उद्देश्य से तैयार किए जाते हैं ।

पौराणिक सामाजिक और हास्य प्रधान धारावाहिकों की भाषा का रूप देखा । जब हम देखते हैं कि फिल्मी गीतों पर आधारित कार्यक्रमों की हिन्दी का जैसा हमने पीछे उल्लेख किया । कुछ गाने प्रयोग के तौर पर अंग्रेजी शब्दावली मिश्रित कर बनाए गए । वे रोचक थे और लोकप्रिय भी हुए ।

विज्ञापनों में हिन्दी का रोचक ढंग से अपने उत्पाद के प्रति ग्राहकों का ध्यान आकर्षित करना । उदा. रूखापन No चिपचिपाहट टेलीविजन के निजी चैनलों पर विज्ञापन समाचारों का जिम्मा जिन लोगों को सौंपा गया वे इसी कान्वेंटी पीढ़ी के लोग थे । ये वे लोग थे जो पहले अंग्रेजी में पत्रकारिता कर रहे थे । मुख्यतः टेलीविजन पर इंग्लिश के अवतरण और बहुप्रचलन की जड़ यही है । इससे यह भी बात निकलकर सामने आती है कि टेलीविजन और केबल टी.वी. मुख्य रूप से उच्च वर्ग, उच्च मध्य वर्ग और बहुत हुआ तो मध्यम वर्ग के मनोरंजन का एक मात्र साधन है ।

अब बात यह आती है कि क्या हिन्दी का इससे कुछ भला हो रहा है ? उत्तर हो सकता है हाँ । हिन्दी को इससे बचना चाहिए ऐसे प्रयोग होते रहने चाहिए । यह प्रश्न विवाद को जन्म दे सकता है । विज्ञापन का पक्ष अत्यंत महत्वपूर्ण विज्ञापन और बड़ी ग्राहक संख्या ये दो लालच जब सामने हों तो इस बात से क्या फर्क पड़ता है ।

माध्यमोपयोगी लेखन का स्वरूप

१. समाचार:

समाचारों से ही समाचार पत्र बनता है। जहाँ समाचार-पत्र में अन्य पाठ्य सामग्री, टिप्पणियाँ, विज्ञापन, सम्पादक के नाम पत्र, साहित्यिक परिशिष्ट इत्यादी होते हैं, वहाँ समाचार तो निस्सन्देह समाचार पत्र का एक अभिन्न अंग और उसकी आत्मा है। समाचार की अंग्रेजी में कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं।

News is history in a Hurry. -Goerge H. Morris

It is the honest and unbiased and complete account of events of interest and concern to the public. - Duane Bradely

I have six honest serving men. They taught me all knew,

Their names are where and what and when,

And How and why and who.

-Rudyard Kipling.

पत्रकारिता का प्राण तत्व समाचार है। मानव की ज्ञान-पिपासा तब शांत होती है जब वह समाचार सुन लेता है अथवा पढ़ लेता है। प्रातः कालीन नित्यक्रिया का एक अभिन्न अंग नये-नये समाचारों की जानकारी प्राप्त करना है क्योंकि यह आधुनिक जीवन की एक अनिवार्यता है जिसमें सभी की रूची रहती है। पहले जब दो चार व्यक्ति जुटते थे तो धार्मिक एवं पारिवारिक चर्चा होती थी। अब तो आसपास, राष्ट्र और विदेश सम्बंधी समाचारों पर टीका टिप्पणी प्रारम्भ हो जाती है। -

समाचार की प्युत्पत्ति:

समाचार को अँग्रेजी में News (न्यूज) कहते हैं जो New (न्यू) का बहुवचन है। यह लैटिन का 'नोवा' संस्कृत के 'नव' से बना है। तात्पर्य यह है कि जो नित्य नूतन हो वही समाचार है।

१. हेडन के कोश के अनुसार 'सब दिशाओं की घटना को समाचार कहते हैं।' 'न्यूज' के चार अक्षर

चार दिशाओं के आद्याक्षर हैं:

- N-North (उत्तर)
- E-East (पूर्व)

- W-West (पश्चिम)
- S-South (दक्षिण)

उत्तर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण की घटनाओं को समाचार समझना चाहिए।

वृत्तांत, 'खबर', 'संवाद', 'विवरण' और 'सूचना' समाचार के पर्याय हैं। अमरकोश में 'वार्ता', 'वृत्ति' तथा 'उदन्त' चार शब्द समाचार हेतु प्रयुक्त हुए हैं। सभी शब्दों से किसी घटना की पूरी जानकारी देने का भाव स्पष्ट होता है। १५०० ई. पूर्व 'टाइडिंग (Tyding)' शब्द का प्रचलन 'समकालीन घटनाओं की सूचना' के रूप में था। बाद में मुद्रणकला के विकास के साथ 'न्यूज', शब्द का प्रयोग होने लगा जिसका तात्पर्य है सूचनाओं के संकलन और प्रसारण द्वारा लाभ अर्जित करना जैसा कि एडविन एमरी का विचार है। सूचनाओं का यदाकदा प्रसारण 'टाइडिंग' है जबकि सुनियोजित ढंग से शोधपूर्ण समाचारों का संकलन तथा प्रसार ही 'न्यूज' है।

श्री. रा. र. खाडिलकर के अनुसार 'दुनिया में कहीं भी किसी भी समय कोई छोटी-मोटी घटना या परिवर्तन हो उसका शब्दों में जो वर्णन होगा, उसे समाचार या खबर कहते हैं।'

समाचार की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं- "अनेक व्यक्तियों की अभिरूचि जिस सामयिक बात में हो वह समाचार है। सर्वश्रेष्ठ समाचार वह है जिसमें बहुसंख्यकों की अधिकतम रुचि हो।" - प्रोफेसर विलियम जी. ब्लेयर

"समाचार किसी वर्तमान विचार घटना या विवाद का ऐसा विवरण है जो उपभोक्ताओं को आकर्षित करे।"

वूल्सले और कैम्पवेल

"समाचार सामान्यतः वह उत्तेजक सूचना है जिससे कोई व्यक्ति संतोष या उत्तेजना प्राप्त करता है।"

- प्रो. चिल्टनबरा

"समाचार कोई ऐसी चीज है जिसे आप कल (बीते हुए) तक नहीं जानते थे।"

- टर्नर केटलिज

उपर्युक्त परिभाषाओं के अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने अपनी दृष्टि के अनुरूप समाचार को व्याख्यायित किया है जिसमें से कुछ द्रष्टव्य हैं।

"जिसे कहीं कोई दबाना चाह रहा है, वही समाचार है, शेष विज्ञापन है।"

"समाचार कोई वह बात है जो सामान्य से परे हो।"

लेखक के अनुसार अकस्मात् जो घटे वही समाचार है। कुछ हो जाना, कुछ पाना, कुछ खो जाना, अचानक पहचान बनाना ही समाचार है।

"एक योग्य पत्रकार जो लिखता है वही समाचार है।"

"पाठक जिन्हें जानना चाहते हैं, वह समाचार है।"

"जिस बात के छपने से पत्र की बिक्री बढ़ती है, वही समाचार है।"

इन सभी परिभाषाओं पर ध्यान दिया जाय तो यही निष्कर्ष निकाला जाएगा कि सरस, सामयिक और सत्य सूचना ही समाचार है।

समाचार के तत्व:

१) नूतनता:

नूतनता समाचार का प्रमुख तत्व है। 'प्रकृति के यौवन का श्रृंगार करेंगे कभी न बासी फूल' प्रसाद की इस उक्ति के अनुसार बासी समाचार पत्रों को गौरवान्वित नहीं कर सकते। दैनिक पत्रों में २४ घंटे एवं साप्ताहिक पत्रों में एक सप्ताह के बाद समाचार छापने पर समाचारत्व नहीं रह जाता। मन्तव्य यही है कि ताजा से ताजा समाचार पाठकों को आकर्षित करता है, विलम्ब होने पर वह निस्तेज, निरर्थक हो जाता है।

२) सत्यता:

किसी घटना का सत्यासत्य, परिशुद्ध एवं संतुलित वितरण समाचार को मूल्यवान बनाता है जैसा कि कहा गया है कि 'whole truth and nothing but the truth', वस्तुतः सत्य को ठेस पहुँचाना समाचार की आत्मा को नष्ट करना है। 'सर्वे सत्य प्रतिष्ठितम्' उसका मूल मन्त्र है।

३) सामीप्य:

पाठकों की रुचि को प्रभावित करने वाले समाचार अधिक पठनीय होते हैं क्योंकि 'यदेव रोचते यस्मै भवेत्तस्य सुन्दरम् की ही जनता में मान्यता है।'

४) सामीप्य:

निकटस्थ घटित घटना दूरस्थ की बड़ी दुर्घटना से अधिक महत्वपूर्ण होती है।

५) वैयक्तिकता:

उच्च पदस्थ व्यक्तियों का भाषण समाचार बन जाता है। सामान्य नागरिक की यदि अप्रत्याशित उपलब्धि हो तो वह भी समाचार है जैसे कि एक भिखारी को एक लाख की लाटरी का मिलना।

६) संख्या और आकार:

अधिक संख्या में मृत और घायल यात्रियों से सम्बद्ध भयंकर रेल दुर्घटना महत्वपूर्ण होगी जब कि मामूली चोट वाली घटना समाचार की दृष्टि से गौण है।

७) संशय और रहस्य:

संशय और रहस्य से परिपूर्ण समाचारों की ओर पाठकों की अधिक जिज्ञासा होती है।

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त संघर्ष, स्पर्धा, उत्तेजना, रोमांस, वैशिष्ट्य परिणाम, कामेच्छा कुकृत्य, नाटकीयता, मानवीय गुणों का उद्रेक, असाधारणता, आर्थिक सामाजिक परिवर्तन तथा उद्भावना समाचार के ऐसे तत्व हैं जिनसे समाचार के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है।

समाचार के प्रकार:

समाचार दो प्रकार के बतलाये गये हैं:

क) सीधा समाचार (straight News)

ख) व्याख्यात्मक समाचार (Interpretative News)

सीधा समाचार सरल तथा सुस्पष्ट विधि से घटनाओं का सही सही तथ्यात्मक विवरण है। इसमें तथ्यों को तोड़ा मरोड़ नहीं जाता तथा ऐसे समाचारों में आरोप लगाने, निष्कर्ष निकालने एवं सम्मति देने का प्रयास नहीं होता। व्याख्यात्मक समाचारों में घटना की गहरी छानबीन की जाती है, उसे समग्र रूप में उदघाटित किया जाता है। घटना के परिवेश, पूर्वापर सम्बन्ध तथा उसके वैशिष्ट्य परिणाम को लिखा जाता है ताकि पाठक सरलता से सभी बातें समझ जाये।

आजकल के अति व्यस्त पाठकों के पास समाचार की जटिलता और रहस्यमयता से जूझने की फुर्सत नहीं है, अतः समग्र तथ्यों की व्याख्या द्वारा समाचार को सुग्राह्य बना दिया जाता है।

घटना के महत्त्व की दृष्टि से समाचार के दो रूप होते हैं:

१. **तात्कालिक विशिष्ट समाचार (Spot News)** पूर्वाभासरहित अकस्मात ही जब घटना घट जाती है तो उससे सम्बद्ध समाचार का विशेष महत्त्व होता है। वे गरमागरम अद्यतन होते हैं। अपनी विशिष्टता के कारण ऐसे समाचार मुख्य पृष्ठ पर प्रमुख स्थान पा जाते हैं। कोई बड़ी दुर्घटना अथवा विश्वविश्रुत नेता के असामायिक निधन सम्बन्धी समाचार इस कोटि में आते हैं।

२. **व्यापी समाचार (Spread News)** अधिक समय तक अधिकाधिक व्यक्तियों को प्रभावित करने वाला समाचार व्यापी कहा जा सकता है। अपने महत्त्व तथा विस्तृत प्रभाव के चलते ऐसे समाचार पूरे पृष्ठ पर छाए रहते हैं जिनका विस्तार बढ़ा होता है। व्यापी समाचार के खण्डन-मण्डन हेतु अन्य समाचारों को भी स्थान दिया जाता है।

२) भेंटवार्ता:

भेंटवार्ता (press interview) अपने में ही एक हुनर है। समाचार संकलन के सभी तरीकों में इसे अत्यन्त प्रभावकारी माना जाता है। इसे पत्रकारिता का अत्युत्तम एवं समुन्नत अंश कहना अतिरंजित नहीं होगा।

'प्रेस इन्टरव्यू' के कई अवसर संवाददाता के सामने आते हैं। नये मंत्रिमण्डल की स्थापना हुई, मुख्यमंत्री ने शपथ ली, उनके सहयोगियों ने भी पदग्रहण के औपचारिक उपक्रम पूरे किये, कि प्रेस प्रतिनिधियों ने उन्हें घेर लिया। इस तरह उनके कार्यालय आदि के बारे में एक 'प्रेस इन्टरव्यू' की अच्छी खासी खबर तैयार हो गई।

आपके शहर में विदेशी पर्यटकों का एक दल आया, उन्होंने इर्द-गिर्द के मुख्य स्थलों और ऐतिहासिक खण्डहरों की सैर की। आपके समाचार पत्र के पाठक यह जानना चाहेंगे कि वे अपने देश में हमारे बारे में क्या विचार लेकर जा रहे हैं या हमारे नगर और देश के इतिहास एवं संस्कृति ने उनको प्रभावित किया है तो कैसे और कितना, यह भी भेंटवार्ता का एक विषय हो सकता है।

श्री. 'क.ख.ग.' रेल विभाग में तारबाबू है। वे एक साधारण से गृहस्थ हैं। स्वभाव से कुछ शर्मिले, या डरपोक समान्यतः उनके बारे में कुछ जानने की या समाचार बनाने की न तो पत्रकारों को कोई आवश्यकता है और न ही कोई अन्य विशेष आकर्षण। इसलिए किसी भी संवाददाता ने उनसे मिलने या भेंट करने का कभी विचार ही नहीं किया। लेकिन अचानक उसकी काया पलट गई। यानी उनकी पचास लाख रुपये की लाटरी निकल आई। सब कोई जानना चाहेगा कि लक्ष्मी के इस नये कृपापात्र की शक्ल व सूरत कैसी है? जब उन्हें लाटरी जीतने का समाचार मिला तो उन्होंने क्या कहा? उन पचास लाख रुपये का कैसे उपयोग करेंगे। लाटरी के परिणाम की घोषणा होने के तुरन्त बाद कोई न कोई प्रेस रिपोर्टर कैमरा लेकर श्री क. ख.ग. के घर पहुंच जायेगा। उनकी अकेले या सपत्नीक तस्वीर लेगा और अपने समाचार पत्र के लिये श्री. क. ख. ग. का इन्टरव्यू उसी तरह लेगा मानों वे एक साधारण तारबाबू नहीं रहे, वरन् वे किसी मन्त्रीमण्डल के सदस्य हो गये हो या उन्हें कोई उच्च पद मिल गया हो।

हरियाणा में करनाल जिला के एक अध्यवसायी किसान को "कृषि पंडित" की उपाधि मिली, - इसका समाचार या साक्षत्कार बन सकता है कि उसे यह उपाधि किस सफलता या उपलब्धि के पुरस्कार के रूप में दी गयी है। कृषि के जो साधन उसने अपनाये हैं उसके अनुभवों से दूसरे लोग भी क्या लाभ उठा सकते हैं?

कई बार संवाददाता इंटरव्यू करके ही ऐसे लोगों से समाचार बना लेते हैं जिन्हें आभास भी नहीं होता कि उनके पास कुछ ऐसी सूचना या जानकारी है जिससे समाचार बन सकता है। सभी लोग अपने-अपने धंधे में व्यस्त होते हैं, उन्हें अपना काम पूरा करने की धुन समायी होती है। सचिवालय में सरकारी अधिकारी फाइलों पर कई महत्वपूर्ण फैसलें करते हैं इन्जीनियर लोग बड़ी बड़ी - परियोजनाओं पर काम करते हैं, वैज्ञानिक नये नये अनुसंधानों और अविष्कारों से समाज को समृद्ध बनाते हैं, उद्योगपतियों की अपने अपने क्षेत्रों में कुछ न कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिनसे समाचार बन सकते हैं। इस तरह सबके पास प्रेस को देने के लिये कुछ न कुछ होता है। लेकिन प्रेस को क्या देना है, और कैसे देना है, इस उलझन को संवाददाता उनसे भेंट करके दूर कर देते हैं।

३) लेख और फीचर:

गूढ़ अध्ययन पर आधारित गम्भीर विद्वत्तापूर्ण प्रमाणिक रचना ही लेख है। जबकि पाठकों के रुचि के अनुरूप नाटकीयता से परिपूर्ण हल्की-फुल्की पाठ्य वस्तु फीचर है। एक का सम्बन्ध मस्तिष्क से है तो दूसरे का हृदय से फीचर एक प्रकार का गद्य गीत है क्षणिक मुद्रा का अलंकरण है। लेख - बहुआयामी, गम्भीर, उच्च और व्यंग्यपूर्ण कृति है। लेख अनेक कमरों वाला बहुमंजिल विशाल भवन है। जबकि फीचर साफ सुथरा तथा मनोरम एक कक्ष वाली कुटी है। भारत में दहेज प्रथा पर लेख लिखते समय दहेज की परिभाषा, विविध काल में इसके विविध रूप, दहेज से अभिशप्त आँकड़े, सरकार तथा स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा दहेज के निराकरण हेतु विभिन्न कदमों का गम्भीर विवेचन होगा। फीचर में तो दहेज से पीड़ित एक अबला की करुण कहानी सचित्र प्रस्तुत की जा सकती है। एक ही समाचार, समाचार पत्रों में कितने विविध रूप से छप सकता है इसका उदाहरण द्रष्टव्य है।

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा से सम्बन्धित समाचार में उनके आगमन की तिथि एवं विभिन्न कार्यक्रमों का विवरण प्रस्तुत होगा। भारत-पाक संबंधों एवं आगमन से भ्रातृ-भाव बढ़ने या घटने सम्बन्धी सम्पादकीय टिप्पणी भी लिखी जा सकती है। एक स्तंभ लेखक इस यात्रा के संबंध में अपना व्यक्तिगत विचार दे सकता है। एक विशेषज्ञ भारत पाक के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों के भूत और भविष्य पर सप्रभाण गवेषणात्मक लेख लिख सकता है। फीचर लेखक संक्षेप में आगन्तुक के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का विवेचन कर सकता है एवं उसके द्वारा भारत में आतिथ्य सम्बन्धी विविध कार्यक्रमों की मनोरम झाँकी प्रस्तुत हो सकती है। लेख और फीचर के अन्तर को श्री. पी. डी. टण्डन के शब्दों में सरलता से समझा जा सकता है - -

किताब पढ़कर, आँकड़े जमा करके, लेख लिखे जा सकते हैं लेकिन 'फीचर' लिखने के लिए अपने आँख, कान, भावों, अनुभूतियों, मनोवेगों और अन्वेषण का सहारा लेना पड़ता है। लेख लम्बा, अरुचिकर और भारी भी हो सकता है लेकिन ये बातें फीचर की मौत है। फीचर को मजेदार, दिलचस्प और दिलपकड़ होना पड़ेगा... फीचर एक प्रकार का गद्य गीत है जो नीरस, लम्बा, गम्भीर, नहीं हो सकता। वह मनोरंजक और तडपदार होना चाहिए जिससे लोगों के दिल हिले, चित्त प्रसन्न हो तथा पढ़कर दिल में गम का दरिया बहे।

श्री टण्डन जी ने लिखा है कि उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि के बल पर एक हज्जाम की दुकान पर जहाँ गाँधी जी के केश बनाने का चित्र था, उसे बहुचर्चित फीचर तैयार कर दिया। आजकल के पत्र नेताओं के वक्तव्यों से भरे होते हैं। छोटी छोटी बातों तथा समाज के दलितों पर फीचर छापने का प्रयास पत्र नहीं करते।

फीचर (रूपक):

रंगीन वृत्तात्मक रचना रूपक है। मानवीय अभिरूची के साथ मिश्रित समाचार जब चटपटा लेख बन जाता है तो (फीचर) रूपक के रूप में जाना जाता है।

समसामायिक घटनाओं एवं विविध क्षेत्र के अद्यतन परिवर्तन के सचित्र और मनोरम विवरण को फीचर या रूपक कहा जा सकता है। मिस्टर ब्रेन निकोलस ने रूपक को समाचार पत्र

की आत्मा - के रूप में वर्णित किया है। श्री. डी. एस. मेहता द्वारा उद्धृत फीचर की परिभाषाओं का सार तत्व प्रस्तुत है।

" समाचार तथ्यों का विवरण तथा विचार देकर सन्तुष्ट हो जाता है जबकि रूपक में घटना के परिवेश विविध प्रतिक्रियाएँ एवं इसके दूरगामी परिणाम का संकेत प्राप्त होता है। रूपक लेखक घटना के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया पाठकों को बतलाता है। तथा उसकी कल्पना शक्ति को प्रभावित करता है। तथ्यों के प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त रूपक घटनाओं से सम्बन्ध उन सभी महत्वपूर्ण और गूढ़ बातों को बतलाता है जिनकी ओर सामान्य पाठकों की दृष्टि नहीं जाती। 'कब', 'क्यों', 'कैसे', 'कहाँ', 'कौन' को सुस्पष्ट करने वाले समाचारों से आगे बढ़कर कल्पना सम्पृक्त प्रस्तुति द्वारा रूपक अपना विशेष प्रभाव छोड़ता है। ध्यातव्य यह है कि सत्य से विरत होकर कल्पना जगत की बातों में खो जाने की अपेक्षा गहराई में जाकर घटना की सच्चाई को ढूँढ़ निकालना फीचर का प्रमुख गुण है ताकि पाठकों में जिज्ञासा, सहानुभूति, हास्य और आश्चर्य का संचार हो।

फीचर का वर्गीकरण:

विषयों की विविधता और विस्तार को देखते हुए फीचर को निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है।

१. समाचार फीचर:

अधिकांश फीचर समाचार पर आधारित होते हैं। इन्हें 'न्यूज फीचर', 'न्यूज फालोअप', 'न्यूज इन - डेप्थ' और 'न्यूज बिहाइन्ड न्यूज' भी कहते हैं। समाचारपरक फीचर मनोरंजनात्मक और सूचनात्मक फीचर में वर्गीकृत है।

२. विशेष घटना जैसे:

अकाल, दंगा और युद्ध पर आधारित फीचर

३. व्यक्तिपरक फीचर:

किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के कृतित्व और उसके सामायिक उपलब्धि पर प्रस्तुत फीचर।

४. लोकरुचि पर आधारित फीचर सामान्य जन जैसे सिपाही, माली, सफाई कर्मचारी, भिक्षु, रिक्शावाला और कुली आदि के जीवनयापन पर आधारित फीचर।
५. अनुभव और पुछताछ पर आधारित फीचर रेल या हवाई जहाज में घटी दुर्घटनाओं से सम्बद्ध फीचर। खाद्यान्न के अभाव, दवा की चोर बाजारी, नियन्त्रित मूल्य की दुकानों पर लगी लम्बी कतार, किरायादारी और राहजनी, आदि की समस्याओं की गहराई में जाकर विश्लेषणात्मक फीचर की प्रस्तुति।
६. मेला, मनोरंजन, सभा, खेल तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों से संबंधित फीचर।
७. फोटों फीचर जिसमें चित्रों की अधिकता होती है।
८. संस्था और विज्ञापन की उपलब्धि सम्बन्धी फीचर।
९. सो दृश्य फीचर

संवाद (Dialogue):

'संवाद' शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। अंग्रेजी में 'संवाद' के लिए 'डायलॉग' (Dialogue) शब्द प्रचलित है। संस्कृत कोश के अनुसार संवाद का अर्थ है "मिलकर बोलना - बातचीत, कथञ्चोपकथन, चर्चा, वाद-विवाद, समाचार देना, सूचना, समाचार, स्वीकृति, सहमति, समानरूपता, मेल-जोल, समानता, सादृश्य संक्षेप में कहा जा सकता है कि जहाँ भी कथोपकथन अथवा वार्तालाप द्वारा कुछ भी संप्रेषित किया जाता है; वह 'संवाद' होता है।

फिल्म एवं टेलीविजन के निर्माण में संवाद लेखक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। वह फिल्म के कथानक के अनुसार संवाद लिखता है। आमतौर पर फिल्मों या टेलीविजन में पटकथा कोई लिखता है और संवाद कोई स्व. राही मासूम रजा, कमलेश्वर, जैसे कुछ लेखक ऐसे रहे हैं, जिन्होंने संवाद लेखन में विशेष ख्याति प्राप्त की है। सलीम जावेद के बारे में कहा जाता है कि सलीम स्क्रीन प्ले और जावेद संवादों के विषय में विशेषज्ञ रहे हैं। वैसे अधिकांश पटकथा लेखक संवाद और पटकथा दोनों ही लिखते हैं।

असगर वजाहत ने फिल्म एवं टेलीविजन के संवाद के महत्व एवं लेखन को इस प्रकार रेखांकित किया है सबसे पहले यह ध्यान रखना चाहिए कि संवाद पात्रानुकूल हो। जैसा पात्र हो - संवाद वैसा ही होना चाहिए। संवाद में कम-से-कम शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। संवाद छोटे-छोटे लिखे जाने चाहिए। वर्णनात्मक संवादों से बचना चाहिए। फिल्मों में तो नायक नायिकाओं विशेषकर - खलनायकों को विशिष्टता प्रदान करने के लिए इसका इस्तेमाल किया जाता है। उदाहरणतः फिल्म 'मिस्टर इंडिया' में खलनायक बात बात में कहता है "मोगेंबो खुश हुआ" या "क्रांति" में प्रेम - चोपड़ा कहता है "शंभू का दिमाग दोधारी तलवार है।" वह कोई जुमला भी हो सकता है या कोई आदत भी हो सकती है। मसलन आपके नायक की आदत यह हो कि वह बात बात में शेर सुनाता हो; - या अमेरिकन अंदाज में हेलो कहता है। ध्यान रखिए कि इस तरह संवाद आप एक पात्र में भरेंगे तो वह खूब चलेगा; दो पात्रों में देंगे तो भी चलेगा, पर अगर सभी पात्रों में भरेंगे, तो बिल्कुल नहीं चलेगा।

संवाद लिखते समय उन्हीं बोलियों का प्रयोग करिए जो कि फिल्मों में चलती है। उदाहरणतः अगर फिल्म बिहारी हिंदी का रूप है कि "हम बोला हूँ। तो वही लिखिए, न कि उसका शुद्ध रूप "हम बोले हैं।" अगर आप ऐसा लिखेंगे तो बिहारियों को छोड़कर बाकी दर्शक वर्ग के लिए वह एक नई भाषा हो जाएगी। प्रकाश झा की फिल्म 'मृत्युदंड' के नहीं चलने का एक कारण यह भी माना जाता है कि उसकी बिहारी हिंदी शुद्ध थी, जो कि बाकी दर्शकों को समझ में नहीं आई। हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर का मत है "भाषा पढ़कर नहीं सुनकर आती है, इसलिए जब भी आप लोगों को बातचीत करते देखें तो उनकी भाषा को ध्यान से सुनिए। जितना आप लोगों को सुनेंगे, अलग अलग वर्ग के लोगों को सुनेंगे, आपके संवादों की भाषा उतनी अच्छी होगी।"

संवाद लेखन के महत्वपूर्ण बिंदु:

फिल्म एवं टेलीविजन के संवाद, लेखन में निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

१. संवाद लेखन में प्रसंग, परिस्थिति, स्थिति, आयु, पात्र तथा परिवेश पर विशेष ध्यान देना चाहिए जैसे कोई फिल्मों या टेलीविजन का कथानक पौराणिक कथा पर

आधारित है तो उसके संवाद संस्कृतनिष्ठ होंगे। पात्रों की भाषा में संस्कृत श्लोकों का उच्चारण होगा। साथ ही साथ उसका परिवेश पौराणिक संस्कृति एवं मूल्यों को लेकर होगा। उदाहरणार्थ बी. आर. चौपड़ा का "महाभारत" एवं रामानंद सागर का "रामायण" धारावाहिक।

२. संवादों की भाषा, कथानक पात्रों के अनुरूप होनी चाहिए। संवाद में हिंदी, उर्दू, फारसी एवं अन्य किसी भी भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।
३. संवाद वर्णनात्मक नहीं होने चाहिए। वर्णनात्मक संवाद साहित्यिकता को जन्म देते हैं।
४. संवाद ऐसे होने चाहिए कि उनसे यथार्थ का भ्रम पैदा हो न कि वे यथार्थ हो। यथार्थवादी संवाद बोरियत पैदा करते हैं।
५. संवाद आधे-अधूरे नहीं होने चाहिए।
६. संवादों में बोलियों का प्रयोग वहीं करें, जहाँ उनकी आवश्यकता हो। अनावश्यक रूप से बोलियों का प्रयोग न करें।
७. संवाद में एक ही पंक्ति को बार-बार दोहराना नहीं चाहिए।
८. संवाद में ऐसे वाक्य न हो कि जहाँ पात्र स्वयं ही प्रश्न कर रहा हो उसका उत्तर दे रहा हो।
९. संवाद में नाटकीयता होना जरूरी है। संवाद जितने नाटकीय होंगे, उतने ही दर्शकों का ध्यान अपनी ओर खींचने की कोशिश करेंगे।
१०. पटकथा लेखक को फिल्म एवं टेलीविजन तकनीक की जानकारी जरूरी है, विशेषकर क्लोजअप शॉट की।

रिपोर्टाज (Report):

रिपोर्टाज मीडिया एवं साहित्य की एक लोकप्रिय विद्या है। आज रिपोर्टाज मीडिया के इलेक्ट्रॉनिक माध्यम रेडियों, टेलीविजन, फिल्म में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुकी है। इसका प्रमुख कारण है कि रिपोर्टाज समसामयिक घटनाओं पर लिखे जाते हैं और वे पाठकों के लिए रोचक होते हैं। रिपोर्टाज मानवीय संवेदनाओं से संबंधित होता है, अतः पाठक सदैव उन्हें पढ़ना चाहता है। रिपोर्टाज न समाचार है और न संस्मरण और न वह डायरी है, न यात्रा वृत्तान्त वह घटना तथा किसी स्थिति का तथ्यात्मक आकलन है, जिसमें आकलनकर्ता की हार्दिक संवेदना, मर्मस्पर्शिता और प्रस्तुतीकरण की भावमय कलात्मकता विद्यमान रहती है।

संवाददाताओं को कई बार किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति की सभा को 'कवर' करने को कहा जाता है। या किसी समाचारदाता (रिपोर्टर) को 'कवरेज' के लिए लगाया जाता है, जो वह 'कवर' या 'कवरेज' करके लाता है उसे रपट या 'रिपोर्ट' कहा जाता है। रिपोर्ट का हिंदी पर्याय 'रपट' कई अर्थों से सर्वाधिक उपयुक्त शब्द है, पर यह मूल रूप से ही समाचार युक्त है और इसमें

समाचार संकलन के छः ककारों (क्या, कहाँ, कौन, कब, क्यों और कैसे) की पूर्ति होना आवश्यक होता है।

रिपोर्टाज अर्थ एवं स्वरूप:

सामान्यतः रिपोर्टाज का संबंध रिपोर्ट अथवा 'रपट' से लिया जाता है। हिंदी साहित्य कोशकार के अनुसार 'रिपोर्ट का ही कलात्मक रूप रिपोर्टाज है।' मूल रूप से 'रिपोर्टाज' फ्रेंच भाषा का शब्द है। जिसके मूल में पत्रकारिता से संबंधित "रिपोर्टिंग" भाव निहित है। फ्रेंच का "रिपोर्टाज" शब्द हिंदी में यथारूप "रिपोर्टाज" के रूप में अपना लिया गया है और इसका हिंदी में आयात अंग्रेजी भाषा प्रयोग के स्तर पर ही हुआ है। हिन्दी में इसे 'सूचनिका' भी कहा गया। लेकिन यह इतना कृत्रिम है कि सही भावार्थ नहीं प्रकट करता है। डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया मानते हैं कि "वह अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' से नहीं, उसके समानार्थी फ्रांसीसी शब्द 'रिपोर्टाज' से विकसित है जिसमें किसी घटना का यथा तथ्य वर्णन किया जाता है। घटना का यथा तथ्य विवरण कलात्मक तथा रस संवेद्यात्मक रूप में दिया जाता है। शैली कथात्मक अवश्य होती है, पर यह कथा नहीं।"

विद्वानों ने रिपोर्टाज की परिभाषाएँ दी हैं।

१. आचार्य भागीरथ मिश्र ने 'सूचनिका' कहा लेकिन वह सर्वग्राह्य नहीं हो सका।
२. डॉ. जीवन प्रकाश जोशी के अनुसार "संवाददाता की रिपोर्ट जब अपनी शैली में कुछ साहित्यिकता का समावेश कर लेती है, तब वह रिपोर्टाज कहलाती है।"
३. डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान का मत है "किसी घटना का अपने सत्य रूप में वर्णन जो पाठक के सम्मुख घटना का चित्र सजीव रूप में उपस्थित कर उसे प्रभावित कर सके रिपोर्टाज कहलाता है।"

रिपोर्टाज के तत्व:

डॉ. सत्येंद्र ने रिपोर्टाज के पाँच तत्व माने हैं। जो इस प्रकार हैं:

१. वस्तुनिष्ठता
२. संलग्नता
३. संवेदनशीलता
४. समसामायिकता और
५. कलात्मक प्रस्तुति

एक अच्छे रिपोर्टाज के लिए उक्त तत्वों का समावेश आवश्यक है।

रिपोर्टाज की विशेषताएँ:

रिपोर्टाज लेखन की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं-

१. यथातथ्यता
२. जीवन्तता
३. कथात्मकता
४. नाटकीयता
५. रोचकता
६. रसात्मकता
७. मर्मस्पर्शिता एवं
८. कलात्मकता

उपर्युक्त तत्व रिपोर्टाज में चार चाँद लगा सकते हैं। रेडियो एवं टेलीविजन में भी रिपोर्टाज को महत्त्व दिया जाता है।

यथातथ्यता रिपोर्टाज की प्रमुख विशेषता है। रिपोर्टाज एक प्रकार से आँखों देखी घटना का आधार लिए हुए होता है। जीवन्तता रिपोर्टाज की दूसरी विशेषता है। यह पाठक में स्फूर्ति एवं उत्साह का संचार करती है। रिपोर्टाज में एक ही या अनेक घटनाएँ गुँथी रहती हैं। नाटकीयता रिपोर्टाज की अन्य विशेषता है। रोचकता एवं रसात्मकता फीचर की लोकप्रियता प्रदान करते हैं। रिपोर्टाज लेखक अनेक स्थलों पर मार्मिक कथन प्रस्तुत कर रिपोर्टाज को मार्मिकता प्रदान करता है। किसी भी वस्तु को उसके सर्वोत्तम रूप में प्रस्तुत करना ही कलात्मकता है। रिपोर्टाज में लेखक के शब्द और शैली घटनाक्रम की प्रभावी प्रस्तुती ही उसकी कलात्मकता है।

वृत्तचित्र (Documentary):

"डाक्यूमेंट्री लेखन" (Documentary writing):

टेलीविजन की विभिन्न विधाओं में से एक महत्वपूर्ण विधा है। अंग्रेजी में 'वृत्तचित्र' को 'डाक्यूमेंट्री' (Documentary) कहा जाता है। वृत्तचित्र का उद्देश्य होता है सूचना देना या प्रशिक्षित करना। वृत्तचित्र वह विधा है; जो किसी सत्य घटना, तथ्य, सूचना, व्यक्तित्व और परिस्थिती पर आधारित होती है। इसका उद्देश्य मनोरंजन की अपेक्षा शिक्षा और सूचना देना अधिक होता है। जब यह कार्य दृश्यों द्वारा किया जाता है वह प्रक्रिया 'टेलीविजन वृत्तचित्र' कहलाती है।

हिंदी शब्दकोश में वृत्तचित्र के निम्नांकित अर्थ मिलते हैं - शिला लेख, विशिष्ट घटना या कार्य की जानकारी के लिए दिखाया जाने वाला 'समाचार चित्र' (News Reel)- अंग्रेजी शब्दकोश में डाक्यूमेंट (Document) को इस प्रकार परिभाषित किया गया है लिखित या

मुद्रित सामग्री, जो - प्रमाण या प्रलेख के रूप में प्रयुक्त होती है, जैसे प्रलेख के रूप में प्रयुक्त होती है, जैसे कागजात, दस्तावेज।

ए. आर. फुल्टन के शब्दों में 'वृत्तचित्र' न केवल जीवन के बधार्थ प्रतिपादन से ऊपर है, बल्कि यह उसकी शुद्ध व्याख्या भी करता है। एक वृत्तचित्र उस समय तक कथात्मक चित्र की भाँति ही है, जब तक वह मानव जीवन की व्याख्या करता है। वास्तव में वृत्तचित्र किसी विषय का एक समन्वित रूप है। प्रो. रमेश जैन के अनुसार, "वृत्तचित्रों का संबंध दस्तावेजों (Documents) से होता है। किसी एक विषय को अंतिम तह तक जाने का प्रयास किया जाता है। वृत्तचित्र विषय पर और अधिक अनुसंधान की गुंजाइश नहीं छोड़ते। ये वे कार्यक्रम हैं, जो किसी भी विषय का वृत्त पूरा करते हैं।"

वृत्तचित्र के प्रकार:

वृत्तचित्र के विभिन्न प्रकार (रूप) दिखाई पड़ते हैं, अतः विशेष विषयों को आधार बनाकर वृत्तचित्र को

निम्न प्रकारों में बाटों जाता है।

१. सूचनात्मक वृत्तचित्र
२. समाचार वृत्तचित्र
३. यात्रावृत्तांत वृत्तचित्र
४. कहानी वृत्तचित्र
५. सामाजिक वृत्तचित्र
६. अन्वेषणात्मक वृत्तचित्र
७. ऐतिहासिक वृत्तचित्र

१. सूचनात्मक वृत्तचित्र (Informatic Documentary):

आज सूचनात्मक वृत्तचित्र लोकप्रिय है और अधिक संख्या में इन्हीं वृत्तचित्रों का निर्माण हो रहा है। सूचनात्मक वृत्तचित्र को किसी एक विशेष तथ्य के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है और उन्हीं तथ्यों को साक्ष्यों की सहायता से आगे बढ़ाया जाता है। इन वृत्तचित्रों का उद्देश्य दर्शकों को समुचित जानकारी देना और उसके साथ कुछ सीखने का अवसर प्रदान करना है। ये वृत्तचित्र जहाँ दर्शकों का ज्ञान बढ़ाते हैं, वहाँ उनका आत्मविश्वास भी बढ़ाते हैं। सारांश में कहा जा सकता है कि किन्हीं तथ्यों द्वारा दर्शकों को कुछ सीखने का अवसर देने वाले वृत्तचित्र 'सूचनात्मक वृत्तचित्र' कहे जाते हैं।

२. समाचार वृत्तचित्र (New Documentary):

समाचार वृत्तचित्र का प्रचलन दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है। किसी विशेष समसामयिक समाचार को लेकर ये वृत्तचित्र बनाये जाते हैं। इसमें समाचार से संबद्ध घटनाओं, कारणों, प्रभाव और प्रतिक्रियाओं को यथावत् प्रस्तुत किया जाता है।

३. यात्रावृत्तांत वृत्तचित्र (Travels Documents):

यात्रावृत्तांत वृत्तचित्र अन्य वृत्तचित्रों से भिन्न होते हैं। इन वृत्तचित्रों में तथ्यों के संकलन पहले नहीं किए जाते; बल्कि कोई विशेष स्थान या लक्ष्य तय किया जाता है। कैमरामैन एवं उसके सहयोगी विषय के अनुकूल सामग्री, दृश्य घटनाएँ, साक्षात्कार आदि की कैमरें शूटिंग करते हैं। वृत्तचित्र के पटकथा लेखक इन्हें देखकर वृत्तचित्र के लिए आलेख लिखता है। यात्रा वृत्तांत में यात्रा, उसमें आने वाली कठिनाइयाँ, विशिष्टता, मौसम, विभिन्न प्रकार के पर्यटक एवं ऐतिहासिक स्थान, निवासियों का रहन सहन, खान-पान आदि को चित्रों संगीत एवं ध्वनि के माध्यम से दिखाया जाता है।

४. कहानी वृत्तचित्र (Story Documentary):

कहानी वृत्तचित्र का प्रचलन अधिक नहीं है क्योंकि इसका स्वरूप फीचर से मिलता जुलता है। इस - विधा में एक चरित्र के द्वारा ही कहानी को दर्शाया जाता है। कहानी उसी चरित्र के चारों ओर घूमती नजर आती है। मुख्य चरित्र को अन्य सहायक चरित्रों तथा तथ्यों द्वारा अभिव्यक्त एवं विकसित किया जाता है।

५. सामाजिक वृत्तचित्र (Social Documentary):

सामाजिक वृत्तचित्र का प्रमुख उद्देश्य समाज की विचार धारा, चिंतन एवं उसके निष्कर्ष प्रस्तुत करना है, जिससे दर्शकों में मानवीय भावनाएँ, शिक्षा, जनजागरूकता, देशप्रेम आ सकें। इन वृत्तचित्रों को दिखाये जाने का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन लाना है।

६. अन्वेषणात्मक वृत्तचित्र (Investigative Documentary):

अन्वेषणात्मक वृत्तचित्र लोकप्रिय है तथा इनकी माँग निरंतर बढ़ती जा रही है। इन वृत्तचित्रों का उद्देश्य किसी विषयवस्तु को लेकर उसका अन्वेषण (खोज) करना तथा अंत में सत्य तथ्य को उजागर करना है। 'डीस्कवरी' के अन्वेषणात्मक वृत्तचित्र इधर अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं।

७. ऐतिहासिक वृत्तचित्र (Historical Documentary):

इस प्रकार के वृत्तचित्रों की विषयवस्तु ऐतिहासिक होती है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों को शत- प्रतिशत दर्शाया जाता है। प्रेमासिक तथ्यों में पात्र वेशभूषा, घटनास्थल, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को उसी संदर्भ में दिखाया जाता है। ऐतिहासिक वृत्तचित्र लोकप्रिय है।

सारांश में कहा जा सकता है कि टेलीविजन वृत्तचित्र का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इसमें कैरियर की अनेक संभावनाएँ हैं। वृत्तचित्र किसी भी विषय अथवा बिंदु को बनाकर लिखा जा सकता है। वृत्तचित्र लेखक में कल्पना शीलता, सर्जनात्मकता, टी.वी. लेखन की जानकारी और समयबद्धता आदि गुण होने चाहिए। पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा लिखित पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' को "भारत एक खोज" शीर्षक से प्रसारित टी.वी. धारावाहिक की एक अति सफल डाक्यूमेंट्री मानी जा सकती है, जिसमें श्याम बेनेगल ने

तथ्यों की प्रमाणिकता के साथ नाट्यशैली का सहारा लेकर कल्पना शक्ति से रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है।

टी.वी. वृत्तचित्र के लिए किसी भी विषय का चयन किया जा सकता है। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विकास संबंधी योजना, परियोजना अथवा औद्योगिक संस्थान, व्यक्ति विशेष, ऐतिहासिक, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि से जुड़ा कोई भी विषय या इनका एक पहलू लिया जा सकता है, किंतु किसी भी विषय को लेने से पूर्व उस पर शोध कर लेना जरूरी है।

प्रश्नोत्तरी:

एक प्रश्नकर्ता के माध्यम से राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर के आर्थिक, राजनैतिक, खेल, विज्ञान, कला तथा संस्कृति से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं। दो या तीन व्यक्तियों के समूहों के साथ दर्शक के प्रतिनिधि इन कार्यक्रमों में भाग लेते हैं। सही उत्तर देने पर पुरस्कार भी दिये जाते हैं। कार्यक्रम को रुचिकर बनाने के लिए दृश्यों तथा चित्रों (Visuals) का उपयोग भी किया जाता है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य दर्शकों की ज्ञान-वृद्धि करना होता है।

मुद्रित माध्यमापयोगी लेखन

१. समाचार:

समाचारों से ही समाचार पत्र बनता है। जहाँ समाचार-पत्र में अन्य पाठ्य सामग्री, टिप्पणियाँ, विज्ञापन, सम्पादक के नाम पत्र, साहित्यिक परिशिष्ट इत्यादी होते हैं, वहाँ समाचार तो निस्सन्देह समाचार पत्र का एक अभिन्न अंग और उसकी आत्मा है। समाचार की अंग्रेजी में कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं।

News is history in a Hurry. -Goerge H. Morris

It is the honest and unbiased and complete account of events of interest and concern to the public. - Duane Bradely

I have six honest serving men. They taught me all knew,

Their names are where and what and when,

And How and why and who.

-Rudyard Kipling.

पत्रकारिता का प्राण तत्व समाचार है। मानव की ज्ञान-पिपासा तब शांत होती है जब वह समाचार सुन लेता है अथवा पढ़ लेता है। प्रातः कालीन नित्यक्रिया का एक अभिन्न अंग नये-नये समाचारों की जानकारी प्राप्त करना है क्योंकि यह आधुनिक जीवन की एक अनिवार्यता है जिसमें सभी की रुची रहती है। पहले जब दो चार व्यक्ति जुटते थे तो धार्मिक एवं पारिवारिक चर्चा होती थी। अब तो आसपास, राष्ट्र और विदेश सम्बंधी समाचारों पर टीका टिप्पणी प्रारम्भ हो जाती है। -

समाचार की प्युत्पत्ति

समाचार को अँग्रेजी में News (न्यूज) कहते हैं जो New (न्यू) का बहुवचन है। यह लैटिन का 'नोवा' संस्कृत के 'नव' से बना है। तात्पर्य यह है कि जो नित्य नूतन हो वही समाचार है।

१. हेडन के कोश के अनुसार 'सब दिशाओं की घटना को समाचार कहते हैं।' 'न्यूज' के चार अक्षर

चार दिशाओं के आद्याक्षर हैं:

- N-North (उत्तर)

- E-East (पूर्व)
- W-West (पश्चिम)
- S-South (दक्षिण)

उत्तर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण की घटनाओं को समाचार समझना चाहिए।

वृत्तांत, 'खबर', 'संवाद', 'विवरण' और 'सूचना' समाचार के पर्याय हैं। अमरकोश में 'वार्ता', 'वृत्ति' तथा 'उदन्त' चार शब्द समाचार हेतु प्रयुक्त हुए हैं। सभी शब्दों से किसी घटना की पूरी जानकारी देने का भाव स्पष्ट होता है। १५०० ई. पूर्व 'टाइडिंग (Tyding)' शब्द का प्रचलन 'समकालीन घटनाओं की सूचना' के रूप में था। बाद में मुद्रणकला के विकास के साथ 'न्यूज', शब्द का प्रयोग होने लगा जिसका तात्पर्य है सूचनाओं के संकलन और प्रसारण द्वारा लाभ अर्जित करना जैसा कि एडविन एमरी का विचार है। सूचनाओं का यदाकदा प्रसारण 'टाइडिंग' है जबकि सुनियोजित ढंग से शोधपूर्ण समाचारों का संकलन तथा प्रसार ही 'न्यूज' है।

श्री. रा. र. खाडिलकर के अनुसार 'दुनिया में कहीं भी किसी भी समय कोई छोटी-मोटी घटना या परिवर्तन हो उसका शब्दों में जो वर्णन होगा, उसे समाचार या खबर कहते हैं।'

समाचार की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं- "अनेक व्यक्तियों की अभिरूचि जिस सामयिक बात में हो वह समाचार है। सर्वश्रेष्ठ समाचार वह है जिसमें बहुसंख्यकों की अधिकतम रुचि हो।" - प्रोफेसर विलियम जी. ब्लेयर

"समाचार किसी वर्तमान विचार घटना या विवाद का ऐसा विवरण है जो उपभोक्ताओं को आकर्षित करे।"

वूल्सले और कैम्पवेल

"समाचार सामान्यतः वह उत्तेजक सूचना है जिससे कोई व्यक्ति संतोष या उत्तेजना प्राप्त करता है।"

- प्रो. चिल्टनबरा

"समाचार कोई ऐसी चीज है जिसे आप कल (बीते हुए) तक नहीं जानते थे।"

- टर्नर केटलिज

उपर्युक्त परिभाषाओं के अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने अपनी दृष्टि के अनुरूप समाचार को व्याख्यायित किया है जिसमें से कुछ द्रष्टव्य हैं।

"जिसे कहीं कोई दबाना चाह रहा है, वही समाचार है, शेष विज्ञापन है।"

"समाचार कोई वह बात है जो सामान्य से परे हो।"

लेखक के अनुसार अकरमात जो घटे वही समाचार है। कुछ हो जाना, कुछ पाना, कुछ खो जाना, अचानक पहचान बनाना ही समाचार है।

"एक योग्य पत्रकार जो लिखता है वही समाचार है।"

"पाठक जिन्हें जानना चाहते हैं, वह समाचार है।"

"जिस बात के छपने से पत्र की बिक्री बढ़ती है, वही समाचार है।"

इन सभी परिभाषाओं पर ध्यान दिया जाय तो यही निष्कर्ष निकाला जाएगा कि सरस, सामयिक और सत्य सूचना ही समाचार है।

समाचार के तत्व:

१) नूतनता:

नूतनता समाचार का प्रमुख तत्व है। 'प्रकृति के यौवन का श्रृंगार करेंगे कभी न बासी फूल' प्रसाद की इस उक्ति के अनुसार बासी समाचार पत्रों को गौरवान्वित नहीं कर सकते। दैनिक पत्रों में २४ घंटे एवं साप्ताहिक पत्रों में एक सप्ताह के बाद समाचार छापने पर समाचारत्व नहीं रह जाता। मन्तव्य यही है कि ताजा से ताजा समाचार पाठकों को आकर्षित करता है, विलम्ब होने पर वह निस्तेज, निरर्थक हो जाता है।

२) सत्यता:

किसी घटना का सत्यासत्य, परिशुद्ध एवं संतुलित वितरण समाचार को मूल्यवान बनाता है जैसा कि कहा गया है कि 'whole truth and nothing but the truth', वस्तुतः सत्य को ठेस पहुँचाना समाचार की आत्मा को नष्ट करना है। 'सर्वे सत्य प्रतिष्ठितम्' उसका मूल मन्त्र है।

३) सामीप्य:

पाठकों की रुचि को प्रभावित करने वाले समाचार अधिक पठनीय होते हैं क्योंकि 'यदेव रोचते यस्मै भवेत्तस्य सुन्दरम् की ही जनता में मान्यता है।'

४) सामीप्य:

निकटस्थ घटित घटना दूरस्थ की बड़ी दुर्घटना से अधिक महत्वपूर्ण होती है।

५) वैयक्तिकता:

उच्च पदस्थ व्यक्तियों का भाषण समाचार बन जाता है। सामान्य नागरिक की यदि अप्रत्याशित उपलब्धि हो तो वह भी समाचार है जैसे कि एक भिखारी को एक लाख की लाटरी का मिलना।

६) संख्या और आकार:

अधिक संख्या में मृत और घायल यात्रियों से सम्बद्ध भयंकर रेल दुर्घटना महत्वपूर्ण होगी जब कि मामूली चोट वाली घटना समाचार की दृष्टि से गौण है।

७) संशय और रहस्य:

संशय और रहस्य से परिपूर्ण समाचारों की ओर पाठकों की अधिक जिज्ञासा होती है।

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त संघर्ष, स्पर्धा, उत्तेजना, रोमांस, वैशिष्ट्य परिणाम, कामेच्छा कुकृत्य, नाटकीयता, मानवीय गुणों का उद्रेक, असाधारणता, आर्थिक सामाजिक परिवर्तन तथा उद्भावना समाचार के ऐसे तत्व हैं जिनसे समाचार के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है।

समाचार के प्रकार:

समाचार दो प्रकार के बतलाये गये हैं:

क) सीधा समाचार (straight News)

ख) व्याख्यात्मक समाचार (Interpretative News)

सीधा समाचार सरल तथा सुस्पष्ट विधि से घटनाओं का सही सही तथ्यात्मक विवरण है। इसमें तथ्यों को तोड़ा मरोड़ नहीं जाता तथा ऐसे समाचारों में आरोप लगाने, निष्कर्ष निकालने एवं सम्मति देने का प्रयास नहीं होता। व्याख्यात्मक समाचारों में घटना की गहरी छानबीन की जाती है, उसे समग्र रूप में उदघाटित किया जाता है। घटना के परिवेश, पूर्वापर सम्बन्ध तथा उसके वैशिष्ट्य परिणाम को लिखा जाता है ताकि पाठक सरलता से सभी बातें समझ जाये।

आजकल के अति व्यस्त पाठकों के पास समाचार की जटिलता और रहस्यमयता से जूझने की फुर्सत नहीं है, अतः समग्र तथ्यों की व्याख्या द्वारा समाचार को सुग्राह्य बना दिया जाता है।

घटना के महत्व की दृष्टि से समाचार के दो रूप होते हैं:

- १) तात्कालिक विशिष्ट समाचार (Spot News) पूर्वाभासरहित अकस्मात ही जब घटना घट जाती है तो उससे सम्बद्ध समाचार का विशेष महत्व होता है। वे गरमागरम अद्यतन होते हैं। अपनी विशिष्टता के कारण ऐसे समाचार मुख्य पृष्ठ पर प्रमुख स्थान पा जाते हैं। कोई बड़ी दुर्घटना अथवा विश्वविश्रुत नेता के असामायिक निधन सम्बन्धी समाचार इस कोटि में आते हैं।
- २) व्यापी समाचार (Spread News) अधिक समय तक अधिकाधिक व्यक्तियों को प्रभावित करने वाला समाचार व्यापी कहा जा सकता है। अपने महत्व तथा विस्तृत प्रभाव के चलते ऐसे समाचार पूरे पृष्ठ पर छाए रहते हैं जिनका विस्तार बड़ा होता है। व्यापी समाचार के खण्डन-मण्डन हेतु अन्य समाचारों को भी स्थान दिया जाता है।

संपादकीय (सम्पादक):

सम्पादक वह सचेत संस्था है तो पत्र के विविध क्षेत्रों के संचालन, नियमन, नयन, प्रोत्साहन एवं निर्माण हेतु सचेष्ट रहता है। संस्था के अवयव रिपोर्टर, संवाददाता, भेटकर्ता, समालोचक, उपसम्पादक, प्रसार व्यवस्थापक एवं विज्ञापन प्रबन्धक के बीच समन्वयवादी

शक्ति सम्पादक ही है जो पत्ररूपी शरीर के अगप्रत्यंग में गतिशीलता का संवाहक होता है। पत्र की नीति के निर्धारण और परिपालन द्वारा सम्पादक जन-चेतना, जन-आकांक्षा और जनहित का संरक्षक होता है।

सन् १८६७ ई. के प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट के अनुसार समाचारपत्र में जो कुछ छपता है उसका निश्चय करने वाला व्यक्ति सम्पादक कहलाता है। सम्पादन शब्द 'पद' धाला से उद्भूत है जिसका अर्थ 'किसी विषय में सम्यक् गति होना है। किसी अनुष्ठान को योग्यतापूर्वक पूर्ण करने वाली क्रिया को सम्पादन कहा जाता है। प्रस्तुत अंश का क्रम बैठकर शुद्धि के साथ प्रकाशन योग्य बनाने वाला व्यक्ति सम्पादक कहलाता है। तात्पर्य यह है कि पत्र का सम्पादन संचालन करने वाला विशिष्ट गुणों से युक्त बुद्धिजीवी ही सम्पादक है जो पत्र की आत्मा होता है। सजग सम्पादक सामाजिक चेतना की ज्योति लहर फैलाने वाला होता है। वह वैचारिक तरंगों के बीच समाजरूपी नौका को खेने वाला कुशल एवं विवेकी नाविक होता है।

कानून की दृष्टि में सम्पादक वही है जिसका नाम पत्र में छपता है परंतु वास्तव में अच्छा सम्पादक आस पास की परिस्थितियों का बोध कराता है तथा जन सामान्य की अनुभूतियों एवं विचारों को वाणी देता है। वह अपने व्यवसाय के साथ सार्वजनिक क्षेत्र में भी नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है जैसा कि एच. वाइ. शारदा प्रसाद ने लिखा है- सारांश यही कि सम्पादक पाठकों का साथी, उपदेशक और पथ-प्रदर्शक होता है।

सत्यनिष्ठा, प्रेस की स्वतंत्रता, यथार्थता, सम्यक् व्यवहार, नेतृत्व और उत्तरदायित्व इन छः नीति निर्देशक का सिद्धान्तों के पालन द्वारा आदर्श सम्पादक कार्लाइल के शब्दों में 'सच्चे सम्राट और धर्मोपदेशक' की भूमिका निभा सकता है। इसी सन्दर्भ में महर्षि व्यास को प्रथम सम्पादक माना गया है। पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी ने सम्पादक के कार्य को 'अयाचित' या 'स्वयं स्वीकृत सेवा' की संज्ञा दी है क्योंकि वह अपने नीर क्षीर विवेक, सच्चरित्रता न्यायप्रियता, सहानुभूति तथा दायित्व बोध के सम्बल पर कर्तव्य की बलिवेदी पर चढ़ जाता है। प्रलोभन, भय, दबाव से मुक्त सम्पादक यशस्वी होता है।

मुख्य उपसम्पादक:

मुख्य सम्पादक अपनी पाली का प्रधान होता है। उसके कार्यों का वर्गीकरण श्री प्रेमनाथ चतुर्वेदी ने निम्नलिखित ढंग से किया है।

१. रचनात्मक कार्य:

- (क) समाचार संशोधन एवं उसके प्रस्तुतीकरण के स्वरूप का निर्णय
- (ख) समाचारों का संगठन
- (ग) शीर्षकों की रचना

२. व्यवस्था सम्बन्धी कार्य:

- (क) निश्चित स्थान की पूर्ति हेतु समाचार की काया का निर्णय
- (ख) कम्पोजिटर तथा मुद्रक की कार्यक्षमता पर ध्यान।

३. निरीक्षण सम्बंधी कार्य:

(क) तथ्य एवं भाषा सम्बंधी भ्रान्ति न रह जाय।

(ख) कानूनी उलझन न उपस्थित हो।

(ग) समाचार की स्पष्टता तथा सार्थकता पर सतत दृष्टि मुख्य सम्पादकों को सदैव निम्नांकित बिन्दुओं पर ध्यान केंद्रित करना पड़ता है।

१. विचारों का दबाव

२. पुनरावृत्ति

३. आवश्यक बातों की छूट

४. तालमेल हीनता

५. छद्म विज्ञापन

६. धोखाधड़ी

७. बासी समाचार

८. प्रतिद्वंद्विता

ठीक ही कहा गया है कि "समाचारपत्र रथ है तो समाचार उसे उड़ा ले जाने वाले अंधे घोड़े और पत्रकार विवेक का धनी चतुर सारथी यह सारथी समाचार रूपी घोड़ों को अनुशासन में रखकर पत्र - रथ को गतव्य की ओर ले जाता है।" वस्तुतः मुख्य उपसम्पादक भगवान् श्रीकृष्ण सदृश कुशल सारथी होता है।

उपसम्पादक:

'उप' समीपता, लघुता तथा गौणता का द्योतक / योतक है। उपसम्पादक में तीनों भावों का बोध होता है। यह सम्पादक के समीप रहकर उसके निर्देशानुसार कार्य करता है, लघुता इसमें होती ही है तथा सम्पादक से अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण तो होता ही है।

सम्पादक पत्र की नीति का निर्धारक है तो उपसम्पादक निर्धारित नीति के अनुरूप पत्र का सम्पादन, प्रकाशन करने वाला व्यक्ति है। एक का कार्य व्यवस्था देना है तो दूसरे का कार्य उसका अनुपालन है। एक शास्त्र है तो दूसरा शास्त्रों का अनुयायी। सम्पादकीय स्तम्भों का उत्तरदायित्व सम्पादक पर है तो समाचारपत्र के अवशेष भाग की जिम्मेदारी उपसम्पादक को वहन करना है।

उपसम्पादक को विश्वकर्मा, वास्तुकार और शिल्पकार भी कहते हैं जो समाचारपत्र का रूप संवारता है वह ऐसा माली है जो कार्यालय में पड़े संवादों के जंगल को मनोरम पुष्प उद्यान का रूप देता है। सरल शब्दों में, उपसम्पादक वह व्यक्ति है, जो समाचारों के सभी विवरणों को प्राप्त करता है, सम्पादन करता है और उनके शीर्षक देता है। वह सब या इनमें से कुछ

कार्य कर सकता है। उपसम्पादक को स्टेनले वाकर ने 'अनसंग हीरो' कहा है तथा निम्नलिखित शब्दों में उन्होंने उसके दायित्व का बोध कराया है।

"This workman, who edits, corrects and manicures the copy which flows across the desk from the reporters, rewriters correspondents and News Services and then writes Headlines, is the unsung of the fourth state."

तात्पर्य यह है कि पत्रकारिता जगत की नींव का पत्थर उपसम्पादक होता है जो सम्पादन, संशोधन, शीर्षक - सरचना तथा संवाद - संकलन के साथ सम्बद्ध व्यक्तियों के बीच समन्वय स्थापित करता है।

फीचर और साक्षात्कार:

१. फीचर:

रंगीन वृत्तात्मक रचना रूपक है। मानवीय अभिरूचि के साथ मिश्रित समाचार जब चटपटा लेख बन जाता है तो फीचर (रूपक) के रूप में माना जाता है।

सम-सामयिक घटनाओं एवं विविध क्षेत्र में अद्यतन परिवर्तन के सचित्र और मनोरम विवरण को फीचर या रूपक कहा जा सकता है। मिस्टर ब्रेन निकोलस ने रूपक को समाचार पत्र की आत्मा के रूप में वर्णित किया है। श्री डी. एस. मेहता द्वारा उद्धृत फीचर की परिभाषाओं का सार तत्व प्रस्तुत है।

"समाचार तथ्यों का विवरण तथा विचार देखकर संतुष्ट हो जाता है जबकि रूपक में घटना के विशेष परिवेश, विविध प्रतिक्रियाएं एवं इसके दूरगामी परिणाम का संकेत प्राप्त होता है। रूपक लेखक घटना के संबंध में अपनी प्रतिक्रिया पाठकों को बतलाता है तथा उसकी कल्पना शक्ति को प्रभावित करता है। तथ्यों के प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त रूपक घटनाओं से सम्बद्ध उन सभी महत्वपूर्ण और गूढ़ बातों को बतलाता है जिनकी ओर सामान्य पाठकों की दृष्टि नहीं जाती।"

'कब', 'क्यों', 'कैसे', 'कहाँ', 'कौन' से सुस्पष्ट करने वाले समाचारों से आगे बढ़कर कल्पना सम्पृक्त प्रस्तुति द्वारा रूपक अपना विशेष प्रभाव छोड़ता है। ध्यातव्य यह है कि सत्य से विरत होकर कल्पना जगत की बातों में खो जाने की अपेक्षा गहराई में जाकर घटना की सच्चाई की ढूँढ़ निकालना फीचर का प्रमुख गुण है ताकि पाठकों में जिज्ञासा, सहानुभूति, हास्य और आश्चर्य का संचार हो।

फीचर का वर्गीकरण:

विषयों की विविधता और विस्तार को देखते हुए फीचर को निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है।

१. समाचार फीचर: अधिकांश फीचर समाचार पर आधारित होते हैं। इन्हें 'न्यूज फीचर', 'न्यूज फ्लोअप्स', 'न्यूज' भी कहते हैं। समाचारपरक फीचर मनोरंजनात्मक और सूचनात्मक फीचर में वर्गीकृत है।
२. विशेष घटना जैसे अकाल, दंगा और युद्ध पर आधारित फीचर।
३. व्यक्तिपरक फीचर किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के कृतित्व और उसके सामायिक उपलब्धि पर : प्रस्तुत फीचर।
४. लोकरूचि पर आधारित फीचर सामान्य जन्य जैसे सिपाही, माली, सफाई कर्मचारी, शिक्षक, रिक्शावाला और कुली आदि के जीवनयापन पर आधारित फीचर।
५. अनुभव और पूछ-ताछ पर आधारित फीचर : रेल या हवाई जहाज में घटी दुर्घटनाओं से सम्बद्ध फीचर। खाद्यान्न के आभाव, दवा की चोर बाजारी, नियन्त्रित मूल्य की दुकानों पर लगी लम्बी कतार, किरायदारी और राहजनी आदि की समस्याओं की गहराई में जाकर विश्लेषणात्मक फीचर की प्रस्तुति
६. मेला, मनोरंजन, सभा, खेल, तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों से सम्बन्धित फीचर।
७. फोटो फीचर जिसमें चित्रों की अधिकता होती है।
८. संस्था और विज्ञापन की उपलब्धि संबंधी फीचर।
९. सोद्देश्य फीचर।

साक्षात्कार (Interview):

प्रकाशनोपयोगी तथ्यों को प्राप्त करने की कला ही साक्षात्कार है। साक्षात्कार और व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा समाचार की विशद जानकारी प्राप्त की जाती है। देखा जाता है कि सरकारी वक्तव्य सार्वजनिक घोषणाएँ, विज्ञप्तियाँ तथा मंचीय भाषणों द्वारा प्रायः एक पक्षीय तत्वों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। साक्षात्कार द्वारा पत्रकार समाचारों से सम्बद्ध अधिकारी से पक्ष-विपक्ष, गुण-दोष एवं जनमत के प्रभाव के ठोस बाते ज्ञात करता है। दूसरे शब्दों में भेंट वार्ता, समालाप या साक्षात्कार द्वारा समाचार के 'क्यों' और 'कैसे' की गहरी जानकारी मिलती है। समाचार पूर्णता को प्राप्त होता है। पत्रकारिता की एक अमेरिकी संस्था ने साक्षात्कार तकनीक के लिए अपने छात्रों को निम्नलिखित सिद्धान्त बतलाया जिसे श्री. के. पी. नारायणन ने 'सम्पादन कला' में उद्धृत किया है- -

"जिस व्यक्ति से आपको साक्षात्कार करना हो उस व्यक्ति के बारे में किसी ऐसे व्यक्ति से, जो उसे जानता हो; जितनी भी मिल सके उतनी जानकारी हासिल कर लीजिए। उसका नाम ठीक से उतारिये और उसका उच्चारण ठीक से कीजिए। फिर जिस विषय के सिलसिले में आप साक्षात्कार में जितनी हो सके उतनी जानकारी हासिल कीजिए इस विषय के सम्बंध में किसी ऐसे व्यक्ति से पूछिए जो उसका जानकार हो और फिर किसी सन्दर्भ ग्रंथ में उस विषय पर जो लिखा हो उसे पढ़ लीजिए। - इससे आप ठीक ठीक प्रश्न पूछ सकेंगे और कोई बात छूट नहीं पायेगी। -

आप स्वयं अधिक न बोलें आप का प्रयोजन यह होना चाहिए कि जिस व्यक्ति से आप प्रश्न पूछते हैं, वह उनमें दिलचस्पी ले और बेझिझक उनके उत्तर दें। आप का काम सोचने का है, बोलने का नहीं। फिर चतुराई से प्रश्न पूछते जाइये। पूरी कथा ब्यौरा और नाटकीय घटनाओं सहित मालूम कीजिए। सामाप्ति से पूर्व तथ्यों का सरसरी तौर पर सत्यापन कर लीजिए।

साक्षात्कार का लेखन:

साक्षात्कार लिखते समय समालाप्य व्यक्ति का पूरा परिचय, वार्ता का परिवेश तथा समालापक की प्रतिक्रिया का उल्लेख होता है। इसे निबन्ध और प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा जाता है। कई बार भेंटवार्ता 'फीचर' का रूप धारण कर लेती है। ऐसी भेंटवार्ता में चरित्र-चित्रण, वातावरण का विवरण तथा शब्द-शिल्प का कौशल दिखाया जाता है जो फिल्मी पत्रिका में प्राप्य है।

रेडियोलेखन- रेडियो लेखन के अनिवार्य तत्त्व

रेडियो नाटक:

(अ) भूमिका:

भारत में रेडियो से नाटकों का प्रसारण सन १९२८ ई में कलकत्ता से शुरू हुआ था। बंगाल में रंगमंच परंपरा के प्रभाव के अंतर्गत रेडियो पर जो साप्ताहिक नाटक हर शनिवार को प्रसारित होता था उसकी अवधि तीन घंटे की होती थी और उन नाटकों में सभी रंगमंच युक्तियाँ प्रयुक्त होती थीं। रेडियो पर पहला हिन्दी नाटक १९३६ ई में प्रसारित किया गया था।

भारत में 'नल दयमंती' से लेकर जितने भी नाटक प्रसारित हुए उनमें अधिकांश पौराणिक, (१९४७) ऐतिहासिक अथवा रूमानी होते थे। जिनका उद्देश्य मनोरंजन था। विषय की दृष्टि से हिन्दी रेडियो नाटकों में १९४७ के पश्चात् विविधता आने लगी तथा स्वातंत्र्योपरांत रेडियो नाटक ने एक नई तकनीक विकसित की जो शब्द, संगीत तथा ध्वनि प्रभाव पर आधारित थी।

डॉ. सिद्धनाथ कुमार के अनुसार "रेडियो नाटक मूलतः अंधेरे का ही नाटक है। अदृश्य अंधकार ही इसका रंगमंच है। दर्शक नाटक को नहीं देख सकता, केवल सुन सकता है। रेडियो नाटक प्रत्यक्षता के बंधन से मुक्ति का नाटक है रूप, रंग, दृश्यबंध, प्रकाश योजना आदि के बंधनो से यह पूर्णतः मुक्त - होता है।"

आकाशवाणी के पूर्व चीफ प्रोड्यूसर (नाटक) सत्येंद्र शर्मा के अनुसार रेडियो नाटक "प्रत्येक श्रोता के मानसिक मंच पर अलग- अलग ढंग से अभिनीत होता है। रेडियो नाटक अपने श्रोताओं की कल्पना के अनुसार ही उनके मानसपटल पर जीवित होता है, इसलिए रेडियो नाटक को मस्तिष्क का रंगमंच (द थियेटर ऑफ द माइंड) कहा जाता है। रेडियो नाटक प्रत्येक कल्पनाशील श्रोता के मस्तिष्क में उसकी कल्पना के अनुसार साकार रूप लेता है, इस कारण यह अन्य किसी माध्यम की अपेक्षा मानव के अंतर्मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों और संघर्षों को बहुत कुशलता और दक्षता के साथ चित्रित कर सकता है।"

अर्थात् जितना विस्तार श्रोता के मन का होगा उतना ही विस्तार इस (रेडियो नाटक) माध्यम का होता है। मन का विस्तार अपने तौर पर होता है। उदाहरणार्थ यदि एक शब्द ले चाँदनी। टेलीविजन पर जो दृश्य आपको कैमरा दिखायेगा चाँदनी का उसमें और मंच पर लाइट के माध्यम से, प्रोजेक्टर के माध्यम दिखाये गये चाँदनी के दृश्य में अंतर होगा किंतु रेडियो पर जैसे ही आप 'चाँदनी' शब्द सुनते तब जैसी जैसी चाँदनी हमने देखी है, या जो आपकी यादों से जुड़ी है, आप वैसी ही चाँदनी अपनी कल्पना में संजो लेगे। यह आवश्यक नहीं कि वह चाँदनी लेखक द्वारा सोची हुई चाँदनी हो।

अतः जैसा जैसा विस्तार श्रोताओं के मन का होगा, वह वैसा ही विस्तार ग्रहण करेगा। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि रेडियो नाटक मात्र सुना जा सकता है देखा नहीं जा सकता तो उसकी आत्मा कहाँ है ? तो इसका उत्तर होगा कि सवांद ही रेडियो नाटक की आत्मा है। रेडियो नाटक की पर्तें सवांद से ही खिलती हैं। पात्रों का परिचय संवाद से ही मिलता है। परंतु एकांकी की तरह रेडियो नाटक भी आधुनिक युग की विधा होने के कारण पाश्चात्य प्रभाव अधिक लक्षित होता है। यह प्रभाव शिल्पगत नहीं विषयगत है, क्योंकि इससे पहले जितने भी नाटक लिखे गए प्रसारित नहीं होते थे क्योंकि शिल्प का विकास नहीं हुआ था। विकास के प्रथम चरण में नाटक के विषय और शिल्प दोनों रंगमंचीय नाटक के समान थे।

इन रेडियो नाटकों में लंबे कथानक ढीले-ढीले संवाद और कथन में स्थिरता थी। बाद में यह अनुभव हुआ कि श्रव्य माध्यम को ध्यान में रखकर ऐसी रचना होनी चाहिए जिसकी प्रतीति मात्र श्रुति से करायी जा सके। रेडियो माध्यम की परिस्थितियों को तथा ध्वनि विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर रेडियो नाटक तैयार हुए।

(ब) स्वातंत्र्यपूर्व नाटक की विशेषताएँ:

- १) रेडियो नाटक प्रसारण का उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन था।
- २) कथानक, चरित्र चित्रण, कथोपकथन पर नाटककार की दृष्टि न के बराबर थी।
- ३) बाह्य चित्रण की अधिकता थी तथा वर्णनात्मकता की प्रधानता थी।
- ४) ऐतिहासिक, जाजूसी, रूमानी तथा पौराणिक विषय तो लिए गए लेकिन तत्कालीन समस्याओं का चित्रण नहीं हुआ।
- ५) हिन्दी नाटककारों का रेडियो से सीधा संबंध नहीं था।
- ६) आरंभ में रंगमंचीय नाटक रंगमंचीय शिल्प में प्रसारित किए गए तथा बाद में रेडियो शिल्प को ध्यान में रखकर नाटक रचे गए।

परिणाम सुगठित कथानक, सफल संवाद, सरल भाषा, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा अंतरद्वंद्व प्रकाशन संभव हुआ।

(क) रेडियो नाटक लेखन:

रेडियो नाटक एक आधुनिक विधा है, जिसके द्वारा विभिन्न विषयों, घटनाओं, व्यक्तियों, भावों एवं वातावरण को प्रस्तुत किया जाता है। यह श्रव्य माध्यम है, इस कारण इसे श्रव्य नाटक भी कहा जा सकता है। रेडियो नाटक लेखन के लिए लेखक को निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार करना चाहिए व निम्न आवश्यक तत्वों को अपनाना चाहिए।

१) नाटक का बीज:

नाटक के बीज कहीं से भी मिल सकते हैं, जैसे- अध्ययन से, अनुभव से, समाज से, संपर्क में आए व्यक्तियों से या आस-पास के जीवन से। इसके आधार पर लेखक अपनी लेखनी से

उन्हें कथानक, चरित्र, संवाद आदि के माध्यम से नाटक के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करता है। इसके लिए लेखक में संवेदनशीलता का होना आवश्यक है।

रेडियोलेखन- रेडियो लेखन के अनिवार्य तत्व

२) स्थापत्य और कथानक:

इसमें नाटक की घटनाओं, प्रसंगों, कार्य व्यापारों और कथानक से संबद्ध सभी बातें आती हैं। नाटक के प्रारंभ, विकास और अंत के विभिन्न चरण, संघर्ष, दृश्य और सूक्ष्म प्रसंगों का अनुपात, घटनाओं और पात्रों का तथा पात्रों और संवादों का संबंध, प्रभाव की दृष्टि से जुड़ी सभी बातें स्थापत्य के अंतर्गत आती हैं।

कथानक घटनाओं तथा कार्य व्यापारों का वह संगठन है जिस पर नाटक की रचना होती है। इसलिए - नाटक का कथानक ऐसा होना चाहिए जो श्रोताओं की जिज्ञासा को अंत तक बनाए रखे।

अ) कथानक का निर्माण:

नाटकों के कथानक किसी न किसी प्रतिज्ञा सूत्र पर आधारित होते हैं। इसे समीक्षकों ने बीज, थीम, - मुख्यविचार, लक्ष्य उद्देश्य आदि कहा है। प्रतिज्ञा सूत्र लेखक की मान्यताओं और विश्वास से जन्म - लेता है और कथानक की रूपरेखा को निर्दिष्ट करता है। इसके तीन खंड होते हैं पहला खंड नाटक के चरित्र और प्रारंभ को संकेत करता है, दूसरा खंड नाटक के अंत को और तीसरा कथानक में निहित संघर्ष को इस तरह कथानक में गतिशीलता बनी रहती है। और आरंभ की स्थिति अंत तक बदल जाती है।

ब) कथानक निर्माण के बाद:

कथानक के निर्माण के बाद लेखक प्रसंगों का दृश्यों के अनुसार विभाजन का उल्लेख करता है कि किस "दृश्य में कौन-कौन से पात्र रहेंगे, किस बिंदु से उनका संवाद प्रारंभ होगा और किस बिंदु तक चलेगा तथा उसे कितने मिनट का समय देना होगा।

३) चरित्र:

चरित्र ही नाटक को जीवंत बनाते हैं। ये चरित्र सजीव होने चाहिए। सजीव पात्र ही विश्वसनीय होते हैं। रेडियो नाटक में पात्रों की संख्या अधोरेखित रखी जाती है। जिससे वह आसानी से पहचाने जा सके। इस दृष्टि से रेडियो नाटक का पात्रों के मन की गहराई में उतरना सरल होता है।

४) दृश्य संयोजन और दृश्यांतर:

रेडियो नाटक में दृश्यों की संख्या का कोई बंधन नहीं है। इसमें एक भी दृश्य हो सकता है और सौ भी। दृश्य छोटे भी हो सकते हैं और बड़े भी दृश्य, संवाद और समय नाटकीय प्रयोजन और कथावस्तु के द्वारा निर्देशित होते हैं।

रेडियो नाटक में दृश्यांतर के लिए विशेष अवरोध नहीं होता। दृश्यांतर तभी होता है जब वातावरण निर्मित हो चुका हो, पात्र अपनी बात कह चुके हों और नाटकीय प्रयोजन सिद्ध हो

चुका हो। दृश्यांतर १०-१५ सेकंड का होता है। रेडियो नाटक में दृश्यांतर करने के ढंग हैं चुप्पी, क्रमागत लोप (फेंडिंग), प्रवक्ता, - ध्वनि प्रभाव, संगीत और प्रतिध्वनि

५) आरंभ, विकास और अंत: रेडियो नाटक का प्रारंभ अच्छे संगीत से किया जाता है। इसके बाद नाटक आरंभ होता है और यति पकड़ता है। रेडियो नाटक में गति एक महत्वपूर्ण तत्व है। प्रारंभ का संगीत और नाटक का आरंभ आक्रमक न होकर संवेदनापूर्ण होना चाहिए तथा उसकी गति में कोमलता हो। बीच-बीच में जिज्ञासा, रहस्यमयता, कर्णप्रिय संगीत, वातावरण और कथात्मकता का समावेश किया जाना चाहिए। रेडियो नाटक के आरंभ के कई बिंदु हो सकते हैं:

- (१) कोई नाटक ठीक उस बिंदु से आरंभ होता है जब कोई द्वंद्व सक्रांति को जन्म देता है।
- (२) कोई नाटक ठीक उस बिंदु से आरंभ होता है जहाँ कम से कम एक पात्र अपने जीवन के नए मोड़ पर होता है।
- (३) नाटक किसी ऐसे निर्णय से शुरू हो सकता है जो संघर्ष को जन्म देने वाला हो। ४) नाटक इस बिंदु से आरंभ हो सकता है, जब किसी का कोई मूल्यवान और महत्वपूर्ण विकास दाँव पर होता है।

ऐसे प्रारंभ से नाटक को स्वतः दिशा मिलती है। एक घटना से दूसरी घटना, एक सवांद से दूसरा सवांद निकलता है। नाटककार को यह देखना होता कि नाटक में हमेशा तनाव बना रहे। जहाँ तनाव ढीला होगा, नाटक में शिथिलता आएगी और उसमें श्रोताओं को बाँध रखने की क्षमता कम होगी। श्रोताओं की रुचि और जिज्ञासा को बनाए रखना जरूरी है। नाटक का अंत समाधान के रूप में भी हो सकता है और प्रश्न के रूप में भी। यह नाटककार के उद्देश्य पर निर्भर करता है कि वह क्या चाहता है और नाटक में कैसा प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है। जितना महत्व नाटक के प्रारंभ का है, उतना ही अंत का और इस दृष्टि से नाटक का अंत नाटककार से बड़ी सूझ-बूझ की अपेक्षा करता है।

६) रेडियो नाटक के उपकरण रेडियो नाटक के उपकरण इस प्रकार हैं:

अ) भाषा:

रेडियो नाटक की भाषा, सरल, स्वाभाविक, दृश्यरूपात्मक और अभिनेताओं द्वारा बोली जाने वाली भाषा होनी चाहिए। रेडियो नाटक के श्रोता सभी समुदाय के सभी वर्ग के और विभिन्न आयु वर्ग के होते हैं। इसलिए भाषा में अश्लील शब्दों का प्रयोग न हो, संप्रदाय विशेष की भावनाओं को भड़काने वाले वाक्यों का प्रयोग न हो, इसका लेखक को ध्यान रखना चाहिए। रेडियो नाटक श्रोताओं को भाव-बोध, स्थान- बोध, फलबोध और मंचन सामग्री का बोध करा सके। संवाद के माध्यम से श्रोताओं को जानकारी मिल उसके कि नाटक में जिस स्थान का वर्णन है वह कहाँ है? पहाड़ है, सागर है या झील है।

रेडियो नाटक की भाषा का प्रमुख गुण है चित्रात्मकता। शब्दों से चित्रों का निर्माण होता है और रूप-रंग की झाँकी भी प्रस्तुत की जा सकती है जिससे श्रोता अपनी कल्पना के माध्यम से नाटक को सुनकर समझ सके। सामग्री का बोध करा सके। संवाद के माध्यम से श्रोताओं

को जानकारी मिल सके कि नाटक में जिस स्थान का वर्णन है वह कहाँ है ? पहाड़ है, सागर है या झील है।

रेडियोलेखन- रेडियो लेखन के अनिवार्य तत्व

रेडियो नाटक की भाषा का प्रमुख गुण है चित्रात्मकता शब्दों से चित्रों का निर्माण होता है और रूप-रंग की झाँकी भी प्रस्तुत की जा सकती है जिससे श्रोता अपनी कल्पना के माध्यम से नाटक को सुनकर समझ सके।

ब) संवाद रेडियो नाटक में संवादों का प्रयोग तीन रूपों में होता है:

- १) भाषा
- २) ध्वनि प्रभाव तथा
- ३) संगीत / विलियम ऐश का कहना है कि "संवाद के अतिरिक्त रेडियो नाटक में थोड़ा-बहुत ध्वनि प्रभाव, संगीत आदि सहायता कर देते हैं, किंतु संवाद के बिना रेडियो नाटक प्राणहीन हो जाता है।"

रेडियो नाटक के संवादों में निम्न विशेषताओं का होना आवश्यक है:

- १) संवाद में कोई न कोई नाटकीय प्रयोजन अवश्य ही सिद्ध होना चाहिए।
- २) संवाद पात्रों के अनुरूप या परिवेश के अनुरूप होने चाहिए।
- ३) संवाद छोटे-छोटे या बड़े-बड़े किसी प्रकार के हों, पर उनका संबंध स्थितियों और चरित्रों आवश्यक बना रहना चाहिए।
- ४) संवाद, सरल और स्वाभाविक होने चाहिए।
- ५) संवादों के बीच में प्रश्नों का समावेश नाटक के आकर्षण में वृद्धि करता है।
- ६) स्वगतों का प्रयोग रेडियो नाटकों के संवादों को प्रभावपूर्ण बनाता है। प्रारंभ में छोटे स्वगतों का प्रयोग किया जा सकता है। नाटक के अंत में स्वगत का प्रयोग देर तक नहीं करना चाहिए।
- ७) प्रत्येक संवाद तथ्यपरक होना चाहिए।
- ८) पात्रों की गतिविधियों सूचना, दृश्य परिवर्तन का आभास आदि की सूचना संवादों के माध्यम से होनी चाहिए।

स) नैरेशन:

रेडियो नाटक में नैरेशन की स्थिति नाटक विशेष एवं उसके प्रकार पर निर्भर करती है। रेडियो नाटक में नैरेशन दो प्रकार के होते हैं।

- १) वे नैरेशन जिनके व्यक्तिगत जीवन का नाटक की घटनाओं से कोई संबंध नहीं होता। वे नाटक के क्रियाकलाप के तटस्थ दर्शक एवं प्रवक्ता होते हैं।

- २) वे नैरेशन जो नाटक के पात्र होते हैं और जिनके जीवन की घटनाएँ नाटक से प्रत्यक्ष संबंध रखती हैं। ऐसे नैरेशन को पात्र नैरेशन भी कहते हैं।

द) ध्वनि प्रभाव:

रेडियो नाटक में ध्वनि सूचना और विवरण का काम करती है। अनेक प्रकार की ध्वनियों से नाटक को विशिष्ट आकार प्राप्त होता है और संवेदनाओं से संबद्ध अर्थवृत्त श्रोताओं के मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं। वाद्य संगीत की आवश्यकता, ध्वनि प्रभाव पात्रों के कार्यों, प्रवाह की रक्षा, मानसिकता की तैयारी, देशकाल, दृश्यांतर, चित्रमयता, उत्सुकता की रक्षा के लिए होती है।

य) संगीत:

रेडियो नाटक में संगीत का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है;

- १) स्वतंत्र रूप में,
- २) संलाप की पृष्ठभूमि में,
- ३) ध्वनि प्रभाव के साथ मिश्रित रूप में नाटक को सशक्त बनाने का नाटककार के पास एक शस्त्र है।

पृष्ठभूमि का संगीत:

संगीत द्वारा जहाँ नाटक के प्रभाव में तीव्रता लाई जाती है, वहाँ दृश्य विशेष को संगीत की सहायता से चित्रित किया जाता है। रेडियो नाटक में पात्र की भावनाओं एवं मानसिकता का उद्घाटन भी संगीत की सहायता से किया जाता है।

७) उद्देश्य:

रेडियो नाटक का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ मनुष्य के अंतर्जीवन को भी चित्रित करना है। अपने आसपास की समस्याओं को रेखांकित करने और उनके प्रति लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए नाटक की रचना की जाती है।

८) शीर्षक:

नाटककार किसी भी विषय को आधार बनाकर नाटक लिख सकता है चाहे वह ऐतिहासिक हो, पौराणिक हो, सामाजिक हो या पारिवारिक नाटक हो। नाटक का शीर्षक विषय से संबद्ध होना चाहिए। नाटककार को विषय का चुनाव करते समय श्रव्य ध्वनियों की संभावनाओं का ध्यान रखना आवश्यक है।

रेडियो नाटक विभिन्न रुचियों के लिए विभिन्न स्थानों पर सुनते हैं। अतः नाटककार को ऐसा विषय लेना चाहिए जो श्रोताओं की रुचि के अनुरूप हो। उल्लेखनीय है कि विषय से अधिक महत्व विषयवस्तु और उसकी प्रस्तुति का है।

इस दृष्टिकोण से नाटककार को विषयवस्तु की प्रस्तुति उस धरातल पर करनी होगी, जहाँ सभी व्यक्ति समान हैं। यह धरातील रागात्मकता का हो सकता है, बौद्धिकता का नहीं। रेडियो नाटक की तीसरी सीमा प्रसारण संस्था की नीतियों से निर्धारित होती है। जहाँ रेडियो शासन द्वारा नियंत्रित है, वहाँ व्यवस्था विरोधी किसी विषय, विषयवस्तु या विचारधारा के लिए अवकाश नहीं बचता।

(ख) रेडियो वार्ता:

"वार्ता" शब्द का अर्थ है- वृत्तांत, बातचीत और ज्ञानवर्धक बातचीत (टॉक)। जिसे अंग्रेजी में 'स्पोकन वर्ड' कहते हैं। वैसे "वार्ता" शब्द अंग्रेजी "टॉक" का अनुवाद है। "वार्ता" शब्द आमतौर से रेडियो के लिए रूढ़ होकर एक विशेष अर्थ का भी बोध कराता है। रेडियो से प्रसारित होने वाली वार्ता वही नहीं, जो वार्ता हमारे जीवन में हुआ करती है। बोलचाल के व्यवहार में जो वार्ता होती है उसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं।

रेडियो वार्ता का अर्थ कुछ विशिष्ट होता है। इसमें दो पक्ष होते हैं वक्ता और श्रोता। वार्ता में संवाद की - संभावना नहीं रहती। यह एक पक्षीय होती है। प्रत्यक्ष रूप से संवाद न होते हुए भी अच्छी वार्ता में संवादी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व आवश्यक है। इसके लिए वार्ता में वार्ताकार को दो चार वाक्य के बाद एक ऐसा - वाक्य या भाव लाना चाहिए, जिससे यह प्रतीत हो कि वह और श्रोता आमने सामने हैं।

रेडियो वार्ता में श्रोता पक्ष की संवादी प्रवृत्ति की जिम्मेदारी वार्ताकार की ही होती है। अर्थात् अपनी वार्ता में वार्ताकार यह समझ ले कि श्रोता उसकी वार्ता के साथ अपनी मानसिकता को बाँधे हुए हैं। और उसकी अभिव्यक्तियों के साथ श्रोताओं का भावबोध जुड़ा होता है।

रेडियो के अधिकांश प्रसारणों में आलेख की अनिवार्यता होती है इसलिए वार्ता के लिए भी आलेख आवश्यक हो जाता है। लेकिन इस क्षेत्र में कुछ विवाद भी हैं। लेखन पद्धति (आलेख) के विपक्ष में मत रखने वालों के विचार हैं कि सजग वार्ताकार प्राकृतिक रूप में वार्ता नहीं लिख सकता; क्योंकि वार्ता अपने सच्चे रूप में तभी संभव है, जब वक्ता अनायास बोले। लोग सामान्य रूप से तभी स्वाभाविक रह सकते हैं, जब बिना आलेख के बातचीत की जाए। ऐसे वार्ताकारों में एक पश्चिमी विद्वान श्रीमती रूजवेल्ट का नाम बहुचर्चित है, श्रीमती रूजवेल्ट बिना आलेख के रेडियो पर अपनी वार्ता प्रसारित करती थीं। लिखित न होते हुए भी उनकी वार्ता में एक अच्छी वार्ता की संपूर्ण विशेषताएँ समाहित रहती थीं। इस तरह के वार्ताकारों में भारत के श्री कपिलदेव सिंह का नाम भी चर्चित है।

रेडियो के लिए कैसी वार्ता लिखी जाये; जो श्रेष्ठ और स्वाभाविक हो ? क्या स्वाभाविक और रोचक बनाने के लिये यह आवश्यक है कि हम जैसे बोलते हैं; वैसे ही लिखें ? बातचीत नुमा वार्ता के बारे में अंग्रेजी लेखक श्री डनवर ने कहा "वार्ता के लिए आलेख तैयार करने में बातचीत की अन्तर्धारा को पकड़ना चाहिए। अगर आप लोगों को गौर से बाते करते हुए देखेंगे, तो पायेंगे कि बातचीत का अपना एक खास ढर्रा होता है लेकिन पुस्तकों की तरह लंबे-लंबे वाक्य और विशेषण भरे वाक्य खंड का व्यवहार नहीं करते वे मुहावरों में और अच्छे वाक्यों में बातें करते हैं।"

अच्छी रेडियो वार्ता के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए:

१) श्रोता का क्षेत्र बाँधा नहीं जा सकता:

वार्ता विषय के आधार पर यह आवश्यक नहीं कि उसे केवल वही वर्ग सुन रहा है जिससे वार्ता संबंधित है। श्रोता का क्षेत्र बाँधा नहीं जा सकता; पर श्रोता को अपनी वार्ता के द्वारा बाँधने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये आवश्यक होगा कि बड़े रोचक और ऐसी चुंबकीय शक्ति से प्रस्तुत करें ताकि ऐसे श्रोता जो हमारे विषय क्षेत्र से अलग के हैं वे भी हमारे अपने हो जायें।

२) लेखन योजनाबद्ध हो:

रेडियो वार्तालेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह जो भी लिखे वह योजनाबद्ध रूप में अर्थात् विषय और उसके विस्तार को अच्छी तरह समझना अनिवार्य है। वार्ता विश्लेषणात्मक ढंग से लिखी जानी चाहिये। ऐसा न करने पर वार्ता के समस्त उपादानों का विवेचन नहीं हो पाता। उदा. 'साहित्य की प्रासंगिकता नामक वार्ता में यदि साहित्य की ही विवेचना आधे से अधिक समय की जाये तो वार्ता की समाप्ति तक उसके अवयवों की संतुलित व्याख्या नहीं हो पायेगी। इसलिए वार्ता में संतुलन बनाये रखना आवश्यक है।

(३) समय का विशेष ध्यान रखे:

वार्तालेखन में समय का विशेष ध्यान रखना चाहिये। वार्ता कोई भी हो उसका निर्धारित समय होता है; उसी के भीतर प्रसारित की जाती है इसलिए निर्धारित समय के भीतर अपनी बातों को पूर्णता और प्रभावोत्पादक ढंग से कह देना भी वार्ता और वार्ताकार की सफलता है।

४) शब्दों की पुनरावृत्ति न हो:

कभी वार्ताकार कुछ ऐसे शब्दों की पुनरावृत्ति बार बार करता है जो आवश्यक नहीं हैं। वार्ता में शब्द - पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। उदा. "हम तमाम लोग जब खुश होते हैं - तो हँसते हैं, दुःखी होते हैं - तो रोते हैं, खुश होते हैं - तो चीखते-चिल्लाते हैं, और उदास होते हैं - तो चुप रह जाते हैं।" यहाँ इस वार्ता में होते हैं। कई बार प्रयोग हुआ है जो सार्थक होते हुए भी उचित नहीं। वार्ता में निरर्थक शब्द प्रयोग भी वर्जित है।

५) शब्दों में ध्वनि साम्य न हो:

वार्ता में ध्वनि साम्य शब्दों को साथ नहीं लिखना चाहिए क्योंकि ऐसे शब्दों के उच्चारण में थोड़ी सी चूक होने पर अर्थ का अनर्थ संभावित है। उदा. "हम सब सभय समय को निहारते हैं।" यहाँ 'समय' और 'समय' सभी सभय सभय अथवा समय समय अथवा समय सभय उच्चारित हो सकते हैं। इसलिए - ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए।

६) वार्ता के विषय में उतार - चढ़ाव हो:

श्रेष्ठ वार्ता के लिए विषय में उतार-चढ़ाव और 'क्लाइमेक्स' का समावेश होना चाहिए। ऐसी वार्ता में श्रोता को कोई तनाव नहीं होता। इसमें श्रोता वार्ता के साथ चलता हुआ आनंद का

अनुभव करता है, क्योंकि ऐसी वार्ता से उसे कुछ मिलता है। वार्ता में बिम्ब, हास्य - व्यंग्य और हाजिर जवाबी का समावेश आवश्यक है।

रेडियोलेखन- रेडियो लेखन के अनिवार्य तत्व

७) तारतम्य:

तारतम्य अच्छी वार्ता की सर्व प्रमुख विशेषता है। तारतम्य और विषय का संबंध अटूट होता है। विषय से जब कोई श्रोता जुड़ जाता है तो वह विषय के साथ चलना चाहता है। तारतम्य समाप्त होते ही श्रोता स्वप्न भंग की स्थिति में पहुँच कर श्रावण से अपने को अलग कर लेता है।

इसी प्रकार वार्ता के अंतर्गत सूत्रात्मक वाक्यों का प्रयोग भी वर्जित है और वार्ताकार को वार्ता के आरंभिक स्वरूप को काफी सुव्यवस्थित, मनोरंजक एवं प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। भाषा और शब्द के पडिप्ता रूप को कभी वार्ता में शामिल नहीं करना चाहिए। और रेडियो वार्ता का वाचक शुद्ध होना चाहिए।

रेडियो वार्ता के भेद:

वार्ता के कुछ भेद कार्यक्रम विशेष के आधार पर किए जाते हैं जैसे औरतों के लिए, बच्चों के लिए, युवावर्ग के लिए और विद्यार्थी के लिए आदि। इनके अलावा और भी अनेक प्रकार की वार्ताएँ होती हैं- समाचार, समाचार समीक्षा, परिचर्चा, व्यंग्य विनोद, खेती गृहस्थी और उद्घोषणाएँ आदि। कुछ - वार्ताएँ ऐसी होती हैं जिनमें वार्ता संबंधी समस्त विशेषताएँ लागू होकर भी अपनी एक अलग पहचान बनाती हैं उदाहरणार्थ तथ्यपरक वार्ता, संस्मरणात्मक वार्ता, आत्मकथात्मक वार्ता, वैयक्तिकवार्ता और विवादास्पद वार्ता आदि।

१) तथ्यपरक वार्ता:

तथ्यपरक वार्ता को तथ्यों से बोझिल नहीं होना चाहिए। तथ्यों का समावेश आवश्यकतानुसार हो। इसमें तथ्य संबंधी सूचना कदापि गलत न हो। जैसे भूल से भी अगर कोई वार्ताकार यह कह गया- "लाल किला मुंबई में समुद्र के किनारे मुगल बादशाहत का अनोखा नमूना है।" ऐसी भूल के लिए वार्ताकार के साथ प्रोड्यूसर एवं रेडियो अधिकारियों की भी कार्यकुशलता पर प्रश्न चिह्न लग जायेगा।

२) संस्मरणात्मक वार्ता:

संस्मरण प्रधान वार्ताएँ रेडियो के लिए बहुत उपयोगी हैं। इस तरह की वार्ता में कहीं न कहीं कथा तत्व का समावेश अवश्य रहता है, जो श्रोता को वार्ता से अलग नहीं होने देता। वर्ण्य विषय के आधार पर ही वार्ताकार संस्मरणात्मक वार्ता में उस व्यक्ति, घटना स्थान आदि से संबंधित बातें करेगा। ऐसी वार्ता में "मैं" का वाचन पूर्णतया वर्जित है।

३) आत्मकथात्मक वार्ता:

आत्मकथात्मक वार्ता का सिद्धांत संस्मरणात्मक वार्ता के विपरीत होता है। क्योंकि इसमें वार्ताकार के लिए अपने बारे में कहने की काफी छूट रहती है। ऐसी वार्ताओं का विषय किसी

ख्याति लब्ध और प्रमुख व्यक्तित्व से सम्बंधित हो या एक साधारण आदमी, जो कुछ ऐसी बातों को बतला रहा हो जिससे श्रोता चमत्कृत हो जाये।

४) वैयक्तिक वार्ता:

वैयक्तिक वार्ता में भी काफी गुंजाईश होती है। इनमें वार्ता किसी व्यक्ति से सम्बंधित होती है, पर उसका आधार व्यक्ति न होकर कोई दूसरा विषय होता है। 'आत्मा' पर यदि कोई आम नागरिक अपने वैयक्तिक विचार दे तो उसके विचार और यदि 'आत्मा' पर कोई वैज्ञानिक अपने विचार दे तो दोनों के अपने वैयक्तिक विचार ही वार्ता में खुलकर सामने आयेंगे।

(ग) रेडियो नाट्य रूपांतर:

रेडियो श्रव्य माध्यम है। इसके लिए विशेष रूप से लिखित नाटकों के अतिरिक्त उपन्यास, कहानी तथा रंग नाटक को रूपांतरित कर प्रसारित किया जाता है। रंग नाटक प्रेक्षागृह में बैठे दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए रचा गया होता है जबकि कहानी था उपन्यास पढ़ने के लिए लिखे जाते हैं। ऐसी रचनाओं का रूपांतरित रूप उन्हें रेडियो प्रसारण के उपयुक्त बना देता है।

अतः जब किसी कहानी का रूपांतर होता है, तो उसमें से वर्णनात्मक अंश निकालकर संघर्ष, कौतूहल तथा नाटकीय तत्वों वाला अंश शामिल किए जाते हैं। साथ ही यह भी ध्यान रखा जाता है कि मूल कृति का विचार नष्ट न हो।

रंगनाटक प्रायः दो या तीन घंटे की अवधि का होता है। किंतु इसका रेडियो रूपांतर या तो ३० मिनट या फिर एक घंटे की अवधि तक का होता है। मूल नाटक में कई प्रसंग होते हैं। किसको छोड़ा जाए और किसको रखा जाए, यह एक समस्या होती है। इसलिए उपकथाओं को छोड़कर केवल मुख्य प्रसंग को ही रूपांतरित नाट्य आलेख में रखा जाता है।

उदा. (दृश्य परिवर्तन संगीत)

बियांका : केथरीन ! मेरी अच्छी बहन, अब मुझे और मत सताओ। मुझे नौकरानी बनाकर रखना तुम्हें शोभा नहीं देता। मेरे हाथ खोलो केथरीन मैं ये चमक दमक वाले कपड़े खुद ही उतार दूँगी। फिर जैसा तुम कहोगी वैसा ही करूँगी।

केथरीन : बियांका, जरा ये बताओ कि तुम्हारा हाथ माँगने आए सारे लोगों में से तुम्हें सबसे अच्छा कौन लगा ? देखो, सच्चाई छिपाने की कोशिश मत करना।

बियांका : मेरा विश्वास करो बहन। उनमें से शायद ही किसी की सूरत मुझे पसंद हो।

केथरीन : अरी, झूठी क्यों, वे हॉरटेन्सियो नहीं हैं जो तुझे.....

बियांका : अगर उसने तुम्हें प्रभावित किया है केथरीन, तो मैं कसम खाती हूँ, मैं खूद उसके लिए तुम्हारी वकालत करूँगी।

केथरीन : तो फिर तुम्हें किसी दौलत ने रिझाया है। यानी तुम्हें ग्रेमियो ही पसंद आया।

बियांका : क्या, तुम उसी के कारण मुझसे ईर्ष्या करने लगी हो ? बहन, मैं प्रार्थना करती हूँ, मेरे हाथ खोल दो ।

केथरीन : हाथ खोल दो ।

ध्वनि प्रभाव:

(धक्का देने की ध्वनि बियांका कराहती है।)

बेपटिस्टा : (आते हुए) केथरीन! जाओ अपना काम करो। बियांका से मत उलझो। न जाने कौन-सा शैतान छिपा बैठा है तुम्हारे अंदर। हर समय इसे परेशान करती रहती हो। कभी इसने तुम्हें बुरा भला कहा ? बताओं ।

केथरीन : इसकी चुप्पी किसी तिरस्कार से कम है क्या ? इसका बदला मैं जरूर लूँगी।

बेपटिस्टा : अरे, मेरे सामने भी छोटी बहन पर हाथ उठाने लगी ? बियांका तुम अंदर जाओ ।

ध्वनि प्रभाव:

(जाते हुए कदमों की ध्वनि) कैथरीन हाँ, हाँ यह तो तुम्हारी सब कुछ है उसकी तो शादी भी होनी चाहिए और मैं? मैं उसकी शादी के दिन नंगे पाँव नाचूँ ? (जाते हुए) तुम्हारी छोटी बेटा के प्यार की खातिर मैं जहन्नूम में बेपाटिस्टा (लंबी साँस भरकर) ओह... क्या कोई आदमी मेरे जैसा दुःखी होगा ? : ध्वनि प्रभाव (कुछ व्यक्तियों के आने की आहट)

(आकाशवाणी से नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम में विश्व रंगमंच दिवस के उपलक्ष्य में प्रसारित शेक्सपीयर के 'टेमिंग ऑफ द थ्रु' का हिन्दी रेडियो नाट्य रूपांतर प्रसारण तिथि : २३ मार्च - १९९५)

कहीं कहीं रंग नाटकों के रूपांतरित रूप में मुख्य प्रसंगों को जोड़ने के लिए सूत्रधार अथवा नैरेटर को भी रखा जाता है। परंतु जब नाटक के अंशों, दृश्यों अथवा घटनाओं को नैरेटर द्वारा जोड़ा जाता है। तो नाटक की गति में अंतर आता है। फीचर या आलेख रूपक में तो नैरेटर का होना नितांत आवश्यक है किंतु रंग नाटक के रूपांतरित रूप में इसका इस्तेमाल बहुत कम होता है।

कहानियाँ, पुस्तकों में प्रकाशित होने के अतिरिक्त पत्रिकाओं में भी छपती हैं। कई कहानियाँ पाठकों में लोकप्रिय भी होती हैं। ऐसे कथा साहित्य का श्रव्य माध्यम के लिए रूपांतर करते समय भी कठिनाई आती है। क्योंकि अधिकतर कहानियों में नाटकीय तत्व नहीं होते हैं, घटनाएँ कम होती हैं, और कुछ कहानियों के कथानक सशक्त नहीं होते। ऐसी रचनाओं को ३० मिनट के नाटक में परिवर्तित करने के लिए नये प्रसंगों व नए पात्रों को भी जोड़ा जाता है। जिन कहानियों के मूल में कोई द्वंद्व नहीं होता उनका रूपांतरण और भी कठिन होता है। अतः ऐसी कहानियों के कथावस्तु को आधार बनाकर नया नाटक लिखा जाता है तथा कहानी पर आधारित नए नाटक में नए पात्रों का सृजन किया जाता है। किंतु ऐसा रूपांतर एक प्रतिभाशाली नाटककार ही कर पाता है।

उपन्यासों में कई उपकथानक होते हैं। उपन्यासों में पात्रों की संख्या भी अधिक होती है। इस कारण रचनाकी आवश्यक घटनाओं तथा अंगों को आधार बनाकर रूपांतर किया जाता है और आवश्यक घटनाओं तथा अंगों को आधार बनाकर रूपांतर किया जाता है और अनावश्यक प्रसंग व पात्र निकाल दिए जाते हैं। संवादों को सरल बनाया जाता है। कहीं कहीं पूर्व स्मृति की तकनीक से पूर्व प्रसंगों को - - जोड़कर सीमित समय में प्रसारित होनेवाली रचना के रूप में, एक उपन्यास को रूपांतरित किया जाता है।

(घ) रेडियो आलेख रूपक (डाक्यूमेंट्री फीचर):

रेडियो रूपक:

रेडियो पर प्रसारित रूपक नाटकों में इतनी विभिन्नता विविधता (विषय और रूप दोनों दृष्टि से) है कि परिभाषा देना अत्यंत कठिन कार्य है। इस नाट्य विधा में इतने शिल्पगत प्रयोग हुए हैं कि शायद ही साहित्य की किसी अन्य विधा में हुए हों। कुछ विद्वानों ने समस्त रेडियो प्रसारित नाटकों को रूपक माना है किंतु रूपक शब्द अंग्रेजी के (Feature) फीचर का अनुवाद है। हिन्दी में रूपक शब्द "रूप" शब्द में "क" प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। "क" का अर्थ करनेवाला होता है। (जैसे भ्रम से भ्रमका) अतः रूपक का अर्थ हुआ रूपवाला रेडियो रूपक लेखन एक स्वतंत्र कला है। जिसकी शिल्प विधि का निर्माण रेडियो ने स्वयं किया। इसमें वास्तविक जीवन का चित्रण होता है। रेडियो नाट्य शिल्प को ध्यान में रखकर किसी नाट्येतर रचना को रूपांतरित कर देना ही रेडियो रूपक है।

"फीचर" एक ऐसा आलेख होता है जिसमें सत्य एवं तथ्य का उद्घाटन सप्रमाण रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। उसमें सत्य एवं तथ्य के निरूपण में कल्पना शीलता एवं प्रत्युत्पन्नमति से पुष्ट सृजनात्मक कौशल्य निहित रहता है। इस प्रकार रेडियो रूपक के बारे में भिन्न-भिन्न विद्वानों का भिन्न मत है-

- १) काँ दशरथ ओझा के अनुसार रेडियो रूपक में कथाकार नामक एक व्यक्ति वर्णन द्वारा पूर्वा पर घटनाओं को संयुक्त करता चलता है।
- २) डॉ. रामचरण महेन्द्र: रेडियो रूपक वह रचना है जिसमें एक प्रवक्ता वातावरण का परिचय देते चलता है। मध्य में आनेवाले प्रसंगों को नाटकीय अभिनव द्वारा व्यक्त किया जाता है।
- ३) पं. उदय शंकर भट्ट: रेडियो रूपक में घटनाओं का संकलन एवं विकास सूत्राधार द्वारा होता है।
- ४) शिलनाथ रूपक को वास्तविकता का नाटकीयकृत रूप माना जाता है।

उपयुक्त परिभाषाओं पर विचार करने से निम्न तीन बातें रेडियो, रूपक के लिए अनिवार्य हैं।

- १) वह वास्तविक घटना पर आधारित हो।
- २) उसमें नाटकीयता हो।
- ३) उसमें एक कथाकार नैरेटर की उपस्थिति अनिवार्य हो।

इस प्रकार कह सकते हैं कि रेडियो रूपक वास्तविक तथ्यों पर आधारित साहित्य की वह अर्धनाटकीय विधा या नाटकीय विधा है जिसमें एक या अनेक कथाकार घटना सूत्रों को संबंध करते चलते हैं। इसमें कथाकार के अतिरिक्त अन्य पात्र भी होते हैं।

रेडियो रूपक का रचना विधान कैसे बनाएँ:

इसका रचना विधान वृत्त रूपक जैसा ही है। इसकी रचना के पूर्व रूपक के विषय वस्तु का चयन करने के लिए रचना की एक रूपरेखा का निर्माण करता है। फिर वह सामग्री का चयन करता है। इसके बाद एक विशिष्ट शिल्पविधी को निश्चित करता है तथा चयनित सामग्री का अध्ययन करता है तथा रचना की सृष्टि करता है। इसके निम्नलिखित चरण हैं-

- १) रूपरेखा निर्माण और शिल्प का निर्धारण
- २) सामग्री चयन
- ३) सामग्री का अध्ययन
- ४) रचना का निर्माण सफल

रेडियो रूपक की विशेषताएँ:

- १) वर्तमान के समस्त शिल्प और प्राचीनकाल की कथा कहने की कला अनिवार्य है क्योंकि वे सुनने के लिए लिखे जाते हैं। अतः सुनने वालों में अफसाना निगारी का गुंज (कथा कहने का गुण) होना अनिवार्य है।
- २) रूपक के लिए यह अनिवार्य है कि वह रचना शिल्प और रचनाकार के मौलिक कारयित्री प्रतिभा के साथ सुंदर सामंजस्य स्थापित करे।
- ३) तथ्य पूर्णता के साथ उसमें मनोरंजकता का संमिश्रण अनिवार्य है।
- ४) श्रोता को संपूर्ण विषय की संपूर्ण जानकारी करा देना आवश्यक है।

सफल रेडियो रूपककार के कार्य:

- १) प्रस्तुतीकरण का आरंभ प्रभावशाली होना चाहिए।
- २) मनोरंजकता का समावेश करे।
- ३) नाटकीयता और अभिनेयता का समुचित समावेश होना चाहिए।
- ४) अपने उद्देश्य को स्पष्ट जानता हो।
- ५) भाषा में यथा संभव प्रसाद गुण संपन्नता का समावेश हो।

रेडियो रूपक का वर्गीकरण:

- १) कल्पना प्रधान

२) वस्तु प्रधान

३) हास्य प्रधान

रेडियों रूपक और रेडियों नाटक में भेद:

- १) रूपक प्रायः तथ्यों पर आधारित होता है। उसमें कल्पना के लिए स्थान नहीं होता किंतु रेडियों नाटक कल्पना के सहारे चलता है। (अर्थात् उसमें कल्पना की प्रधानता होती है। और तथ्य सीमित होते हैं।)
- २) रूपक में प्रायः सूत्राधार या नैरेटर की आवश्यकता होती है। नाटक में नैरेटर नहीं होता।
- ३) नाटक अभिनय और नाटकीयता से पूर्ण होता है। किंतु रूपक को कभी कथाकार या नैरेटर भी प्रस्तुत करते हैं। इसमें नाटकीयता या अभिनेयता की स्थिति आती ही नहीं है। संपूर्ण रूपक नैरेटर के विवरण में ही समाप्त हो जाता है।
- ४) रूपक कथा (नैरेशन) प्रधान होता है तथा नाटक संवाद प्रधान होता है।
- ५) नाटक का एक्य कथानक पर निर्भर करता है और रूपक का एक्य विचार पर निर्भर करता है। नाटक में एक घटना विकसित होती है, रूपक में विचार आगे बढ़ते हैं।
- ६) नाटक में चरित्र चित्रण पर बल दिया जाता है। रूपक में तथ्यों के प्रस्तुतीकरण पर जोर दिया जाता है।
- ७) नाटक में मनोरंजक तथ्य की प्रधानता रहती है। रूपक में सूचक तथ्य की प्रधानता रहती है।

वृत्त रूपक (वृत्त फिल्म) डाक्यूमेंटरी:

लोरेन्स विलियम का १९३४ में प्रथम वृत्तरूपक प्रस्तुत हुआ था।

भारत का प्रथम वृत्त रूपक रेडियों पर प्रसारित हुआ था।

गोपालदास खत्री का प्रथम वृत्त रूपक (हिन्दी) १९५९ में 'कुरुक्षेत्र शरणार्थी' कैम्प दिल्ली में प्रस्तुत किया गया था।

सन १९५१ दिल्ली में दूसरा हिन्दी वृत्त रूपक हरीशचंद्र शरणार्थी जीने नीलोखेड़ी (नील की खेती) बनाया। इलाहाबाद से गिरिजाकुमार माथुर की 'दामोदर घाटी' १९५३ में प्रस्तुत हुई।

'लखनऊ चौक' मोहम्मद हसन ने १९३४ में वृत्तरूपक बनाया।

मोहम्मद हसन ने 'उर्स बाजा गरीब निवाज' रूपक बनाया। विजय देवनारायण शाही ने 'मिरजापुर' का कालीन उद्योग यह वृत्तरूपक बनाया था।

राजा ज्योतिष ने 'नारस का जरी उद्योग' नामक डाक्यूमेंट्री बनायी।

वृत्त रूपककार को जीवन की वर्तमान गंभीर समस्याओं के प्रति सजग और सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहना चाहिए। जिसमें चित्रित वस्तु की सुंदरता प्रभावोत्पादक और भव्यता के साथ ही वृत्त रूपककार को जीवन की सत्यता और जनता के लिए उसकी उपयोगिता का ध्यान रखना चाहिए अर्थात् वृत्त रूपक को जनकता में बदलना चाहिए।

वृत्त रूपक के प्रकार:

- १) प्रासंगिक वृत्त रूपक (समय के अनुसार)
- २) सृजनात्मक वृत्त रूपक (परिपूर्णता)

रूपक आलेखन में सावधानियाँ:

- १) लिखित सामग्री का अधिक्य न हो।
- २) तथ्यपूर्ण यथार्थ जीवन में ग्रहण की गई सामग्री की अधिकता हो।
- ३) उसमें वर्णन, विवरण और नाटकीय दृश्य यथा संभव कम हो।
- ४) अधिकांश कथावस्तु मूल पात्रों द्वारा प्रकट की गयी हो।
- ५) इसमें मूल पात्र अपनी स्वाभाविक क्रियाओं द्वारा प्रकट हो, दूसरों के भाषणों या व्याख्यानों द्वारा नहीं।

वृत्त रूपक (डाक्यूमेंटरी) बनाने के लिए आवश्यक सामग्री:

- १) रूपरेखा
- २) सामग्री चयन
- ३) साक्षात्कार
- ४) प्रश्न उत्तर द्वारा
- ५) भाषण आदि रिकार्ड द्वारा
- ६) ध्वनिप्रभाव या वाक्य संगीत रिकार्ड द्वारा
- ७) सामग्री संगुफन संपादन।

डाक्यूमेंट्री लेखन विधि:

टेलीविजन के लिए डाक्यूमेंट्री लिखने के लिए सबसे पहले विषय का निर्धारण आवश्यक है। तत्पश्चात् डाक्यूमेंट्री के उद्देश्य पर विचार करना होगा। उद्देश्य का निर्धारण दर्शक वर्ग पर निर्धारित होता है। इसके बाद सबसे आवश्यक पहलू है अवधि, विषय की प्रस्तुति के लिए लेखक की स्वतंत्रता। निर्माता की आर्थिक स्थिती के साथ प्रस्तुतकर्ता विशेष आदि से मिलकर किया गया विमर्श निर्णायक होता है। विचार विमर्श द्वारा कार्य के साथ किया जाने वाले व्यवहार (ट्रीटमेंट) का निर्धारण करना होता है। अर्थात् यह निश्चित किया जाता है कि

प्रस्तुत डाक्यूमेंट्री शैली में होगी या कमेंट्री द्वारा अथवा एनीमेशन द्वारा कभी ऐसे भी क्षण आते हैं जब विषय विशेष अथवा स्थान को लक्ष्य बनाकर कैमरा टीम भेज दी जाती है और जब दृश्य कैमरे में बंद होकर स्टूडियो में आ जाता है। जब विषय विशेष अथवा स्थान को लक्ष्य बनाकर योग्य बनाया जाता है।

कैमरा टीम भेज दी जाती है और जब दृश्य कैमरे में बंद होकर स्टूडियो में आ जाता है तो उसे देखकर लेखक आवश्यकता अनुसार लेखन करता है और फिर उन एकत्रित दृश्यों को क्रमबद्ध करके प्रस्तुति, विषय अवधि, तथ्यों का संकलन अत्यंत गंभीर शोध की माँग करते हैं क्योंकि डाक्यूमेंट्री में सत्यता का तत्व अनिवार्य है। तथ्य एकत्रित करने के बाद उन्हें एक आलेख में उपस्थित किया।

शॉट का विवरण:

- १) विभिन्न फुटबॉल मैचों के दृश्य (पूर्व के फुटबाल मैच के विषय)
- २) ब्राजील के खिलाड़ी और उसके समर्थक इटली के खिलाड़ी और उसके समर्थक
- ३) फ्रांस का नगर जहाँ मैच होने वाली है।
- ४) ग्राउंड पर प्रैक्टिस करते खिलाड़ी

दृश्यबंधीकरण:

- १) फाइल से
- २) एक लॉगशॉट तथा एक मिडशॉट और एक मिडशॉट और उसके साथ एक क्लास रूम शॉट
- ३) लॉग शॉट स्टेडियम का दृश्य
- ४) लॉग शॉट मिड शॉट

समय:

- १) ३० सेकेंड
- २) १० सेकेंड
- ३) १० सेकेंड
- ४) ५ सेकेण्ड
- ५) ४ सेकेण्ड
- ६) ३ सेकेण्ड

- १) मैदानी खेलों में एक महत्वपूर्ण खेल है फुटबॉल यह ताकत का खेल है।
- २) यह खेल विश्वस्तर का लोकप्रिय खेल है ब्राजील, रोम, जर्मनी आदि का एक राष्ट्रीय खेल है।
- ३) इस वर्ष फुटबॉल विश्वकप आयोजित हो रहा है, जो फ्रांस में खेला जाएगा।

उदाहरणार्थ आपको फुटबॉल पर एक वृत्तचित्र बनाना है। इस वृत्तचित्र को बनाने के लिए अवधि को ध्यान में रखकर विभिन्न पहलुओं पर आपको विचार करना होगा। सबसे पहले फुटबॉल का महत्व, लोक प्रचलन का उल्लेख करने के लिए सामग्री जुटानी पड़ेगी, फुटबाल खेलने वाले राष्ट्रों, खिलाड़ियों का उल्लेख करना पड़ेगा प्रमुख समारोहों को गिनाना पड़ेगा इतनाही नहीं विषयानुकूल और समयानुकूल फुटबॉल बनाने की अनुक्रिया। बनाने की सामग्री, उसका बाजार, कारीगरों की स्थिती आदि का उल्लेख भी करना उचित होगा। इसके बाद पटकथा लेखक, कैमरामैन, अभिनेता, ध्वनि, व्यवस्थापक आदि की आवश्यकता नुसार संकेतों का उल्लेख करते हुए उल्लेख को पटकथा में परिवर्तित करना पड़ेगा।

१) लॉग शॉट:

यह शॉट अभिनय की प्रस्तुति में विशेष सहायक होता है। टीम के आगमन और गमन के समय इसका प्रयोग महत्वपूर्ण होता है। इसमें मानवाकृति दिखाई जाती है।

२) मिड शॉट:

यह किसी मानवाकृति के बैठने अथवा खड़े होने की स्थिती में कोहनी तक फ्रेम किया जाए तो यह शॉट मिड शॉट कहलाता है।

३) क्लास रूम शॉट:

इसे स्थापन शॉट भी कहा जाता है। यह वातावरण तथा कक्षा या कक्ष के उपकरण साज सज्जा आदि के साथ पात्रों के दृश्य संबंधों को स्थापित करता है।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि पटकथा लेखक को दूरदर्शन प्रणाली का ज्ञाता तथा कल्पनाशील होना अतिआवश्यक है। क्योंकि मस्तिष्क में दृश्यों की काल्पनिक संरचना करते हुए संबंधित व्यक्तियों के संकेत देने पड़ते हैं। जैसे चरित्र कैसा होगा। उसकी वेशभूषा, हाव-भाव आदि की जानकारी होगी। उसे कैमरामैन को संकेत देना होगा कि उसे कब क्लोसअप लेना है, कब बिग क्लोस अप लेना है, कब मिड शॉट लेना है, कब लॉग शॉट लेना है। यहाँ तक की अभिनेता से अपेक्षित कार्य व्यवहार आदि का संकेत भी पटकथा लेखक से अपेक्षित है। साथ ही ध्वनि व्यवस्थापक को कैसी ध्वनि देनी है किस समय शूटिंग करनी है कौन-कौन से दृश्य होंगे आदि संकेत करने होते हैं। पटकथा लेखक को यदि कोई विशेष जानकारी होतो भी सदस्यों को परिचित करा दें तो अच्छा होगा।

डाक्यूमेंट्री के प्रकार:

डाक्यूमेंट्री के विभिन्न रूप प्रचलन और तकनीक के आधार पर प्रचलित हैं।

१) सूचनात्मक डाक्यूमेंट्री (इन्फोरमेटिव):

इस प्रकार के वृत्तचित्रों का अधिक प्रचलन है। इसे तथ्यों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। किसी विषय पर आधारित तथ्यों को चुनकर और अग्रणी मानकर साक्ष्यों की सहायता से (सिपोटिंग) डेटा आगे बढ़ाया जाता है जैसे तथ्य रखे जाते हैं वैसे डाक्यूमेंट्री का प्रभाव लोगों पर पड़ता जाता है। इस प्रकार डाक्यूमेंट्री का उद्देश्य लोगों का मानसिक व्यायाम करने के साथ-साथ आत्मविश्वास को बढ़ाने वाला भी होता है।

२) कहानी डाक्यूमेंट्री (स्टोरी):

कहानी डाक्यूमेंट्री कथ्य प्रस्तुत करने की सबसे सक्षम विधा है इसी का प्रयोग फीचर फिल्मों में किया जाता है। इस विधा में एक चरित्र के माध्यम से कहानी को दर्शाया जाता है तथा सहायक चरित्रों तथा तथ्यों द्वारा विकसित किया जाता है। दर्शक इन चरित्रों को अपने से भिन्न नहीं मानते क्योंकि ये चरित्र काल्पनिक होते हुए भी वास्तविकता से भरे होते हैं। यह कल्पना अद्भुत विषयों पर बनाई जाती है।

३) न्यूज डाक्यूमेंट्री:

इस प्रकार की विधा द्वारा विशेष विषयों, नामों को गंभीरता और गहराई से दिखाया जाता है। इसमें विशेषज्ञ संबंधित कारणों से होनेवाले प्रभावों और घटनाओं को जैसे का तैसा प्रस्तुत किया जाता है।

४) यात्रा वृत्तांत डाक्यूमेंट्री:

इसमें तथ्य पहले से संग्रहित नहीं किए जाते बल्कि स्थान या लक्ष्य निर्धारित होने के पश्चात् विशेषज्ञ कैमरामैन आदि को लेकर निकल पड़ता है। निश्चित विषय के अनुकूल उसे जो भी सामग्री, दृश्य, घटनाएँ, साक्षात्कार आदि उपयोगी लगते हैं वह उन्हें संकल्पित करके स्टूडियो ले जाता है। जहाँ पटकथा लेखक संकलित सामग्री को देखकर वृत्तचित्र के लिए कमेंट्री लिख देते हैं। जैसे मान लीजिए आप एक गोताखोर हैं समुद्र के अंदर गहराई में जाकर गोताखोर को जो जीवन की जानकारी मिलेगी। उसे वह अपनी आँखों से देखेगा और कैमरे के माध्यम से उसे कैद कर लेगा। इसी प्रकार यात्रा उसमें आनेवाली कठिनाइयाँ दृश्य मौसम, स्थान, लोगों का चरित्र (यह सब वृत्तांत में आ जाएंगे) वहाँ का खानपान, निवासियों की बोली, भाषा आदि को चित्रों संगीतों 'एवं ध्वनियों' के माध्यम से दिखाई जाने वाली चित्रकथा इस विधा में आती है।

५) सामाजिक डाक्यूमेंट्री:

इसमें समाज में होने वाले उतार चढ़ाव एवं लोगों की मानसिकता दर्शाई जाती है। गहन विचार एवं यथार्थ पर विशेष ध्यान रखा जाता है। इस विधा के द्वारा लोगों की सहभागिता सामूहिक एवं राष्ट्रीय रूप में दिखाई जाती है। इतना ही नहीं सामाजिकों की विचारधारा एवं

सुख दुःख को तथ्यों के साथ कृत्रिम दृश्यों के द्वारा भी प्रस्तुत किया जाता है। जिसमें दर्शकों में मानवीय भावनाएँ, देशप्रेम, शिक्षा, जनआंदोलन जागरूकता आ सके ऐसे वृत्तचित्रों का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन हेतु उत्साहित करना होता है।

६) शोधपरक डॉक्यूमेंट्री:

(इन्वेस्टिगेटिव) इस श्रेणी की डॉक्यूमेंट्री का उद्देश्य किसी विषय वस्तु को लेकर उसकी खोज करना तथा अंतर्गत सच्चाई को उजागर करना तथा दर्शकों को सही गलत का अहसास कराना। कभी चरित्रों द्वारा अभिनय कराकर वास्तविक स्थिति को काल्पनिक ढंग से दर्शाया जाता है ताकि वही वातावरण प्रस्तुत किया जा सके।

७) ऐतिहासिक डॉक्यूमेंट्री:

इसमें तथ्यों को शत प्रतिशत ऐतिहासिक रूप में दिखाया जाता है। किसी भी बात को कृत्रिम पात्रों और काल्पनिक विशेषणों से नहीं दिखाया जाता ऐतिहासिक तथ्यों में व्यक्तित्व एवं सामाजिक चेतना और संस्कृति एवं सामाजिक आर्थिक घटनाओं को भी इसी संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता है।

रंगमंच नाटक और रेडियो नाटक में अंतर:

रंगमंच नाटक:

- १) रंगमंच नाटक प्रेक्षागृह हमें बैठे दर्शकों के सामने दिखाए जाने के लिए रचा जाता है।
- २) रंगमंच नाटक में कार्य संकलन, काल संकलन तथा स्थान संकलन को ध्यान में रखा जाता है।
- ३) रंगमंच नाटक की कथा को अंकों में कहा जाता है।
- ४) दृश्यों का परिवेश प्रस्तुत करने के लिए मंच सामग्री तथा सेट की आवश्यकता दृश्यों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए प्रकाश- वृत्तों तथा विशेष प्रकाश व्यवस्था का आयोजन करना पड़ता है।
- ५) पात्रों को उनकी शक्ल-सूरत तथा उनकी वेशभूषा से जाना जाता है।
- ६) पात्रों की संख्या अधिक होती है।

रेडियो नाटक:

- १) रेडियो नाटक, असंख्य एवं अदृश्य श्रोताओं को सुनाने के लिए लिखा जाता है।
- २) रेडियो नाटक, संकलन के बंधनों से मुक्त होता है।
- ३) रेडियो नाटक की कथा को दृश्यों में कहा जाता है।
- ४) परिवेश की स्थापना ध्वनि प्रभावों द्वारा संभव होती है।

- ५) दृश्यों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए संगीत / पार्श्व संगीत का प्रयोग होता है।
- ६) पात्रों को अभिनेता / अभिनेत्रियों के स्वर तथा बोलने के अंदाज से पहचाना जाता है।
- ७) पात्रों की संख्या कम होती है।

रेडियो नाटक के प्रकार:

रेडियो नाटक इस युग का नितान्त अभिनव आविष्कार है। रेडियों और रेडियो नाटक पश्चिम की देन है।

पश्चिम में रेडियो नाटक कुछ पहले से लिखे जा रहे हैं और प्रगतिशील देशों में इनकी नाट्यकला निर्धारित होती जा रही है। हमारे देश पर भी उन नाटकों का प्रभाव पड़ा है। मण्डन शिल्प के अनुसार रेडियो नाटक के भेद कुछ इस प्रकार किए जा सकते हैं:

१) रेडियो रूपक:

नाटक की यह एक ऐसी शैली है जिससे नाटक वैदिक काल से प्रारंभ करके आधुनिक काल तक के प्रसिद्ध सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक उथल-पुथल का रूप प्रदर्शित कर सकता है। वह संकलन - त्रय के बंधन को भंग कर सकता है और रंगमंच की स्वगत नाटक प्रणाली को पूर्ण स्वाभाविक बना सकता है। उस पर उनको अन्य दृश्यों का कोई बंधन नहीं रहता।

२) रेडियों फीचर:

प्रसिद्ध उपन्यासों को नाटक रूप में उपस्थित करके रसास्वादन करने की रेडियों की इस शैली को फीचर कहा जाता है। सर ए. टी. किलर काउच के हाथों रेडियो की यह शैली विकसित में रूपांतरित हुआ। रेडियों की यह शैली सूचनात्मक और प्रचारात्मक दोनों होती है। इसमें शुल्क विषय पर प्रकाश डालने के लिए उससे संबंधित बातों का नाट्य सा किया जाता है।

३) ध्वनि नाटक:

वाचिक अभिनय इसका आधार है। इसमें कथोपकथन की प्रधानता रहती है। इसे अन्धों का सिनेमा कहते हैं। विष्णु प्रभाकर का 'बीमार' इसका उपयुक्त उदाहरण है।

४) स्वेक्ति:

एक पात्रिय नाटक है। इसका रूप रंगमंच के एकांकी से भिन्न होता है। रंगमंच पर कथा सुसंबद्ध होनी चाहिए। इसका उदाहरण विष्णु प्रभाकर का सड़क है।

५) भाव नाट्य:

इसमें भावात्मक घटना एवं अनुभूति को स्वच्छन्द रीति से चित्रित किया जाता है। इसमें मानसिक चिंतन का सतत प्रदर्शन रहता है। विष्णु प्रभाकर के दो नाटक 'अर्द्धनारीश्वर' और 'शलभ और ज्योति' उत्तम भावनाट्य हैं।

६) ध्वनि गीतिरूपकः

इसका माध्यम कविता है। आधुनिक आन्तरिक संघर्ष की प्रधानता रहती है। कार्य की अपेक्षा भाव का महत्त्व अधिक होता है। वृद्ध कथा को संक्षिप्त करने के लिए वाचक वाचिका का प्रयोग होता है। भगवती चरण वर्मा का 'कर्ण' सुमित्रा नंदन पंत का 'शिल्पी शुभ्रपुरुष' इसके उदाहरण हैं।

७) रिपोर्ताजः

यह नाटक की अभिनव पद्धति है जो विगत युद्धकाल में अविष्कृत एवं विकसित हुई। द्वितीय महायुद्ध में महत्त्वपूर्ण घटनाओं, उनके कारणों और परिणामों को समीप से जानने के लिए जनता क्षण-क्षण व्यग्र क्योंकि उसके परिणामों से कोई बचा नहीं था।

८) जननाटकः

रेडियो द्वारा जननाटक को प्रोत्साहन मिला है। ग्रामीण जनता के विनोद के लिए भी नाटक प्रस्तुत किये जाते हैं। वेही जननाटक है, जैसे रास, स्वांग, ढोलामारू, निलालेद, नौरंगी।

९) व्यंग नाटकः

इस नाटक में वाग्वैदग्ध्य कटाक्ष एवं चुभेत व्यंग्य द्वारा समाज की कुरीतियों कुप्रवृत्तियों और आडंबरमय विधि विधानों का उपहास किया जाता है।

टेलीविजन के लिए लेखन

प्रस्तावना:

अमेरिका के डब्ल्यू. ई. सायर और फ्रांस के मैरिस लैंब ने सन् १८८० में एक सुझाव दिया कि एक चित्र को बहुत छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटकर एक टुकड़े को प्रेषित किया जा सकता है। सन् १८९७ में कैथोड रे ट्यूब को टेलीविजन निर्माण में प्रयोग किया जा सकता है। आखिर २६ जनवरी, १९२६ को जॉन लोगी बेअर्ड ने विश्व का सफल टेलीविजन प्रदर्शन ब्रिटेन में करके दिखाया।

भारत में १५ सितम्बर, १८५९ को सबसे पहले दिल्ली में टेलीविजन सेवा का आरंभ हुआ। इसका उद्घाटक तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने किया। आरंभ में इसका प्रसारण २४ किलोमीटर की परिधि में केवल दिल्ली के इर्द-गिर्द ३० गाँव तक सीमित था और इसका उद्देश्य केवल जनसंचार द्वारा सामाजिक शिक्षा देना था। सन् १९७४ में अमेरिका द्वारा छोड़े गए उपग्रह की मदद से इसका विस्तार हुआ। टी.वी. प्रसारण को आरंभ में आकाशवाणी की सेवाओं के अधीन में आकाशवाणी की सेवाओं के अधीन रखा गया, किंतु एक अप्रैल, १९७६ को दूरदर्शन के नाम से एक नया संगठन स्थापित किया गया १५ अगस्त, १९८२ से भारतीय दूरदर्शन पर विधिवत् रंगीन प्रसारण भी शुरू हुआ नवम्बर, १९८२ में दिल्ली में हुए एशियाई खेलों का सफल अर्जित की। सन् १९८७ से दूरदर्शन प्रातःकालीन प्रसारण भी शुरू हुआ। आज देश में दूरदर्शन ट्रांसमीटरों की संख्या २०० से भी अधिक है।

टेलीविजन लेखन:

टेलीविजन ग्रीक भाषा के शब्द टेली (दूरी) और लैटिन भाषा में विजन (मैं देखता हूँ) को मिलाकर बन है। हजारों मील की दूरी पर क्या घटित हो रहा है उसे हम पर्दे पर देख सकते हैं, उसके प्रत्यक्षदर्शी हो सकते हैं। अलबत्ता हमें टेलीविजन के पर्दे पर ही दिखाई देता है, जो कैमरा दिखाना चाहता है। घटनाओं और समाचारों के अलावा अनेक प्रकार के कार्यक्रम टेलीविजन पर आते हैं- नाटक, धारावाहिक, वृत्तचित्र, संगीत कार्यक्रम, फिल्म, भेंटवार्ताएं प्रश्नोत्तर और पहेलियाँ आदि टेलीविजन, कैमरा, ट्रांसमीटर, और कमरे में रखे टेलीविजन यंत्र की सहायता से संप्रेषित दृश्य या कार्यक्रम स्टूडियो या घटनास्थल से हम तक पहुँचते हैं। जिन यंत्रों, उपकरणों और उपस्करों की सहायता से कार्यक्रम संप्रेषण संभव होता है, उसे हार्डवेयर कहते हैं, जैसे- कैमरा, प्रकाशीय उपस्कर, माइक्रोफोन, कनसोल, स्पेशल इफेक्ट जेनरेटर आदि।

जो दृश्य, संदेश कार्यक्रम संप्रेषित किए जाते हैं उन्हें साफ्टवेयर की संज्ञा दी जाती है। यह बौद्धि का पक्ष है। उद्देश्यपरक संप्रेषित कार्यक्रमों का सृजनात्मक पहलू होता है। लेखक, निर्देशक, संगीतकार, संपादक आदि के लेखक, निर्देशक, संगीतकार, संपादक आदि के सहयोग से कार्यक्रमों की प्रस्तुति होती है। जैसे मनोरंजन के लिए सामाजिक धारावाहिक

संगीत, कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं, फिल्मों का प्रसारण, ज्ञानवर्धन के लिए डिस्कवरी चैनल, खेलकूद कार्यक्रमों का प्रसारण आदि। दृश्यं यद्यपि माध्यम होने के बावजूद टेलीविजन में शब्द संयोजन और लेखन का महत्त्व कम नहीं है और कुछ नहीं तो कार्यक्रम की अवधारणा, उद्घोषणा, कैमरामैन और निर्देशक के लिए निर्देश ये सब लिपिबद्ध किए ही जाते हैं।

वृत्तचित्र, धारावाहिक, नाटक आदि के लिए निर्देश आलेख अनिवार्य होते हैं। कथानक, संवाद, स्क्रीन प्ले और शूटिंग स्क्रिप्ट के लिए अलग-अलग व्यक्ति अनुबंधित किए जा सकते हैं। छायांकन और संपादन के दौरान पटकथा में अवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहते हैं, इसलिए इस माध्यम में लेखन समूह-लेखक का रूप ग्रहण कर लेता है। लेखक को माध्यम की तकनीकी की बारीकियों भाषागत आवश्यकताओं और विशेषताओं की जानकारी होनी चाहिए।

टेलीविजन समाचार अर्थ एवं स्वरूप:

टेलीविजन किसी समाचार, घटना, दृश्य या प्रसंग का एक विवरणात्मक चित्र है। सी.वी.एस. हैडबुक में टेलीविजन समाचार की समीक्षा इन शब्दों में की गई है "यह समाचारों का चित्रात्मक प्रस्तुतीकरण है, - जिसमें तथ्यात्मक संक्षिप्त और वास्तविक समाचारों को प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता है।" दूरदर्शन समाचारों का मुख्य स्रोत संवाद समितियाँ हैं। इसके अतिरिक्त दूरदर्शन ऐसी समितियों से भी समाचार प्राप्त करता है, जो केवल विजुअल अर्थात् चित्रात्मकता समाचार प्रेषित करती है। सरकारी विभाग और गैर सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थान भी अपनी ओर से चित्र तथा शब्द के रूप में अपने समाचार उपलब्ध कराते हैं। विभिन्न स्थानों पर भी दूरदर्शन के अपने संवाददाता नियुक्त हैं। दूरदर्शन समाचार एवं घटनाओं के कवरेज के लिए भी संवाददाता नियुक्त हैं। दूरदर्शन समाचार एवं घटनाओं के कवरेज के लिए भी संवाददाता भेजते हैं। दूरदर्शन समाचार संपादक इन सभी स्रोतों से प्राप्त सामग्री से ही बुलेटिन विशेष की आवश्यकता, समाचार के महत्त्व तथा दूरदर्शन की नीति एवं निर्देशनों को ध्यान में रखते हुए समाचारों का चयन एवं संपादन करते हैं।

टेलीविजन समाचार लेखन:

टेलीविजन समाचार लेखन का क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह टीम वर्क है जिसमें कैमरामैन, संवाददाता, प्रस्तुतकर्ता, तकनीकी कर्मचारी, संवाददाता, प्रस्तुतकर्ता, तकनीकी कर्मचारी, संपादक आदि शामिल हैं। इन सबके मध्य समन्वय आवश्यक है। वरिष्ठ जनसंचारकर्मी सुभाष सेतिया ने टेलीविजन की संरचना में छह तत्वों को अनिवार्य माना है, ये हैं -

- १) घटनाक्रम
- २) चित्रात्मकता
- ३) संक्षिप्तता
- ४) संभाषणशीलता
- ५) रिपोर्ट एवं
- ६) पूरक कॉपी

रेडियो समाचार लेखन और टेलीविजन समाचार लेखन का तरीका लगभग एक सा है, फिर भी टेलीविजन समाचार लेखन के समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

- १) टेलीविजन लेखन संक्षिप्त तथा पठनीय हो, जिससे वह बातचीत की तरह लगे।
 - २) टी.वी. समाचार सत्यता पर आधारित हो। समाचार के तथ्य और शब्द इस प्रकार प्रस्तुत किए जाएँ, जिससे इन्हें आसानी से समझा जा सके।
 - ३) टी.वी. के चित्र पाठकों को आकर्षित करने चाहिए न कि शब्द। चित्र स्वयं बोले तो किसी दूसरे को अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए कहा गया है (The pictures draws attention, words must be subordinated. Ideally words supplementary, ex- plaining, blending with the mood of the film and rich writing is almost certain to conflict with the stark fact to the picture, which is at the centre of the viwer's attention.) (Mass Media)
 - ४) टेलीविजन समाचार लेखक को टी.वी. समाचार के चित्रों के साथ सांमजस्य बैठाना होता है। चार्ट, नक्शों और चल-अचल चित्रों के साथ पढ़ा जाने वाला आलेख तैयार करना होता है। यह प्रक्रिया वाइस ओवर (V.O.) कहलाती है। इसमें शब्द और चित्र एक दूसरे के पूरक होते हैं।
 - ५) टेलीविजन समाचार लेखक को चित्र द्वारा कही गई कहानी कहने की कला आनी चाहिए। चित्र के मौन को लिखना, शब्दों को लिखने के समान ही महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से जब चलचित्र स्वयं पूरा समाचार बताने में सक्षम हो
 - ६) समाचार लेखन के समय शब्दों और चित्रों के मध्य आपसी तालमेल के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। आलेख ऐसा हो जो समाचार में और शक्ति पैदा करे उसे समझा सके और ऐसे स्थानों पर रुके जहाँ चित्रों को शब्दों की आवश्यकता नहीं है। चित्र और शब्द एक-दूसरे से मेल खानेवाले होने चाहिए।
- चित्र किसी अन्य वस्तु का है और समाचार किसी अलग का इस प्रकार की स्थिती बहुत ही हास्यास्पद होती है।
- ७) समाचार आँखों से पढ़ा जाता है, रेडियो कानों से सुना जाता है, लेकिन टेलीविजन में आँख और कान दोनों का ही उपयोग होता है, अतः टेलीविजन समाचार आँख और कान दोनों के लिए ही बनाए जाते हैं।
 - ८) टेलीविजन के समाचार के प्रत्येक वाक्य में एक ही विचार या चित्र होना चाहिए। प्रत्येक वाक्य संक्षिप्त होना चाहिए। आँकड़ों और तथ्यों को एक साथ नहीं दिया जाना चाहिए। आँकड़ें जितने कम हों उतना ही अच्छा है।
 - ९) समाचार में कोई भी बात अस्पष्ट नहीं होनी चाहिए यदि कोई शब्द काटा जाए तो उसे पूरी तरह ही काट दिया जाय। अगर शब्द का वाक्य विन्यास या रचना सुधारना हो तो पूरा शब्द ही दुबारा लिखा जाना चाहिए।

विडियो प्रोम्पटर का उपयोग किया जा रहा हो तो पृष्ठ के मध्य में बाउंड्री लाइनों के मध्य समाचार लिखे प्रत्येक समाचार पर क्रम संख्या लिखी जानी चाहिए और उसी क्रम में पृष्ठ रखे जाने चाहिए। प्रत्येक समाचार अलग-अलग पृष्ठ पर लिखना चाहिए। यदि समाचार एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ पर ले जाना हो तो पृष्ठ के नीचे इसका संकेत होना चाहिए, अगर दूसरे पृष्ठ की आवश्यकता हो तो पहले पृष्ठ के आखिरी वाक्य को उसी पृष्ठ का पूरा किया जाना जरूरी है। संभव हो तो पूरा पैरा भी पूर्ण करना चाहिए। समाचार पूरा करने के लिए एक ही पंक्ति की और आवश्यकता हो तो उसके लिए दूसरा पृष्ठ नहीं लेकर वह पंक्ति उसी पृष्ठ के अंत में लिख दी जाए।

१०. टेलीविजन समाचार की भाषा में ऐसा कोई शब्द न हो जिससे किसी की भावना को ठेस पहुँचे, अतः भाषा और शब्द का चयन सोच-समझकर करना चाहिए।
११. समाचार लेखक को यह जानना आवश्यक है कि समाचार की फिल्म कितने समय तक चलेगी जब उसे इस बात का पता हो चला है कि कितने सेंटीमीटर फिल्म को चलने के लिए कितना समय लगता है उतनी लंबी फिल्म में कितने शब्दों की आवश्यकता है तो वह सरलता से उसका आलेख तैयार कर सकता है।
१२. टेलीविजन समाचार को चित्रात्मक बनाने के लिए फोटो. सी. जी. (कैरेक्टर जेनेरेशन) मानचित्र, ग्राफिक्स, लोगो (प्रतीक चिन्ह), वी. सी. आर का प्रयोग किया जा सकता है। इस तकनीक से समाचार के महत्वपूर्ण अंश विशेष रूप से संख्याओं एवं आँकड़ों को स्क्रीन पर सुपर किया जाता है।

टेलीविजन नाटक लेखन:

नाटक नाटक होता है, चाहे वह मंच का नाटक हो, फिल्म का हो टी.वी. का हो अथवा रेडियो का हो। परिभाषा के स्तर पर नाटक मूलतः एक ही है। विभिन्न माध्यमों की तकनीकी आवश्यकताओं के आधार पर प्रस्तुतीकरण की विविधता को ध्यान में रखते हुए हम उनमें भेद कर सकते हैं। इसी आधार पर हमें टी.वी. नाटक को अन्य स्वरूपों से अलग करना होगा। वर्तमान में नाटक के जिन चार प्रकारों तथा फिल्म, टी.वी. रंगमंच और रेडियो से हम परिचित हैं, उनमें रेडियो नाटक को छोड़कर और संवादों का माध्यम है। शेष तीनों रूप ध्वनि तक दृश्य के मिश्रित माध्यम हैं।

दूरदर्शन फिल्म नहीं है, लेकिन फिल्म की ही भाँति इसमें भी कैमरे की प्रयोग होता है और छायाकृतियाँ स्क्रीन पर दिखाई देती हैं। दूरदर्शन रंगमंच भी नहीं है लेकिन रंगमंच का ही भाँति किसी नाटक की निरन्तरता उसमें बनी रहती है। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि सिनेमा और रंगमंच के कुछ महत्वपूर्ण तत्वों के सम्मिलन से नाटक के इस तीसरे स्वरूप का जन्म हुआ है।

टी. वी. नाटक मुख्य रूप से स्टूडियो में वही के साधनों से तैयार किया जाता है, जबकि फिल्म के लिए यह बन्दिश कतई नहीं है। फिल्म निर्माण में उत्तम तौर से और मुख्य रूप से एक ही कैमरे का प्रयोग होता है, जबकि टी.वी. में कम से कम दो या तीन या आवश्यकता अनुसार और सुविधा होने पर पाँच से सात कैमरे तक एक साथ इस्तेमाल किये जाते हैं। फिल्म की शूटिंग और प्रोसेसिंग के बाद सम्पादक उसे काटकर जोड़कर विभिन्न शॉट्स का

क्रम बनाकर फिल्म को गति निरन्तरता और अर्थ प्रदान करता है। जबकि टी.वी. नाटक का सम्पादन प्रोड्यूसर के निर्देश पर प्रॉडक्शन पैनल से लगातार किया जाता रहता है जिसे "विजन मिक्सिंग" कहते हैं। टी. वी. नाटक प्रसारण या रिकार्डिंग के समय निर्देशक - कलाकारों या कैमरा मैनों के साथ सैट पर नहीं रहता, जैसा कि फिल्म की शूटिंग में होता है बल्कि वह प्रॉडक्शन पैनल के सभी कैमरों का संचालन, सम्पादन, ध्वनि प्रभाव या संगीत के प्रयोग के लिए लगातार निर्देश देता रहता है क्योंकि टी.वी. नाटक में यह सभी कार्य एक साथ चलते हैं।

अब टी. वी. नाटक की प्रक्रिया पर विचार करना है। जैसा कि सुविदित है कि नाटक चाहे टी.वी. का हो या मंच का या फिल्म अथवा रेडियों का, सबका मूल आधार एक ही है कहानी। केवल माध्यम के - अनुरूप कहानी कहने का तरीका अलग अलग होता है और कहानी कहने का अंदाज ही उसे रोचक - या ऊबाऊ बना सकता है।

कहानी क्या है ? यह प्रश्न उठाकर हम कोई साहित्यिक बहस नहीं छेड़ना चाहते। नाटक लिखने के लिए या नाटक द्वारा कोई विचार या विषय सम्प्रेषित करने के लिए हम केवल एक विषय या थीम का चुनाव करते हैं। यह विषय या थीम कहाँ से आती है ?

नाटक के लिए विषयवस्तु का चुनाव इसी आधार पर करना आवश्यक है कि वह सर्व ग्राह्य हो। स्वान्तः सुरवाय या आत्मतुष्टि के लिए नाटक लिखने को मैं अहमियम नहीं देता। नाटक वह जो खेला जाय, और जब खेला जाये तो देखा भी जाये, यानी नाटककार, अपने स्तर पर ही नाटक को दर्शक से जोड़ने की बात लेकर चले। टी.वी. नाटक की बात करते हुए यह जिक्र करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि टी.वी. नाटक के दर्शकों की संख्या बहुत बड़ी है। स्थानिक प्रसारण से दिखाये जाने वाले नाटक की ही दर्शक संख्या अब प्रदेश व्यापी और लगभग ३०-४० लाख तक पहुँचती है।

विषय वस्तु के साथ दूसरे चरण में पात्रों का समावेश है। यों तो किसी भी कथावस्तु या घटना के साथ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में किसी न किसी मनुष्य का हाथ रहता ही है। इस प्रकार आरंभिक मात्र हमें साथ ही मिल जातें हैं और इस प्रकार एक कहानी तो बन ही जाती है, जो सुनाई जा सके, लेकिन वह आमतौर पर एक सपाट सडक के समान होती है, जिस पर सहजता से जा सकता है, लेकिन याद रखिये- सहज चलना नाटक नहीं है। दर्शक की शारीरिक और मानसिक तमाशबीनी के लिए वहाँ कुछ भी नहीं है। इसलिए इस सपाट समतल सडक पर कुछ गड्डे खोदने की जरूरत है, ताकि चलने वाले गिरे तो देखने वालों को आनन्द आये। यह करने के लिए कथानक को पात्रों समेत किसी समस्या से जोड़ दीजिये।

कथानक के विकास के साथ टी. वी. नाटककार की दूसरी बड़ी जिम्मेदारी बड़ी है - विजुअलाइजेशन। यहाँ पिता श्री से प्राप्त एक सूत्र बताना चाहूँगा मत भूलो तुम स्क्रीन के लिए लिख रहे हो और कान - आँखों से चार अंगुल पीछे है।

'अगर सारा नाटक संवादों द्वारा ही सुना और समझा जा सकता है तो उसे देखने की क्या जरूरत है। और वह रेडियो नाटक ही होकर रह जाता है।'

"Write complex magnified characters and simple plots, because the characters make the story interesting and Dramatic not the plot."

एक अच्छी तरह सोच समझकर लिखा गया नाटक न केवल अभिनेताओं को चरित्र जीने और अभिनय क्षमता दिखाने का अवसर देता है बल्कि निर्देशक, कैमरा मैन तथा नाट्य शिल्प से जुड़े हुए सभी लोगों को नाटक सफल बनाने की प्रेरणा एवं शक्ति देता है। अगर नाट्यालेख खराब है तो ये सारे विशेषज्ञ मिलकर भी उसे असफल होने से नहीं रोक सकते।

टेलीविजन धारावाहिक लेखन:

प्रस्तावना:

टेलीविजन प्रसारणों में 'धारावाहिक' (serial) एक ऐसी विधा है, जिसके दर्शकों की संख्या कभी भी घटित नहीं है। धारावाहिक का विषय चाहे जो भी हो लेकिन कमोबेश सभी धारावाहिकों को दर्शक मिलते रहे हैं। दूरदर्शन ने धारावाहिकों को शुरूआती दौर में देश के लगभग सुप्रसिद्ध साहित्यकारों, लेखकों की कृतियों पर आधारित धारावाहिकों का प्रसारण किया था। लेकिन 'मैला आँचल', 'श्रीकांत', 'भारत एक खोज' को उतना बड़ा दर्शक वर्ग नहीं मिला जितना 'तारा' को मिला था। ७ जुलाई, १९८४ को दूरदर्शन धारावाहिक 'हमलोग' प्रारंभ हुआ। इसके लेखक मनोहर श्याम जोशी और निर्देशक पी. कुमार वासुदेव थे। 'हमलोग' को आम दर्शकों ने विशेष रूप से पसंद किया और यह लोकप्रिय हुआ। हमलोग के प्रसारण ने भारतीय लेखकों को एक नई राह दिखाई। धीरे-धीरे धारावाहिक लेखकों की माँग होने लगी और उनकी संख्या बढ़ने लगी। 'हमलोग' से जहाँ 'सोप ओपेरा' शब्द का प्रचलन हुआ तो 'ये जो है जिन्दगी', 'कक्काजी कहिन' के साथ 'सिरकाम' शब्द का प्रचलन हुआ। 'करमचंद' के प्रसारण ने जासूसी धारावाहिक का मार्ग प्रशस्त किया।

'तमस' और 'मालगुडी डेज' ने भी धारावाहिकों की श्रृंखला में सफलता प्राप्त की। उच्च और उच्च मध्यवर्ग समाज पर आधारित 'स्वाभिमान' के दूरदर्शन पर प्रसारण ने एक नया रास्ता दिखाया। सन् १९९७ में दूरदर्शन पर 'हिंदुस्तानी', 'युग', 'मैं दिल्ली हूँ' जैसे धारावाहिक प्रसारित हुए। सबसे महँगा धारावाहिक 'गाथा' स्टार प्लस ने प्रसारित किया जिसके लेखक मनोहर श्याम जोशी और निर्देशक थे रमेश सिप्पी। फिर बीच एक दौर आया 'रामायण' और 'महाभारत' के बाद कुछ पौराणिक युग का 'श्रीकृष्ण' 'ॐ नमः शिवाय' पौराणिक धारावाहिकों ने विशेष सफलता प्राप्त की। इसी बीच 'चाणक्य' के बाद ऐतिहासिक धारावाहिकों का दौर शुरू हुआ। 'टीपू सुलतान', 'अकबर द ग्रेट', 'झाँसी की रानी' आदि धारावाहिकों ने लोकप्रियता अर्जित की। चंद्रकांता से ऐयारी तिलस्मी धारावाहिक शुरू हुआ। 'विराट', 'बेताल' आदि धारावाहिकों ने इस धारा को अपनाया।

स्टार चैनल के प्रसिद्ध धारावाहिक 'कहानी घर घर की', 'कसौटी जिन्दगी की', 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी', 'देश में निकला होगा चाँद', 'सारा आकाश', 'कहीं किसी रोज', 'कुमकुम', 'भाभी', 'सोन परी' विशेष लोकप्रिय रहे हैं।

टेलीविजन पटकथा लेखन:

टेलीविजन पटकथा लेखन (टेलीविजन धारावाहिक लेखक) में कुछ मौलिक तत्वों को ध्यान में रखना जरूरी है। इन मौलिक तत्वों का प्रभाव धारावाहिक लेखन की गुणवत्ता पर भी पड़ता है। ये मौलिक तत्व हैं।

१. आइडिया / विचार
२. विषयवस्तु,
३. कांसेप्ट नोट,
४. कथासार,
५. स्थान एवं चरित्र चित्रण,
६. ट्रीटमेंट,
७. संवाद

पटकथा को अंग्रेजी में 'स्क्रीन प्ले' (Screen Play) कहा जाता है।

१. आइडिया / विचार:

टेलीविजन पटकथा लेखन में सबसे पहला तत्व है आइडिया (Idea) या विचार टेलीविजन या फिल्म के लिए आपने अगर कुछ लिखा है तो उसका कोई मूल विचार होना चाहिए। जब आप निर्माता से मिलते हैं तो उसे आपका आइडिया या विचार एक मिनट में बताना होता है; क्योंकि निर्माता के पास इतना समय नहीं होता है कि वह हर लेखक की पूरी कहानी सुने। इसलिए आप उसे आइडिया बताते हैं और उसे वह आइडिया पसंद आता है तो वह आपकी कहानी सुनने में दिलचस्पी दिखलाएगा अन्यथा यह कह देगा कि आपका यह आइडिया मेरे किसी काम का नहीं।

बतौर लेखक आप इस बात का ध्यान रखें कि आपके आइडिया में कुछ नयापन हो और बाजार की शर्तों के मुताबिक भी हो। अब सवाल यह उठता है कि विचार कहाँ से मिलें ? तो साहब विचार तो आपके आसपास ही होते हैं आप जो पढ़ते हैं, देखते हैं, जो सुनते हैं आपकी कहानियाँ उसी से पैदा होती हैं। अशोक चक्रधर ने 'आइडिया विचार' पर लिखा है "पटकथाकार का जमीन से जुड़ा होना और उसका व्यापक अनुभव ज्ञान से संपन्न होना जरूरी है। जो व्यक्ति जितने लोगों से मिला होगा और जीवन में सामाजिक संबंधों का जितना गहरा अनुभव उसे होगा और उन अनुभवों का सूक्ष्म विश्लेषण वह कर सकता होगा उतना ही बड़ा पटकथाकार वह बन सकता है।"

२. विषयवस्तु:

वैसे ही जब से 'तारा', 'शांति', 'खानदान' और 'सास भी कभी बहु थी' जैसे धारावाहिकों ने रखेले प्रथा की वकालत की है। आज दूरदर्शन या निजी चैनलों द्वारा प्रसारित धारावाहिकों की कथा वस्तु एक जैसी ही नजर आती है। इसलिए यथार्थवादी या भारतीय समाज की

वास्तविक समस्याओं से जुड़े धारावाहिकों का एकदम आकाल सा दिखाई पड़ता है। यदि आइडिया या विचार के बाद विषय (Plot) की दृष्टि से देखे तो ८० प्रतिशत धारावाहिकों के विषय स्त्री पुरुष के अवैध सम्बन्धों को सामाजिक स्वीकृति दिलाने के क्रम में नए मूल्यों की स्थापना है। धारावाहिक निर्माता इस तथ्य से परिचित हो गए हैं कि वर्जित मूल्यों के प्रदर्शन से दर्शकों की दिलचस्पी ज्यादा ही बढ़ जाती है। इसलिये वे अपने धारावाहिकों में ऐसे गंभीर विषय को नहीं लाते। इनके साथ-साथ हास्य धारावाहिकों को देखें तो वहाँ भी समाज के आपसी रिश्तों के मधुर संबंधों के बावजूद फूहड़ किया जाता है, जिसमें सास-बहु ससुर - दामाद या पति-पत्नि जैसे रिश्ते होते हैं।

३. कांसेप्ट नोट:

विचार और विचार तय कर लेने के बाद लेखक एक छोटी-सी कथा का स्वरूप देखकर उसकी संभावनाओं पर विचार करता है। जिसे 'कांसेप्ट नोट' (concept Note) भी कह सकते हैं। यह धारावाहिक की संभावनाओं की एक कुंजी की तरह होता है। तो या यह कहा जाए, कि इस छोटे से नोट में १३ से लेकर ५०४ कड़ियों की लम्बी श्रृंखला का मंच होता है तो अत्युक्ति नहीं होगी। आज की भाग-दौड़ में मूल मंत्र सुनने के अलावा इसकी व्याख्या सुनने की जरूरत नहीं है। इस मंत्र - नुमा नोट से लेखक के मस्तिष्क में धारावाहिक की स्पष्ट रूपरेखा का परिचय भी मिल जाता है। जैसे पूरे हांडी के चावल के उबलने का अंदाजा दो-चार दानों को देखकर हो जाता है वैसे ही लेखक की एक मिनट की कहानी या वन लाइन स्टोरी बड़ी काम आती है।

४. कथासार:

इस 'वन लाइन स्टोरी' को जब दूसरे रूप में रूपांतरित करते हैं तब वह कथासार (Short Story) का रूप ले लेता है। इसमें धारावाहिक बनने वाली कथा का 'आदि, मध्य एवं अंत' जिसे क्लाइमेक्स कहते हैं, उसका संकेत होता है। इस कथासार में जहाँ धारावाहिकों के मुख्य पात्रों से परिचय होता है, वहाँ इसके तकनीक का स्वरूप भी सामने आता है। जो लगभग तीन स्तरों पर विभाजित किया जाता है। इसमें धारावाहिक लेखक के तीन स्वरूप के दर्शन होते हैं।

१. कहानी

२. आलेख

३. संवाद।

पहला स्वरूप कहानी का है, दूसरा है आलेख, इसे पटकथा भी कहते हैं, किंतु पटकथा शब्द का अर्थ बड़ा परदा है और यह सीधे फिल्म से उठा लिया गया है, जबकि टी.वी. धारावाहिकों का कैमरा एंगल फिल्म की तरह बहुआयामी नहीं होता है। इसलिए पटकथा का कोई मतलब नहीं रह जाता, जबकि आलेख का विस्तार व्यापक है चाहे तो इसके संवाद कैमरा को एक फ्रेम में फिक्स्ड करके बोले जाएँ, जबकि पटकथा कैमरे एवं संवाद के बीच तालमेल और उसके आपसी संबंधों के मद्दे नजर लिखी जाती है।

कथासार का तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष है संवाद जैसा कहा गया है कि जैसे इसकी पटकथा कैमरे को ध्यान में रखकर नहीं लिखी जाती वैसे ही इसके संवाद भी स्वतंत्र रूप से नाटकीयता के साथ गढ़े जाते हैं। स्वतंत्र रूप से नाटकीयता के साथ गढ़े जाते हैं।

५. स्थान एवं चरित्र चित्रण:

धारावाहिकों का स्थान, चरित्र, (Place and Character) और कैमरों का मूवमेंट निश्चित होता है। इसलिए आप देखेंगे कि फिल्म की शूटिंग में जितना खर्च और अन्य औपचारिकताओं के संपन्न होने में जितना समय लगता है उससे कहीं कम समय में एक धारावाहिक, जो घंटों, में समाप्त होता है, रिकार्ड हो जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहें कि एक धारावाहिक की रिकार्डिंग पूरे एक दिन में २-३ एपिसोड, जिसका आउटपुट एक घंटे से डेढ़ घंटे होता है, आसानी से निकल आता है, जबकि मात्र- दो सवा दो घंटे की फिल्म शूटिंग में लगभग पूरे ३६५ दिन तो लग ही जाते हैं। गरज यह कि यदि फिल्म शूटिंग के हिसाब धारावाहिकों को रिकार्डिंग में कथा, पटकथा एवं संवाद की बारीकियों पर ध्यान दिया जाए तो पूरे दिन भर में शायद ही एकाध एपिसोड की रिकार्डिंग संभव हो सके।

मनोहर श्याम जोशी का मत है कि 'चरित्र चित्रण' के लिए हमें कहानी के अनुसार सभी प्रमुख एवं पात्रों का "बायोडाटा" पात्रों के बारे में एक-एक छोटी जानकारी लिख लें। इसके अतिरिक्त लेखक का अपनी कहानी में कोई ऐसा प्वाइंट जरूर रखना चाहिए जिसके इर्द-गिर्द उसके पात्रों की इच्छाएँ टकराएँ। कहानी में नायक जितना सशक्त होना चाहिए। आपके चरित्र में कुछ ऐसी इच्छाएँ भी होनी चाहिए जिनके वशीभूत होकर वह कार्य करे। इसी तरह कई तरह के पात्र या चरित्र होने चाहिए।

६. ट्रीटमेंट:

ट्रीटमेंट (Treatment) का मतलब है दृश्यानुसार कथा। इसे हॉलीवुड की भाषा में 'स्टेप बाय स्टेप ट्रीटमेंट' भी कहा जाता है। किंतु आप देखेंगे कि धारावाहिक चाहे किसी भी देश का या किसी भी भाषा का हो, दृश्य नहीं बदलते। पात्रों का आना-जाना बदलता रहता है। 'यस प्राइम मिनिस्टर' या 'हियर इज लूसी' या भारतीय धारावाहिक को ले लें आमतौर पर कैमरा कलाकारों एवं उनके संवाद अदायगी पर टिका रहता है अनावश्यक रूप में मूवमेंट नहीं करता। धारावाहिकों की रिकार्डिंग इधर किसी विषय को लेकर डाक्यूमेन्ट्री या अन्य दूसरे कार्यक्रमों के लिए संभव है कि आपको ट्रीटमेंट लिखने की जरूरत पड़े, किंतु धारावाहिकों तो कलाकारों के मूवमेंट इतने नाटकीय एवं स्वतः स्फूर्त होते हैं कि ट्रीटमेंट एक फैशनेबल शब्द जैसा लगता है।

फिल्म या टेलीविजन जैसे दृश्य माध्यमों के लिए आइडिया, विचार के अनुरूप लिखी गई कहानी महत्वपूर्ण नहीं मानी जाती है क्योंकि हर कहानी एक जैसी होती है। दृश्य माध्यम के लिए महत्वपूर्ण होता है। ट्रीटमेंट में एक प्रकार से पात्रों, कहानी की घटनाओं उसके संवादों की झलक देनी पड़ती है। ट्रीटमेंट से ही निर्माता निर्देशक यह समझ लेते हैं, कि आपकी कहानी में कितना दम है और आपके लेखक के रूप में उसकी पहचान भी होती है। इसलिए ट्रीटमेंट नोट का दमदार होना अनावश्यक है। आमतौर पर १०-१५ पेजों का ट्रीटमेंट नोट आदर्श माना जाता है। ट्रीटमेंट नोट के साथ एपिसोड के आधार पर कहानी का विभाजन भी

ट्रीटमेंट का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। इसे हालीवुड में 'वन लाइनर' कहा जाता है। 'वन लाइनर' यानी एक पंक्ति में दृश्य कहानी कहना।

७. संवाद:

संवाद लेखन (Dialogue) के बारे में यह कहा जाता है कि अच्छा संवाद वह है जो कि वह बताए जो आपके चरित्र में नजर नहीं आ रहा हो। ध्यान रखे कि आप कोई उपन्यास, कहानी या नाटक नहीं लिख रहे हैं जहाँ की अपने पात्र की ज्यादातर जानकारी आपको अपने संवादों के माध्यम से दे देनी होती है। इसलिए धारावाहिक की गति को बनाए रखने के लिए छोटे से छोटे संवाद लिखे जाने चाहिए। याद किजिए 'स्वाभिमान' के पहले ढाई और एपिसोड इसलिए बहुत लोकप्रिय हुए, क्योंकि उनकी गति बहुत तेज थी।

हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृतलाल नागर का मत है कि भाषा पढ़कर नहीं सुनकर आती है। इसलिए जब कभी आप लोगों को बातचीत करते देखे तो उनकी भाषा को ध्यान में रखिए और सुनिए। जितना आप लोगों को सुनेंगे, अलग-अलग वर्ग के लोगों को सुनेंगे, आपके संवादों की भाषा उतनी अच्छी होगी। फिल्मों में नायक नायिकाओं, विशेषकर खलनायकों को विशिष्टता प्रदान करते हुए इसका प्रयोग होता है। उदाहरणतः फिल्म 'मिस्टर इंडिया' में खलनायक बात-बात में कहता है, 'मोगंबो खुश हुआ।' या 'क्रांति' में प्रेम चोपड़ा कहता है 'शंभू का दिमाग दोधारी तलवार है' वह कोई जुमला भी हो सकता है। या कोई आदत भी हो सकती है।

टेलीफिल्म लेखन:

'टेलीफिल्म' भी टेलीविजन की विभिन्न विधाओं में से एक महत्वपूर्ण विधा है। अंग्रेजी में 'टेलीफिल्म' को Documentary का एक रूप कहा जाता है। टेलीफिल्म का उद्देश्य होता है, सूचना देना या प्रशिक्षित करना। टेलीफिल्म वह विधा है, जो किसी सत्य घटना, तथ्य, सूचना, व्यक्तित्व और परिस्थिति पर आधारित होती है। इसका उद्देश्य मनोरंजन की अपेक्षा शिक्षा और सूचना देना अधिक होता है। जब यह कार्य दृश्यों द्वारा किया जाता है, वह प्रक्रिया 'टेलीफिल्म' कहलाती है।

हिंदी शब्दकोश में वृत्तचित्र के निम्नांकित अर्थ मिलते हैं शिला, लेख, विशिष्ट घटना या कार्य की जानकारी के लिए दिखाया जाने वाला 'समाचार चित्र' (News Reel)

टेलीफिल्म का उद्देश्य दर्शकों को समुचित जानकारी देना और उसके साथ कुछ सीखने का अवसर प्रदान करना है। ये टेलीफिल्म जहाँ दर्शकों का ज्ञान बढ़ाते हैं वहाँ उनका आत्मविश्वास भी बढ़ाते हैं।

फीचर फिल्म लेखन

१. फीचर फिल्म लेखन:

फिल्म और टी.वी. मोटे तौर पर एक ही जैसे लगते हैं। पर एक जैसे लगते हुए भी काफी भिन्नता रखते हैं। आरंभ में इसी अंतर को समझना होगा। दूरदर्शन फिल्म नहीं है, लेकिन फिल्म की ही भाँति इसमें भी कैमरे का प्रयोग होता है और छायाकृतियाँ स्क्रीन पर दिखाई देती हैं। टी. वी. नाटक मुख्य रूप से स्टूडियो में वहीं के साधनों से तैयार किया जाता है, जबकि फिल्म के लिए यह बन्दिश कतई नहीं है। फिल्म निर्माण में उत्तम तौर से और मुख्य रूप से एक ही कैमरे का प्रयोग होता है। फिल्म की शूटिंग और प्रोसेसिंग के बाद सम्पादक उसे काटकर जोड़कर विभिन्न शॉट्स का क्रम बनाकर फिल्म को गति निरन्तरता और अर्थ प्रदान करता है।

टी.वी. नाटक प्रसारण या रिकार्डिंग के समय निर्देशन, कलाकारों या कैमरा मैनों के साथ सैट पर नहीं रहता, जैसा कि फिल्म की शूटिंग में होता है, बल्कि वह प्रॉडक्शन पैनल से सभी कैमरों का संचालन, सम्पादन, ध्वनि प्रभाव या संगीत के प्रयोग के लिए लगातार निर्देश देता रहता है क्योंकि टी.वी. नाटक में यह सभी कार्य एक साथ चलते हैं।

फिल्म का स्क्रीन विशालकाय होने के कारण उसे लॉग शॉट्स अपना अर्थ और सुन्दरता दर्शक तक पहुँचाने में सक्षम है। फिल्म में काम करने वाले लेखक एवं निर्देशक हाथ में हाथ डालकर काम करने वाले होते हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

अब फिल्म की प्रक्रिया पर ध्यान देते हैं उस पर विचार करते हैं। जैसा कि सुविदित है कि नाटक चाहे टी.वी. का हो या मंच का या फिल्म अथवा रेडियों का सबका मूल आधार है- कहानी केवल माध्यम के अनुरूप कहानी कहने का तरीका अलग-अलग होता है और कहानी कहने का अन्दाज ही उसे रोचक या ऊबाऊ बना सकता है।

कहानी क्या है ? यह प्रश्न उठाकर हम कोई साहित्यिक बहस नहीं छेड़ना चाहते। नाटक या फिल्म लिखने के लिए विचार एवं विषय पर बातचीत करते हैं। विचार या विषय सम्प्रेषित करने के लिए हम केवल एक विषय - या थीम का चुनाव करते हैं।

पटकथा लेखन हेतु आवश्यक तत्व पटकथा लेखन:

पटकथा किसी भी कार्यक्रम की पहली आवश्यकता है। कार्यक्रम की सफलता असफलता बहुत कुछ पटकथा पर निर्भर करती है। टेलीविजन के लिए समाचार लिखना अन्य समाचार माध्यमों के लिए समाचार लिखने से बहुत भिन्न है। इसी तरह अन्य टी.वी. कार्यक्रमों की पटकथा लेखन का कार्य अलग तरह का है। इसके लिए अतिरिक्त सजगता और योग्यता की माँग रहती है। लेखक को टेलीविजन कार्यक्रम के निर्माण की पद्धति का भी ज्ञान होना चाहिए। कुछ सिद्धांत का भी पता होना चाहिए।

टेलीविजन के लिए विविध तरह के कार्यक्रम तैयार होते हैं। समाचारों के लेखन का काम अन्य कार्यक्रमों के लिए आलेख या पटकथा लेखन से कुछ भिन्न तरह का होता है। बेशक टेलीविजन माध्यम की भाषा के मूल तत्व समान होते हैं। संक्षेप में कहें तो यह कि समाचार के अतिरिक्त अन्य कार्यक्रमों के पटकथा, लेखन में भाषा की शर्तें अलग हो सकती हैं। साथ ही उनमें दृश्य योजना बनाकर कई खंडों में पटकथा लिखी जाती है। पटकथा का कंकाल (उसका स्टेप आउट लाइन) बहुत विस्तृत और अंग-उपंगों में बँटा हुआ रहता है। उसमें प्रायः तीन 'अंक' होते हैं। पहले अंक में सेट अप, दूसरे में टकराव, द्वंद्व या संघर्ष की योजना रहती है और तीसरे अंक में चरमोत्कर्ष या समाधान। दृश्य लेखन के लिए बिंबो की सृष्टि की जाती है और एक तरह से दृश्य की व्याख्या की जाती है।

किसी भी टेलीविजन कार्यक्रम के लिए यह आवश्यक है कि पहले शोधकार्य कर लिया जाए, जब लिखने बैठा जाए। पूरे कथानक को, घटनाचक्र को, दृश्यों को अपने भीतर रचा बसा लेना होता है। कल्पनाशक्ति से भी काम लिया जाता है। संगीत प्रभाव के बिंदु सोचे जाते हैं।

आवश्यक तत्व:

पटकथा लेखन के तीन आवश्यक तत्व हैं:

१. दृश्य
२. देशकाल
३. स्थान

१. दृश्य:

पटकथा की इकाई 'दृश्य' हुआ करता है। पटकथा किसी नाटक की तरह कथानक को दृश्यों में तोड़कर प्रस्तुत करती है। जहाँ घटनास्थल बदलता है, वहीं दृश्य भी बदल जाता है। कहने का अर्थ यह है कि एक खास जगह पर और एक खास अवधि में लगातार जो कुछ होता है, वह एक दृश्य कहलाता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि दो दृश्यों के बीच 'कट टू' लिखा दिया जाता है। 'कट टू' का मतलब है कि इस दृश्य को यहीं काट कर हम एक अन्य घटनास्थल वाले दृश्य में जोड़ रहे हैं। जब कार्यक्रम को शूट कर लिया जाता है। 'कट टू' कहने का अर्थ यह लिया जाता है कि यहाँ से काट कर वहाँ जोड़ दीजिए।

२. देश काल:

इससे आगे देश-काल पर दृश्य के ऊपर यह लिखना होता है, कि वह दृश्य कहाँ और कब घटित हो रहा है? जैसे कोई दृश्य किसी घर के भीतर का है, तो हम लिखेंगे 'भीतर' या 'INTR' अर्थात् - 'इंटीरियर' और यदि दृश्य बाहर का है। जहाँ मैदान हो सकता है, सड़क हो सकती है, भीड़ हो सकती है, बाजार हो सकता है तो लिखेंगे 'बाहर' या ENTR अर्थात् 'एक्सटीरियर' इसके साथ - ही हमें समय का उल्लेख भी करना चाहिए। दृश्य दिन का है, रात का है, या शाम का है ? हाँ यह नहीं किया जाता कि शाम के चार बजे है, या बारह बजे है, या दस बजे है। यह काम लेखक का नहीं होता यदि किसी दृश्य में समय को ठीक-ठीक

बताना जरूरी हो, तो दृश्य में घड़ी का शॉट डालना पड़ेगा अथवा किसी संवाद के माध्यम से यह काम करना होगा।'

३. स्थान:

इससे जुड़ा एक और तत्व है, वह है स्थान जैसे नदी का किनारा समुद्र तट, झोपड़ी बाजार आदि इससे तुरंत पता चलता है कि कौन-सा दृश्य कहाँ का है और दृश्य दिन का है या रात का है ? इससे शूटिंग करने वालों को सुविधा रहती है। वे अपनी सुविधा से एक ही स्थान के दिन- दिन के दृश्य एक साथ शूट कर लेते हैं और रात के दृश्य एक साथ। बाद में उन्हें संपादित करके अपनी-अपनी जगह पर जोड़ दिया जाता है- इसके अतिरिक्त परिश्रम, समय और पैसे की बचत हो जाती है। कहने का अर्थ यह है कि किसी भी पटकथा में एक ही घटनास्थल के कई दृश्य हो सकते हैं। शूटिंग करने वाले लोग उन्हें सुविधानुसार एक साथ एक-एक कर शूट कर सकते हैं। बाद में जहाँ जरूरत होती है, वहीं फिट कर दिए जाते हैं।

शूटिंग करने वालों के लिए भले ही एक ही स्थान पर अलग-अलग समय पर घटे दृश्य एक ही माला के मनके होते हैं, जो अलग अलग स्थानों पर घटने के बावजूद क्रमशः एक के बाद एक करके आते हैं और एक विशिष्ट प्रसंग से जुड़ पाते हैं। इसे कुछ-कुछ ऐसे समझा जा सकता है। जैसे उपन्यास में परिच्छेद होते हैं, पटकथा में दृश्यों की श्रृंखला होती है।

पटकथा लेखन के प्रारूप:

सर्व प्रथम उदाहरणार्थ पटकथा अंश देखें। यह अंश मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'पूँस की रात' पर आधारित है।-

दृश्य १ - बाहर / झोपड़ी का दरवाजा / दिन:

हम दिखाते हैं कि एक रगड़-सा गरीब अधेड़ आदमी हल्कू दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। और उससे थोड़ी दूर एक अन्य व्यक्ति हाथ में लाठी लिए मूँछें ऐंठता खड़ा है। दरवाजा आवाज करते हुए खुलता है। झाड़ू हाथ में लिए अधेड़ मुन्नी नजर आती है। हल्कू भीतर जाता है। लठैत व्यक्ति दरवाजे पर खड़ा हो जाता है।

दृश्य २ - दिन / भीतर / झोपड़ी के अंदर:

हम देखते हैं कि जिस स्त्री ने दरवाजा खोला था वह झाड़ू लगाने लगी थी। हल्कू एक क्षण हिचकिचाता हुआ खड़ा रहता है, फिर कहता है।

हल्कू - मुन्नी सुनती हो, सहना आया है, लाओ जो रुपए रखे हैं, उसे दे दूँ किसी तरह गला तो -- छूटे मुन्नी झाड़ू लगाना रोककर पोछे मुड़ कर बोलती है -

मुन्नी - तीन ही रुपए तो हैं ये दोगे तो कंबल कहां से आएगा ?

माघ पूँस ही रात हाट में कैसे कटेगी ? उससे कहो फसल पर रुपए दे देंगे। अभी नहीं है। हल्कू कुछ देर सर खुजलाता है फिर पत्नी के पास जाता है और लगभग खुशामदी आवाज में बोलता है।

हल्कू - अरी दे देना, गला तो छूटे। कंबल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।

पटकथा लेखन की विभिन्न शैलियाँ:

पटकथा किसी भी कार्यक्रम की पहिली आवश्यकता है। कार्यक्रम की सफलता असफलता बहुत कुछ पटकथा पर निर्भर करती है। टेलीविजन के लिए समाचार लिखना अन्य समाचार माध्यमों के लिए समाचार लिखने से बहुत भिन्न है। इसी तरह अन्य टी.वी. कार्यक्रमों की पटकथा लेखन कार्य अलग तरह का है। इसके लिए अतिरिक्त सजगता और योग्यता की माँग रहती है। लेखक को टेलीविजन कार्यक्रम के निर्माण की पद्धति का भी ज्ञान होना चाहिए। कुछ सिद्धांत का पता होना चाहिए।

'पटकथा लेखन की विभिन्न शैलियाँ इस प्रकार से है:

१. फीचर फिल्म शैली
२. टेलीफिल्म शैली
३. विज्ञापन / व्यवसायिक शैली

१. फीचर फिल्म शैली:

रंगीन वृत्तात्मक रचना फीचर (रूपक) है। मानवीय अभिरूचि के साथ मिश्रित समाचार जब चटपटा लेख बन जाता है तो फीचर के रूप में माना जाता है। सम-सामयिक घटनाओं एवं विविध क्षेत्र के अद्यतन परिवर्तन के सचित्र और मनोरम विवरण को फीचर कहा जा सकता है। फीचर फिल्म दिखाने या उसे बनाने का उद्देश्य होता है जनता को हर प्रकार से प्रशिक्षित करना हो चाहे वह राजनीतिक पहलू का हो चाहे वह दहेज प्रथा का पहलू हो सभी के उद्देश्य को ध्यान में रख कर फीचर फिल्में बनाई जाती हैं। यह एक विवराणात्मक शैली है। इसमें सारे पहलुओं को ध्यान में रखकर जनता को एक सन्देश या कहलें एक सूचना दी जाती है।

२. टेलीफिल्म शैली:

टेलीफिल्म की शैली भी अत्यन्त रोचक है। टेलीफिल्म अत्यंत छोटी होती है। टेली फिल्म में कहानी सबसे ज्यादा महत्व रखती है। इस विधा में एक चरित्र के द्वारा ही कहानी उसी चरित्र के चारों ओर घूमती नजर आती है। मुख्य चरित्र को अन्य सहायक चरित्रों तथा तथ्यों द्वारा अभिव्यक्त एवं विकसित किया जाता है। फिल्म के लेखक में कल्पनाशीलता, सर्जनात्मकता, टी.वी. लेखन की जानकारी और समयबद्धता आदि गुण होने चाहिए।

३. विज्ञापन / व्यवसायिक शैली:

आज औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उपभोग्य वस्तुओं का उत्पादन बड़ी मात्रा में हो रहा है, जिनके विपणन हेतु विज्ञापन ही सहारा है। फिल्म रेडियो टेलीविजन, पोस्टर्स, हॉर्डमिल, साइनबोर्ड, सिनेमा, स्लाइड और बैलून आदि अनेक माध्यमों से विज्ञापन होता है परन्तु समाचार पत्र ही सर्वाधिक सक्षम एवं उपयोगी सिद्ध होता है। अंग्रेजी में विज्ञापन के लिए 'Advertising' शब्द प्रयुक्त होता है जो लैटिन के 'Adverstere' से बना है जिसका अर्थ 'मस्तिष्क का केन्द्री भूत होना है। विज्ञापन कई प्रकार के होते हैं- स्थानीय विज्ञापन, राष्ट्रीय विज्ञापन, व्यवसायिक वर्गीकृत विज्ञापन आदि।' 'स्थानीय विज्ञापन' जहाँ पत्र का प्रकाशन

होता है उस स्थल के आस-पास के नागरिकों को स्थानीय विज्ञापन द्वारा संदेश पहुंचाया जाता है। सिनेमा, होटल, नाटक, मनोरंजन, रेस्तराँ, और स्टोर्स सम्बन्धी जानकारी इसमें समावेश रहता है। वर्गीकृत विज्ञापन में टेंडर नोटिस, कम्पनी की सूचनाएँ, विद्यालयों के प्रवेश सम्बन्धी विज्ञापन और नौकरी पेशे की सूचनाएँ वर्गीकृत विज्ञापनों के अन्तर्गत - आती है। 'प्रदर्शन विज्ञापन' किसी सिद्धांत नीति, कार्यक्रम, संस्था एवं संगठन के प्रचार का संदेश ऐसे विज्ञापनों द्वारा प्रसारित होते हैं। राष्ट्र की भावात्मक एकता, अल्प बचत, परिवार नियोजन, स्वच्छता अभियान आदि विज्ञापन, स्वच्छता अभियान आदि विज्ञापन प्रायः पत्रों में छपते हैं।

वृत्तचित्र लेखन:

टेलीविजन वृत्तचित्र अधिकांश चित्र, ध्वनि, संगीत और संवाद का मिश्रण है, लेकिन यह आवश्यक नहीं है। आवश्यकता के आधार पर वृत्तचित्र को मूक रूप से भी प्रस्तुत किया जा सकता है। वृत्तचित्र लेखन के चरणों को सुविधा की दृष्टि से निम्नांकित भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१. वृत्तचित्र विषय का निर्धारण
२. वृत्तचित्र में सत्यता का तत्व,
३. वृत्तचित्र की भाषा।

१. वृत्तचित्र विषय का निर्धारण:

वृत्तचित्र लेखन के समय सबसे पहले विषय का निर्धारण आवश्यक है। इसके बाद वृत्तचित्र का उद्देश्य क्या होना चाहिए, इस पर विचार किया जाना चाहिए। वृत्तचित्र का उद्देश्य दर्शक वर्ग से विशेष संबंध रखता है। यह देख लेना चाहिए कि वृत्तचित्र का निर्माण किस दर्शक वर्ग के लिए किया जा रहा है। इसके बाद वृत्तचित्र की अवधि पर विचार किया जाता है।

वृत्तचित्र के सभी निर्णयों को लेने के लिए लेखक स्वतंत्र नहीं होता है, बल्कि निर्माता की सहमती भी आवश्यक है। लेखक एवं निर्माता आपस में विचार-विमर्श कर वृत्तचित्र का विषय, उद्देश्य एवं अवधि निश्चित करते हैं। इसी विचार-विमर्श में वृत्तचित्र की प्रस्तुति भी निर्धारित की जाती है कि प्रस्तुति वृत्तचित्रात्मक शैली में होगी या कमेंट्री शैली में या दृश्यात्मक शैली में।

२. वृत्तचित्र में सत्यता:

वृत्तचित्र में सत्यता यही कारण है कि वृत्तचित्र लेखन से पूर्व विषय से संबंधित तथ्यों का संकलन और अन्वेषणात्मक शोध की माँग करता है जब वृत्तचित्र के तथ्यों की सत्यता की पृष्टि हो जाती है, तब ही उसे आलेख के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वृत्तचित्र लेखक को टेलीविजन तकनीक की जानकारी जरूरी है। इस संदर्भ में निम्नांकित बिंदुओं पर ध्यान देना जरूरी है:

१. स्पष्ट परिकल्पना
२. ध्वनि प्रभाव
३. वृत्तचित्र का क्लाइमेक्स
४. वृत्तचित्र का दृश्य क्रम
५. शब्द, चयन और
६. भाषा एवं शैली।

३. वृत्तचित्र की भाषा:

आदि मुद्दे महत्वपूर्ण होते हैं। कहा जा सकता है कि वृत्तचित्र की भाषा 'गागर में सागर' भरने वाली होती है। टेलीविजन में दृश्य का महत्व अधिक होता है, शब्द का कम। अतः शब्द दृश्य के अहवर्ती होने चाहिए। वृत्तचित्र लेखन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भाषा ऐसी हो, जिसका उच्चारण आसानी से किया जा सके, अर्थात्, आम बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए, ताकि वाचक को असुविधा न हो।

जनसंचार माध्यमों का दायित्व

जनसंचार माध्यम एक सामाजिक अवधारणा है। जिसका क्रियान्वयन पूरी तरह समाज के बीच ही होता है। समाज से हटकर या कटकर जनसंचार नितान्त असंभव है। जनसंचार का अध्ययन जिस शैक्षिक अनुशासन के तहत किया जाता है उसे सामाजिक नृतत्वशास्त्र कहा जाता है। अतः जनसंचार समाजशास्त्र की ही एक शाखा है।

दायित्व शब्द के मूल में 'दाय' शब्द है। मनुष्य होने के नाते हम अपने समाज से निरंतर बहुत कुछ लेते रहते हैं। बदले में हमें जो समाज को देना होता है वही दाम कहलाता है। इसीसे विकसित हुआ है दायित्व चूँकि जनसंचार का संबंध मनुष्य मात्र से होता है अतः जितने भी मानसिक विकास के आयाम हो सकते हैं उतने ही जनसंचार माध्यमों के दायित्व भी होंगे। संक्षेप में हम इन दायित्वों को सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा नैतिक आयामों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

जनसंचार माध्यमों का सामाजिक दायित्व:

जनसंचार की प्रक्रिया अपने सभी माध्यमों में समाज के बीच ही संपन्न होती है अतः अनिवार्य रूप से उसका कुछ सामाजिक दायित्व बनता है। अखबार जैसे मुद्रित माध्यम से लेकर इंटरनेट तक का एक सामाजिक पक्ष होता है। यूँ तो जनसंचार माध्यमों का उद्देश्य सही जानकारी को पूरी सहजता और प्रामाणिकता से जन सामान्य तक पहुँचाना होता है पर विषय वस्तु के चुनाव और उसके प्रति एक सामाजिक दृष्टिकोण जन संचार माध्यम को दायित्व पूर्ण बनाता है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में अनेक प्रकार की विषमताएँ, अंधविश्वास कुरीतियाँ तथा समस्याएँ हैं। इन सबके प्रति सजग जागृत करने में जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। राजा राममोहन राय से लेकर लगभग सभी स्वाधीनता सेनानियों ने अपने अपने अखबारों के माध्यम से सतीप्रथा, अछुत, विधवा - विवाह, बालविवाह, जाति प्रथा आदि सामाजिक विषयों के प्रति न सिर्फ चेतना फूँकी बल्कि कई कानूनों - के भी प्रेरणा बने। गाँधीजी की 'हरिजन' और 'नवजीवन' इसी प्रकार के अखबार थे। आजादी के बाद भी अखबारों ने कमोवेश अपने इन दायित्वों का विवाद किया।

भारत में रेडियों की शुरुआत ही जनजागरण से हुई रेडियों के कार्यक्रमों के माध्यम से प्रारंभ में अखबारों के ही सामाजिक उद्देश्य को आगे बढ़ाया गया। खासतौर पर बीमारियों और कृषि संबंधी समस्याओं के समाधान को रेडियों के जरिए ही विराट जन मानस तक पहुँचाया गया। अपने तमाम मनोरंजन प्रधान कार्यक्रमों के बावजूद आज भी रेडियों कम से कम शहरों में अपनी सामाजिक जिम्मेदारियाँ निभा रहा है।

सिनेमा भले ही मनोरंजन का माध्यम रहा हो पर मनोरंजन के साथ- साथ ही इसने सामाजिक जागरूकता का दायित्व निभाया। वी. शांताराम, वीर. आर. चोपड़ा, हेमाशु राय, सत्यजीत राय से लेकर विमल रॉय, गुरुदत्त, मृणाल सेन, श्याम बेनेगल, गौतम घोष, गोविंद निहलानी, केतन मेहता, जब्बार पटेल जैसे फिल्म निर्माताओं ने अपनी फिल्मों के माध्यम

से कई सामाजिक समस्याओं की पूरी संवेदनशीलता से अपने दर्शकों तक न सिर्फ पहुंचाया बल्कि उन्हें संवेदनशील भी बनाया। आदमी, दुनिया न माने अछुत कन्या, साधना, सुबह, सदगति आदि फिल्मों सिनेमा के सामाजिक दायित्व का ज्वलंत उदाहरण है।

टेलीविजन में दूरदर्शन अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद बड़े पैमाने पर अपनी सामाजिक जिम्मेदारी निभा रहा है। परिचर्या, बहस, फीचर, डाक्यूमेंट्री, टेलीफिल्म विज्ञापन आदि के माध्यम से यह निरंतर अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह कर रहा है।

जनसंचार माध्यमों का राजनीतिक दायित्व:

राजनीति व्यक्ति समाज, सत्ता, शासन के अंतः संबंधों का शास्त्र है जहाँ भी एक से अधिक व्यक्ति मौजूद होते हैं। वहाँ अपने आप राजनीति का आविर्भाव हो जाता है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में राजनीति का उद्देश्य ऐसी शासन व्यवस्था की स्थापना है जो जनकल्याण, सामाजिक न्याय और धर्म निरपेक्षता पर अवलंबित हो। इस देश में जनसंचार माध्यमों का विकास साम्राज्यवादी दौर में उपनिवेश काल के दौरान हुआ। यह दौर मुद्रित माध्यमों का था। एक ओर यह सरकारी स्तर हुकुमत के प्रचार-प्रसार में लगा था तो दूसरी ओर समाज सुधारकों, स्वाधीनता सेनानियों और क्रांतिकारियों के द्वारा इसका अत्यंत प्रखर उपयोग किया जा रहा था। यदि कहा जाय कि भारत की आजादी में सबसे बड़ी भूमिका अखबारों की रही तो अतिशयोक्ति न होगा। भारतीय जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित और जागरूक करने में अखबारों का बेहद महत्वपूर्ण योगदान रहा। केशरी, मराठा, यंग इंडिया, प्रताप, देश, आज, कर्मवीर जैसे पत्र - पत्रिकाओं ने भारतीय शिक्षित जनों में राजनीतिक चेतना का शंख फूँका।

आजादी के बाद भी कई ऐसे अखबार थे जो लगातार राजनीति पर अंकुश का काम करते रहे। अखबारों की राजनीतिक एहमियत इसी बात से पता लग सकती है कि एमरजेंसी के दौरान तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने प्रेस की स्वतंत्रता समाप्त कर दी थी। ऐसा ही काम पिछली सदी में अंग्रेजों ने भी किया। तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा हो या महात्मा गांधी पर चलने वाला मुकदमा सभी में अखबारों में छपे उनके लेखों की भूमिका ही प्रधान थी।

आज भी हमारे देश में साक्षरता का प्रतिशत ८० से अधिक नहीं है लगभग ३० करोड़ लोग पूरी तरह निरक्षर हैं जिन्हें राजनीतिक रूप से सत्ता प्राप्ति का जरिया बनाया जाता है ऐसे में मुद्रित माध्यमों का दायित्व बनता है कि वे शेष साक्षर जनसंख्या को राजनीतिक रूप से इस प्रकार शिक्षित करें कि देश में सही अर्थों में लोकतंत्र की स्थापना हो सके। लोकतंत्र में संचार माध्यमों का महत्व इसी बात पता चलता है कि इसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ (Fourth State) कहा जाता है।

श्रव्य माध्यम में रेडियो एक बड़े ही आकर्षक दिलचस्प और सशक्त माध्यम के रूप में २० वी सदी के प्रारंभ में विकसित हुआ। ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कापोरेशन की मदद से भारत में इसका प्रवेश हुआ। आगे चलकर All India radio के रूप में इसका विकास हुआ। यह पूरी तरह से सरकार नियंत्रित माध्यम था। विश्वयुद्धों के दौरान इसने बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। लेकिन इस सरकार नियंत्रित माध्यम के समानांतर भारतीय स्वाधीनता सेनानियों

ने अपने प्राइवेट रेडियो प्रसारण भी विकसित किये। सन १९४२ के आंदोलन में उषा बेन मेहता, अरुणा आसफ अली, अच्युत पटवर्धन जैसे सेनानियों ने अंडर ग्राउण्ड रेडियो से आजादी की मशाल जलाए रखी। नेताजी सुभाषचंद्र बोस के रोमांचित कर देनेवाले व्याख्यान रेडियो के माध्यम से ही भारतीय जनमानस तक पहुँचे। रेडियो ने साक्षर और निरक्षर के भेद मिटा दिए। इसकी पहुँच का दौर बड़ी तेजी से फैलाता गया। आजादी के बाद सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के आधीन रेडियो ने सत्ताधारी दलों की सुविधा के अनुरूप देश को राजनीतिक रूप से शिक्षित किया। खास तौर पर लोगों को मतदान की ओर प्रवृत्त करने में रेडियो की भूमिका असंदिग्ध रही है। पर सरकारी नियंत्रण की वजह से कहीं न कहीं इन माध्यमों का उपयोग सत्ताधारी दल अपने हित के लिए करने लगा था। इसी के चलते रेडियो और दूरदर्शन को स्वायत्तता प्रदान करने के लिए प्रसार भारती विधेयक का आविर्भाव हुआ। उदारीकरण के दौर में जहाँ एक ओर सरकारी नियंत्रण के अलावा ढेर सारे प्राइवेट रेडियो चैनल अस्तित्व में आए, वहीं इनके राजनीतिक दायित्व भी अपेक्षाकृत बड़े प्राइवेट रेडियो चैनल मुख्यतः व्यावसायिक दृष्टि से इस क्षेत्र में उतरे हैं फिर भी काफी हद तक वे लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास में सहयोग कर रहे हैं।

जो हाल रेडियो का है वही हाल दूरदर्शन का भी है। लेकिन दूरदर्शन के गैर सरकारी चैनलों में कई चैनल पूरी तरह राजनीतिक कारणों से अस्तित्व में आए हैं। चैनल राजनीतिक दलों अथवा व्यक्तियों द्वारा संचालित हैं। दक्षिण में सन (Sun) टी.वी. और सूर्या टी.वी. तो उत्तर में सहारा, आजतक, लोकमत आदि चैनल किसी न किसी राजनीतिक प्रतिबद्धताओं से जुड़े हैं। भूमंडलीकरण के दौरान विकसित चैनल सीधे-सीधे सत्ता और विपक्ष के दो ध्रुवों में बंट गए हैं। तो कुछ इनके बीच संतुलन साधे रहते हैं। 'टी.वी. चैनलों के असर के रहते भी कई बार राजनेताओं को अपनी कुर्सियों छोड़नी पड़ जाती है। राजनीतिक क्षेत्रों में स्टिंग ऑपरेशन' इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का एक ऐसा सशक्त हथियार है जिसने कई बार राष्ट्रीय राजनीति को हिलाकर रख दिया। जार्ज फर्नांडिस से लेकर नारायण दत्त त्रिवारी तक इसके शिकार हुए हैं। 'जनमत' लोकतांत्रिक राजनीति का एक अहम तत्व है। और इस जनमत के निर्माण में संचार माध्यमों की भूमिका असंदिग्ध रूप से महत्वपूर्ण है।

फिल्म माध्यम भी राजनीतिक दायित्वों की दृष्टि से भारत जैसे अर्थ साक्षर देश में अत्यंत महत्वपूर्ण साबित हुआ है। भारतीय फिल्मकारों ने कई तरह से फिल्मों का प्रयोग राजनीतिक उद्देश्य के लिए किया। आजादी के ठीक पहले बनी फिल्म 'किस्मत' में पंडित प्रदीप के एक गीत -

'आज हिमालय की चोटी से दुश्मन ने ललकारा है दूर हटो ऐ दुनिया वालों हिंदुस्तान हमारा है।' ने भारतीय जनमानस में राजनीतिक चेतना जमाने का काम किया। आजादी के बाद हमारे फिल्मकारों का ध्यान नए भारत के निर्माण की ओर लगा पर पहले ही चुनाव ने भावी भारत की रूपरेखा स्पष्ट कर दी। और कई फिल्मकारों का झुकाव राजनीति की ओर होने लगा। एक ओर सरकार द्वारा बनवाए गए वृत्तचित्र और लघु फिल्मों लोगों को राजनीतिक रूप से शिक्षित करने का काम कर रही थी। तो कुछ फिल्मकारों ने फिल्मों का उपयोग अपनी छवि के निर्माण में किया। और उसके आधार पर बने जनमत को बोटो के रूप में उपयोगकर राजनीति में पदार्पण किया एम. जी. रामचंद्रन, जय ललिता, एन.टी. रामाराव, एस. बंगारप्पा, सुनील दत्त, जया बच्चन, जयाप्रदा, राजबब्बर, शत्रुघ्न सिन्हा आदि इसके

सशक्त उदाहरण है। फिल्मों से आनेवाले राजनेता ने भारतीय राजनीतिक ढाँचे को या लोकतांत्रिक मूल्यों को भले ही मजबूत न किया हो पर इससे राजनीतिक दलों को अवश्य लाभ मिला है। इसके साथ ही सन् ७० के आसपास मनोरंजन से हटकर सार्थक व सौदेश्य सिनेमा ने काफी हद तक राजनीति को प्रभावित किया और अपने राजनीतिक दायित्वों का निर्वह किया। इन फिल्मकारों में गौतम घोष, श्याम बेनेगल, गोविन्द निहलानी, प्रकाश झा, जब्बार पटेल, सहद मिर्जा आदि प्रमुख हैं। सन १९८० के बाद राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण तथा निरंकुश राजनेताओं पर हिंदी सिनेमा ने सार्थक टिप्पणी की पिछली सदी के आखिरी दशक में पथभ्रष्ट राजनीति और भ्रष्ट नेता भारतीय सिनेमा के केन्द्र में रहें इस तरह शुद्ध मनोरंजन का यह व्यावसायिक माध्यम अपने राजनीतिक दायित्वों के प्रति सजग तो है पर जैसी उससे अपेक्षा की जाती है। उतना योगदान वह दे नहीं पाता।

सांस्कृतिक एवं दायित्व:

संस्कृति वस्तुतः पशु के इंसान बनने की कहानी है। निरंतर शुद्ध व परिष्कृत होते रहने की प्रक्रिया है संस्कृति जो कि नितांत सामाजिक अवधारणा है। जनसंचार भी मानव को सुसंस्कृत करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। दरअसल संस्कृति स्वयं में एक संचार प्रक्रिया है और संचार में संस्कृति महत्वपूर्ण अंग है। मानव ज्यों-ज्यों सभ्य होता गया त्यों त्यों संचार के माध्यमों का - उत्तरोत्तर विकास करता गया। भले वह जन संचार का मुद्रित माध्यम हो या अत्याधुनिक नेटवर्किंग हो। ये सभी मानव के भौतिक विकास का ज्वलंत प्रमाण है। जब यह प्रगति भौतिक और आत्मिक दोनों स्तरों पर एक समान अग्रसर होती है तो संस्कृति कहलाती है। लेखन कला मुद्रण कला, छपाई, रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा आदि तकनीकी विकास के साथ साथ सांस्कृतिक विकास के - भी घातक है। मुद्रित माध्यम आज भी मनुष्य की बौद्धिक खुराक को पूरा करने का अहम् माध्यम है। इन माध्यमों से न सिर्फ मनुष्य के बौद्धिक क्षितिज का विस्तार होता है बल्कि उसे आत्मिक आनंद की भी अनुभूति होती है। अखबार आज सिर्फ सूचना माध्यम पर नहीं बल्कि हमारे बौद्धिक अस्तित्व व सांस्कृतिक व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन चुके हैं। अखबारों का सांस्कृतिक महत्व जानना हो तो हम दो भिन्न अखबार पढ़ने वालों को देखकर जान सकते हैं। देश आनंद बाजार पत्रिका, हिंदू, लोकसत्ता, महाराष्ट्र टाइम्स, सरीखे अखबार पढ़ने वाले लोग निश्चय ही मिड डे संध्याकाळ, चौफेर, सामना, नवभारत टाइम्स के पाठकों से सांस्कृतिक स्तर पर बेहतर ही होंगे।

अखबारों का दायित्व बनता है कि वे अपने पाठक को सांस्कृतिक रूप से परिष्कृत, सजग व समृद्ध बनाए सिर्फ राजनीति अपराध अर्थशास्त्र ही नहीं सांस्कृतिक खबरों व गतिविधियों को भी प्रमुखतासे प्रकाशित करें और पाठकों का रुचि निर्माण करें।

रेडियों ने इस दायित्व को प्रारंभ से ही बखूबी निभाया सूचना एवं मनोरंजन के साथ-साथ कला, संगीत और लोकगीतों को जनसामान्य तक पहुँचाने का काम रेडियों ने दायित्व पूर्ण ढंग से किया प्रारंभ में रेडियों का लक्ष्य ग्रामीण भारत ही हुआ करता था। इसलिए लोकसंस्कृति का सर्वाधिक प्रचार प्रसार आजादी के बाद रेडियों से ही हुआ। आगे चलकर दूरदर्शन ने भी इसमें अहम भूमिका निभाई दूरदर्शन के स्थानिक केंद्रों ने स्थानिय संस्कृतिका खुलाकर उपयोग किया। लोक नाट्यपर्व, उत्सव आदि को दूरदर्शन ने काफी महत्व दिया तो दूसरी ओर सिनेमा ने भी सांस्कृतिक शिक्षण दायित्व निभाया। पाकिजा,

मुगले आजम, मदर इंडिया जैसी फिल्मों में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति का सार्वजनिक नमूना है। हस्तकला, चित्रकला, नृत्य, संगीत, खान-पान वेशभूषा, पर्व त्योहार, आदि के चित्रण का जितना अवसर दृश्य-श्रव्य माध्यमों की उपलब्ध है उतना अन्य माध्यमों से नहीं यदि हम दूरदर्शन के सांस्कृतिक कार्यक्रमों और फिल्मों का ही आधार ले तो भी भारतीय संस्कृति के सभी रूपों को भली भाँति अभिव्यक्त कर सकते हैं। सांस्कृतिक स्तर पर एक भारतीय समस्या है। विभिन्न संस्कृतियों के सामंजस्य की खास तौर पर हिंदू और मुस्लिम संस्कृति की। सिनेमा और दूरदर्शन ने इस दिशा में किसी अन्य संस्था से कहीं अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

जनसंचार माध्यमों का आर्थिक दायित्व:

आर्थिक दायित्व का संबंध मुख्यतः मानव जीवन को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक उत्पादन, वितरण तथा इनसे संबंधित अन्य अभिकरणों के अंतःसंबंधों की एक विशिष्ट प्रक्रिया से है। उत्पादन में उत्पादन की व्यवस्था उसके समस्त संसाधन, उत्पादक और उपभोक्ता की व्यवस्था उसके समस्त संसाधन, उत्पादन और उपभोक्ता के अंतः संबंध तथा वितरण में उसके भंडारण - परिवहन तथा मार्केटिंग की सारी व्यवस्थाएँ समाहित हो जाती है। जहाँ तक जनसंचार माध्यमों का प्रश्न है यह विशिष्ट अर्थ व्यवस्था से आज अत्यंत विशिष्ट अर्थ तंत्र है। यदि इस देश में साम्राज्यवाद के चरण न पड़े होते तो हमारे संचार माध्यमों का स्वस्थ कुछ और ही होता। जहाँ तक इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का प्रश्न है खास तौर से दूरदर्शन और सिनेमा ये पूरी तरह से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की संताने हैं सो कम्प्यूटर, मोबाईल और इंटरनेट पूँजी की उत्तर आधुनिक व्यवस्थाएँ हैं। संचार माध्यमों के आर्थिक दायित्व को हम दो आयामों में विश्लेषण कर सकते हैं। एक है संचार माध्यमों का अर्थ तंत्र उसमें लगने वाली पूँजी उससे होने वाला मुनाफा और मुनाफे की इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए राजनीतिक अर्थ व्यवस्था से लिए जाने वाले समझौते। इसका सीधा संबंध उनसे है जिनका जनसंचार माध्यमों पर आर्थिक नियंत्रण है। दूसरे वे लोग हैं जो इन माध्यमों के उपभोक्ता, पाठक, श्रोता, दर्शक, या प्रेषक हैं। जन संचार माध्यमों के अर्थतंत्र में इनका भी महत्वपूर्ण योगदान है। आज सिर्फ हिंदी सिनेमा का सालाना बाजार कई हजार करोड़ -अरबों रुपए से उपर है तो वह सिर्फ अपने दर्शकों के बल पर ही है। यदि दूरदर्शन पर लाखों रुपए प्रति मिनट की दर से विज्ञापन दिखाए जाते हैं तो उसकी वजह उस टिकिट बाक्स के सामने बैठा हुआ उपभोक्ता ही है। अतः एक लोकतांत्रिक देश में माध्यमों का पहला दायित्व अपने पाठकों एवं दर्शकों के प्रति होना चाहिए न कि सत्ता एवं शक्ति के केन्द्रों के प्रति। पर हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं कि इस देश में सही शिक्षा के अभाव में दायित्व निर्वाह की प्रक्रिया शायद ही किसी क्षेत्र में पूरी हो जाती हो। जब अखबार जन्में ही थे तभी से शेअर बाजार की खबरें और आर्थिक समाचार खास तौर पर सोने-चांदी के भाव अखबारों में छपने लगे थे। अखबारों ने ही उन्नीसवीं सदी के आखिर में हमें बताया कि अंग्रेज किस बुरी तरह से हमारा आर्थिक शोषण कर रहे हैं।

आजादी के बाद देश के अर्थिक विकास एवं चुनौतियों को अखबारों में महत्वपूर्ण स्थान मिलने लगा। बढ़ती हुई आबादी घटता हुआ कृषि उत्पाद, अशिक्षा, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी आदि हमारी प्रमुख आर्थिक समस्याएँ थीं जिनके प्रति अखबारों ने पूरी इमानदारी से अपना दायित्व निभाया रेडियों ने भी ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के विकास में अहम भूमिका निभायी,

वीजों को उन्नति किस्में सिचाई के साधन, उर्बरकों के उपयोग कीटनाशकों का उपयोग, फसलों की सुरक्षा, फसलों का मूल्य निर्धारण आदि पर प्रतिदिन प्रसारित होने वाले रेडियो कार्यक्रमों ने साक्षर दर कम होने के बावजूद किसानों को आर्थिक रूप से शिक्षित किया। उत्पादन के क्षेत्र में महिलाओं को सामिल करने के दृष्टि से भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। आगे चलकर दूरदर्शन ने भी इस कर्तव्य को बखूबी अंजाम दिया। सिर्फ सिनेमा इस दायित्व में कुछ इस तरह पिछड़ गया। क्योंकि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उप पर यह दायित्व लागू नहीं होता था। पर विज्ञापनों के माध्यम से उसने बाजारी करण की प्रक्रिया में अवश्य योगदान किया। इंटरनेट के आने से आर्थिक क्षेत्र में कई मूल भूत परिवर्तन हुए। ई-बैंकिंग, टेलीमार्केटिंग, ए.टी.एम. आदि ने आर्थिक क्षेत्र में लगभग क्रांति कर दी। किंतु इस समस्त टेक्नोलॉजी को प्रकृति पूँजीवादी होने के नाते इसका लाभ जन सामान्य तक नहीं पहुँच सका। आज संचार माध्यम अपने मुख्य उत्तर दायित्व को भले उस तरह नहीं निभा पा रहे हों जैसा कि इस विकासशील लोकतंत्र में निभाना चाहिए था पर आज वे खुद आर्थिक विकास के महत्वपूर्ण उपादान बन चुके हैं इसमें संदेश नहीं है।

नैतिक दायित्व:

नैतिकता विषय निष्ठ अवधारणा है। यह समाज सापेक्ष और व्यक्ति सापेक्ष होती है। इसके अलावा यह देशकाल सापेक्ष भी होती है। सार्वभौमिक तथा संपूर्ण (absolute) नैतिकता जैसी कोई चीज नहीं होती। अभी बीस साल पहले जिस तरह के सिनेमा को A सर्टिफिकेट दिया जाता था वे आज के बच्चों को भी बचकाने लगते हैं। जिस तरह के अध नंगे और अश्लील चित्र आजकल के अखबारों और पत्रिकाओं में छप रहे हैं, अभी १५ साल पहले उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यानी अभी २५-३० साल पहले हम अपने नैतिक प्रतिमानों को इतना पीछे छोड़ आये हैं कि वे गुजरे जमाने की बातें लगती हैं तब जबकि हम आज भी विकसित देशों से कम से कम २५ साल पीछे चल रहे हैं। नैतिकता का दूसरा संबंध इतिहास परंपरा और संस्कृति से भी होता है। और ये तीनों ही तत्व बहु आयामी और विकसनशील होते हैं पर यहाँ भी सही शिक्षा के अभाव में हमने जड़ता को ही स्वीकार किया। आज भी हम अखबारों में पढ़ते हैं। टी.वी. पर देखते हैं कि समान गोत्र में विवाह करने पर वर-वधु को पंचायत ने सजाए मौत दे दी। अक्षय तृतीया के दिन दो-दो तीन-तीन साल के शिशुओं का विवाह सीधे प्रसारित किया जाता है। रेम्प पर चलती सुंदरी के वस्त्र मिट जाते हैं वयोवृद्ध नेता अपनी बेटों की उम्र की लड़कियों से रंगरेलियाँ मनाता दिखता है। बेटों की उम्र की लड़की से छेड़खानी करने वाला नौकरशाह मुस्कराते हुए आदालत से बाहर आता है ये सब हमारे आज की नैतिकता के दृश्य हैं।

जन संचार माध्यमों के नैतिक दायित्व में हमें दोष साफ-साफ देख रहे हैं कि एक और माध्यम लोगों को नैतिक रूप से शिक्षित कर रहे हैं तो दूसरी ओर इन माध्यमों में ही नैतिकता की धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं। आज का हमारा सिनेमा अश्लीलता की तमाम हदें लांघ चुकी है। भाषा ही नहीं दृश्यों के स्तर पर भी अब यह स्वस्थ नहीं रहा। विज्ञापनों की दुनियाँ में अश्लीलता का कारोबार बड़ी तेजी से फलफूल रहा है। यदि सच को छुपाना, झूठ को प्रदाय देना, लोगों को बेवकुफ बनाना, बहला फुसलाकर आ जुलूला चीजे बेचना और ग्लोफ मेला करना अनैतिक है तो मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि हमारा विज्ञापन जगत आज पूरी तरह से अनैतिक हो चुका है।

मुद्रित माध्यमों में अखबारों में अभी भी नैतिकता बची हुई है। क्योंकि इसे हर रोज अपने पाठक के परिवार के बीच हाजिर होना पड़ता है जहाँ दूरदर्शन के विज्ञापन दर्शकों की मजबूरी होते हैं। वही अखबार मजबूरी नहीं होते क्योंकि वे बदले जा सकते हैं। फिर भी अखबारों के भी विज्ञापनों में अश्लीलता का कैंसर फैला हुआ है। सिर्फ रेडियों अभी इस बीमारी से पूरी तरह मुक्त हैं। लेकिन इसके व्यावसायिक चैनल खुद को अनैतिक होने से बचा पाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। इस संदर्भ में एक और बात कही जा सकती है कि सारे के सारे माध्यम आज अपने पाठक और दर्शक बनाने में लगे हुए हैं और ऐसी चीजें परोसना चाहते हैं जिससे वे ज्यादा से ज्यादा लोगों को अपनी ओर खींच सकें जबकि नैतिकता में इतना आकर्षण नहीं है जितना अनैतिकता में है। अतः एक हद तक यह स्वीकार किया जा सकता है कि हमारे जनसंचार माध्यम अपने नैतिक दायित्वों को पूरी इमानदारी से नहीं निभा पा रहे हैं।

शैक्षणिक दायित्व:

संचार माध्यमों का जन्म ही जनशिक्षण के लिए हुआ यह लोगों को बड़े पैमाने पर शिक्षित करने का प्रमुख माध्यम रहा। प्रारंभ में यह उन्हीं तक सीमित रहा जो लोग साक्षर थे और जिनकी पहुँच मुद्रित माध्यमों तक थी पर वे लोग जो अखबारों पत्र-पत्रिकाओं तक नहीं पहुँच पाते थे वे भी अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षित तो हो ही जाते थे। यहाँ शिक्षा का अर्थ ज्ञान प्रदान करना नहीं, सूचना प्रदान करना है। विभिन्न विषयों की जानकारी और जानकारीयों के विविध आयामों का विवेचन अखबारों और पत्र - पत्रिकाओं में होता रहा। यह आश्चर्य की बात है कि जिस मात्रा में आजादी के पहले जन संचार माध्यमों ने आम जनमानस को सजग व सचेत किया। उस मात्रा में आजादी के बाद नहीं कर पाया हालाँकि माध्यमों के बहुत प्रचार-प्रसार प्रभाव के चलते लोग इनफार्म तो हुए पर सचेत नहीं हो पाए मेरे ख्याल से इसकी वजह तब के और अब के माध्यमों के संचालकों के दृष्टिकोण में अंतर है। जो भी हो आज शिक्षा के लिए माध्यमों का बड़े पैमाने पर और पूरी विशेषज्ञता से उपयोग हो रहा है। समाचार पत्र सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक दृष्टि से शिक्षित करने में लगे हैं साथ ही वे परंपरागत शिक्षा में शिक्षक और मार्गदर्शन को भूमिका भी निभा रहे हैं।

संपादकीय लोगों, समाचार विश्लेषणों और पाठकों को वहस के लिए मंच प्रदान करके अखबार और पत्र-पत्रिका अपने शैक्षिक दायित्वों को पूरा करने में लगे हैं। आधुनिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो जो आज माध्यमों से अछूता रह पाया हो। शिक्षा, सेहत, स्वास्थ्य से सम्बन्धित यौन समस्याओं पर तक मार्गदर्शक बने हुए हैं आजकल के माध्यम रेडियों वार्ता, बहस, फीचर आदि के माध्यम से रेडियों भी अपने इस दायित्व को निभा रहा है। U.G.C. और इग्नू के शैक्षणिक कार्यक्रम दूरदर्शन द्वारा घर-घर में पहुँच ही रहे हैं। साथ ही जीवन के सभी पहलुओं पर फिर वो जो चाहें खेल हो पाक विज्ञान हो स्वास्थ्य हो या सौंदर्य सभी के बारे में अपने दर्शकों को शिक्षित करने का कार्य दूरदर्शन और उसके विभिन्न चैनल अपनी अपनी तरह से अपने अपने दायरे में कर रहे हैं।

इंटरनेट आधुनिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन बन चुका है। कई शिक्षा संस्थानों में यह केंद्रीय भूमिका निभा रहा है। दुनिया भर के तमाम जानकारीयों से भरे पड़े हैं इंटरनेट के अलग-अलग बेव साइट्स, सिनेमा भी अपना व्यवसाय करते हुए जितनी शिक्षा दे सकता है

देने का प्रयास करता हैं। यह सच है कि आज के व्यावसायिक युग में मुनाफा किसी भी प्रक्रिया का केंद्रीय तत्व होता है। ऐसे में अपने मुनाफे पर ध्यान केंद्रित करते हुए आज का जन संचार माध्यम अपने शैक्षणिक दायित्व का बखूबी निर्वाह कर रहा है।

munotes.in

साहित्यिक विधाओं की दृश्य श्रव्य रूपांतरण कला

कहानियों, उपन्यासों और लघु-कथाओं को दृश्य-श्रव्य माध्यम के लिए निरंतर रूपांतरित किया ... जा रहा है; जहाँ उपन्यासों को धारावाहिक में रूपांतरित किया गया है वहीं कहानियों को रेडियो नाटकों व टेलीनाटकों में बदल दिया गया है। ऐसे में यदि किसी उपन्यास को रेडियो अथवा टेलीविजन में रूपांतरित किया जाता है तो मूल कथ्य को बरकरार रखते हुए अप्रासंगिक घटनाओं और उपकथाओं को निकाल दिया जाता है।... रूपांतरित के कई कारण होते हैं। एक तो यह है कि जो रचना एक साहित्यिक विधा के रूप में प्रसिद्धि पा चुकी होती है। दर्शक व श्रोता उसे देखने सुनने के लिए उत्सुक होते हैं। दूसरा यह कि दृश्य-श्रव्य माध्यमों के प्रस्तुत कर्ता एवं निर्देशक सदा ही अच्छी रचनाओं को प्रस्तुत करने के लिए तैयार होते हैं।... कहानी या उपन्यास में जहाँ भूत, वर्तमान और भविष्य की बात होती है वहीं दृश्य श्रव्य कृति में केवल वर्तमान की ही बात होती है। रूपांतरकार को ऐसे तरीके खोजने पड़ते हैं जिनमें भूत की घटनाएँ, वर्तमान में उद्घाटित हो सकें। टेलीनाटक या रेडियो नाटक में पूरी कथा एक आधे घंटे में कहानी होती है। जिस प्रकार एक पाठक पुस्तक को अपनी सुविधा के अनुसार रचना बार-बार पढ़ सकता है उस प्रकार के पुनः पठन का यहाँ कोई तरीका नहीं। पाठक पात्रों को अपनी कल्पना अवस्था के आधार पर अपने मन में देख लेता है, किंतु एक दर्शक ऐसा नहीं कर सकता। इस कारण रूपांतरित दृश्य और उनकी पुनर्रचना चुनौती पूर्ण हो जाती है। इसलिए मूल कथा को नाटक के प्रारूप में ढालना कभी-कभी असंभव सा लगने लगता है क्योंकि पात्रों और कथानक में जो परिवर्तन आवश्यक - होते हैं उनसे कथ्य को बरकरार रखने में बड़ी कठिनाई आती है कि कहीं कथा बिगड़ न जाए। उपन्यास और कहानी वर्णनात्मक होते हैं जबकि नाटक कार्य व्यापार तथा घटनाओं द्वारा ही आगे बढ़ता है। रूपांतरित आलेख में नाटकीयता लाने के लिए पात्रों को नए धरातल पर नए रूप में प्रस्तुत किया जाता है, और आरंभ, मध्य तथा अंत की अवस्थाएँ उत्पन्न की जाती हैं। तीन अंकों वाले इस सिद्धांत के अंतर्गत पात्रों के विचारों में टकराव, उनके संघर्ष, उनके पथ में आनेवाली बाधाओं आदि द्वारा पुनः रचना होती है। प्रथम अवस्था में नायक व मुख्य पात्र प्रकट होते हैं। कथानक का परिचय प्राप्त होता है और पात्रों के संघर्ष की भूमिका बंध जाती है। नायक की समस्या से दर्शक व भूमिका बंध जाती है। नायक की समस्या से दर्शक व श्रोता परिचित हो जाते हैं। दूसरी अवस्था में मुख्य पात्र अपनी मंजिल के करीब नजर आने लगता है मगर भाग्य या आकस्मिक बाधाएँ समस्या को और भी उलझा देती हैं। चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ते हैं तो कई प्रश्न सिर उठाते हैं। क्या नायक समस्या का समाधान ढूँढ़ पाएगा ? क्या भाग्य उसका साथ देगा ? क्या वह अपना निर्णय बदल लेगा ? क्या वह बच जाएगा ? क्या वह अपने शत्रुओं पर विजय पा सकेगा ? कई प्रश्न श्रोता व दर्शक के मन में होते हैं? किंतु कभी-कभी मूल साहित्यिक कृति में एक अस्पष्ट अंत होता है इसलिए रूपांतरकार कभी घटनाएँ बदलता है तो कभी नए दृश्य जोड़ देता है और एक सुखांत नाटक प्रस्तुत करता है क्योंकि दर्शक और श्रोता सकारात्मक नाटक ही पसंद करते हैं।

दूरदर्शन के लिए प्रारंभ से ही साहित्यिक कृतियों को रूपांतरित किया जाता रहा है। जैसे बंद गली का अखिरी मकान (मूल कहानी - डॉ. धर्मवीर भारती, रूपांतरण शैलेंद्र) उधार की जिंदगी प्रेमचंद की कहानी का रघुवीर सहाय द्वारा रूपांतरण) 'अकेली' (मन्नू भंडारी की कहानी का देवेंद्र राज अंकुर द्वारा रूपांतरण), मान अपमान (शरतचंद की कहानी का प्रभाकर द्विवेदी द्वारा ड्राइवर ने कार का दरवाजा बंद किया और वहीं रुका रहा जबकि उसका अधिपुरुष सामने के क्वार्टर की ओर जाने लगा। लॉन के बीचोंबीच चलते हुए जब वह सामने के सरकारी मकान में कदम रखने ही वाला था, तभी महरी, भारी-सी चिलमची लिए हुए बाहर आई - "कौन ? किस से मिलना है साब ?"

"बालकृष्ण जी घर में है क्या ?" तरुण ने पूछा। पास में टंगी अलगनी पर कपड़े फैलाते हुए महरी अंदर आवाज देने लगी। "ओ बेबी जी! कोई साहब आए हैं।" भीतर से किसी अनुक्रिया के अभाव में महरी ने गीला लबादा एक तरफ को झटकते हुए कहा, "अंदर में सभी लोग हैं ना। आप जाब ना साहब जी।" "थैंक्यू।"

चलने को तैयार था कि तभी किसी ने उत्साह से बाहुपाश में जकड़ लिया। देखा तो बालकृष्ण ही था, उसका प्यारा 'भाईजान' पर यह क्या! वह जीवंत चेहरा आज एक दम जर्जरा।

'भाईजान, यह क्या? इतने कमजोर ? सब ठीक तो है ना ?' 'अरे भाई ऐसे क्यों बदहवास हुए जा रहें हो ? बुढ़ापे का पदार्पण है चलो भीतर चलो।'

...हाँ हाँ चलिए। -

अधेड़ अवस्था के बालकृष्ण; उसके मौसरे भाई ने लॉबी में पहुँचते ही उत्साह के साथ परिवार के सदस्यों को बुलाना शुरू किया "अरे देखो तो कौन आया है ?"

आनन फानन अठारह वर्षीय "बेबी, बीस वर्षीय बेटा पप्पू और पत्नी 'शीला' सामने हाजिर हो - गए।" "नमस्कार, रमेश भैया! घर पर सब कैसे हैं।"

"अरे शीला, तुम भी कमाल हो! भला इसे घर की सुध कहाँ ? आए दिन तो दूर पर रहता है। कभी सिंगापूर तो कभी तोकिया क्यों रमेश ?"

"हाँ भाईजान, आप ठीक कहते हैं। मगर भाभी, घर के साथ पूरा संपर्क बनाए रखता हूँ। हर दूसरे दिन फोन करता हूँ।"

"अब आप यही इनसे बातें करते रहेंगे क्या ? चलिए भैया जी, अंदर चलिए।" ऐसा कहते ही शीला ने बेबी को भी इशारे से रसोई की ओर भेजा। रमेश अपने मौसरे भाई के साथ उसके सजे - सजाए ड्राइंगरूम में चला आया। वही, बड़ी सी खिड़कीवाला कमरा, पर कितना बदला-बदला सा। रमेश इस कमरे में आज कई वर्षों बाद आया था। लालाजी के रहते यहाँ अलग ही रौनक होती थी। खिड़की के पास रखे दीवान पर वह बड़ी शान से बैठे रहते थे। धवल स्वच्छ कुर्ता- पाजामा पहने, गीता प्रेस की कोई धार्मिक पुस्तक लिए खिड़की से टेक लगाकर बैठे रहना उनकी दिनचर्या का एक हिस्सा था। जीवित होते तो पूरा घर सिर पर उठा लिया होता रमेश के लिए इलायची और बादाम वाला हलवा अब तक क्यों नहीं आया?

"लीजिए अंकल।"

"हूँ..." रमेश ने देखा कि सामने बेबी पानी का गिलास लिए खड़ी है। ट्रे में से गिलास उठाते हुए जब उसने पूछा कि वह आजकल क्या कर रही है तो बेबी ने मुस्कराते हुए जवाब दिया। "बी. कॉम. फाइनल" तभी पप्पू भी चारा और बिस्कुट आदि लिए भीतर आया।

"तुम चाय पीयो, मैं अभी आया।" यह कहकर भाई जान बरामदे की ओर जाने लगा। बच्चे भी ट्रे और खाली गिलास लेकर बाहर चले गए। रमेश को अपने मौसेरे भाई का इस प्रकार उठ खड़े होना और फिर चले जाना अटपटा सा लगा। पर स्वजन का यह आचरण उपेक्षणीय था। रमेश ड्राइंगरूम की दीवारों में न जाने क्या तलाशने लगा बेबी की बनाई हुई पेंटिंग, कश्मीर से पहले कभी लाई हुई रंगीन कागज और शीशों से सजी काँगड़ी लालाजी का एनलार्ज किया हुआ फोटो, टी.वी., पप्पू के स्कूल मैडल, पहलगाँव में शीला और भाईजान का भट्टे खाते हुए खींचा गया फोटो: पप्पू का इजीनियरिंग कॉलेज में अपने मित्रों के साथ लिया गया फोटो...

बच्चों के बड़े होने और समय गुजरने साथ-साथ कितना परिवर्तन आया है इस ड्राइंगरूम में। एक कितना परिवर्तन आया है इस ड्राइंगरूम में एक समय था जब इस कमरे में केवल एक-दो कैलेंडर झूल रहे होते थे और एक कोने में होता था लालाजी का हुक्का उस हुक्के को लेकर बाप-बेटे में आए दिन हाय-तौबा मची रहती थी। जितना ही भाईजान, लालाजी को तंबाकू पीने से रोकते थे, उतना ही वे ज्यादा पीने लगते; शीला भी उस हुक्के को लेकर दूध का दूध और पानी का पानी करना चाहती थी, मगर दोनों की एक न चलती। तंबाकू की गंध सारे क्वार्टर में सुबह-शाम तैरा करती। यह गंध, लालाजी की मौजूदगी और उसके शासन का आभास करारी। इसका श्रेय लालाजी की पत्नी शोभावती को भी जाता है। जो निष्ठापूर्वक अपने पति की सेवा करती और उसकी सुख-सुविधा का ध्यान रखती। इसलिए हुक्का स्टूल पर विराजित रहता और लालाजी दीवार पर लालाजी के इस कमरे में शोभावती हर रोज शिव के कैलेंडर के सामने बैठ अपने इष्टदेव आ आवाहन करती... पर वह आज घर में नजर क्यों नहीं आ रही? हो सकता है मार्किट गई हो। लेकिन बाजार जाने की तो उसकी कभी आदत ही नहीं रही। घर में भी तो नहीं लगती। घर में होती तो व्यग्र हो इस समय या तो मेरा माथा चूम रही होती या मुझे बहुत बड़ा आदमी बनने की दुआएँ देती।

"अंकलजी, आपने चाय नहीं ली?" सामने खड़ी थी। "हूँ..."

"जी आप चाय पी ले, पापा अभी आते ही होंगे।"

"पर वह है कहाँ?" "दूसरे कमरे में दादीजी के पास।"

इसके पश्चात लड़की ने क्या कुछ कहा, वह सब रमेश ने सुना ही नहीं। बिना विलंब, लॉबी को पार करता हुआ वह सामने के बेडरूम की ओर लपका। बेडरूम में पहुँचते ही उसके पैरों की गति अवरुद्ध हुई। देखा तो उसकी चहेती मौसी निस्पंद, किसी प्राण-रहित पक्षी जैसी रोगशैथ्या पर पड़ी थी। ग्लूकोस की बोतल स्टैंड से टंग रही थी। शोभावती के जर्जर जीर्ण अवस्था में पड़े रहते, साफ मौसम हो रहा था कि उसे अब तक कई ड्रिप लग चुकें हैं। क्या आप यह वही मौसी है जो बारामुला के गाँव में साल भर का धान अकेली कूटती थी और थकने का नाम तक नहीं लेती थी? कड़ाके की ठंड में बर्फीली सड़कों पर मीलों का सफर

पैदल तए करती थी। रमेश को लगा कि वह सुन्न होता जा रहा है और पसीने से तर-ब-तर उसकी काया काँपने लगी है।

रमेश की वृत्ति का अनुमान करते हुए भाईजान ने तुरंत कुर्सी दी और उसे बैठने को कहा। अन मना-सा झेंपते हुए रमेश बैठा, मगर शोभावती के चेहरे को एकटक निहारता रहा। उसकी मौसी के माथे पर आज न तो चंदन का तिलक ही था और न ही गले में लट्टाखी मोतियों की माला। वेसुध सी पड़ी, वह वृद्धा काश खुद बोलती। इसकी कभी न खत्म होनेवाली बातें विस्मृति में तो - नहीं खो सकती- "अरे, रमेश न जाने युनिवर्सिटी में क्या करता है, जल्दी से पढ़ाई खत्म करा।"

"मेरी अच्छी बाली - मौसी। तुम यह क्यों नहीं समझती कि कोर्स अपने समय पर ही पूरा होता है और इम्तहान भी किसी कायदे-कानून के तहत होते हैं।""वो तो ठीक है। पर देख, लालाजी अभी सर्विस में हैं। कल को वह रिटायर हो गए तो किससे तुम्हारी नौकरी की बात करूँगी ? पेंशन पर जाने के बाद भला किसी मुलाजिम की पूछ होती है।

रमेश ने पास में बैठे अपने मौसेरे भाई से उपचार आदि के बारे में एक भी बात नहीं पूछी। वह भी इसकी मनोदशा से अनभिज्ञ नहीं था। वह जानता था कि रमेश की माँ की असमय मृत्यु के बाद उसकी माँ ने रमेश को पाला पोसा था। वह जानता था कि रमेश की किसी सफलता पर उसकी माँ कैसे उत्साह और उन्माद में झूमने लगती थी, मानों उसकी कई बरसों की साध पूरी हुई थी। जब रमेश एम. ए. पास करने की खबर लेकर आया था, तब भी ऐसा ही हुआ था। मृदुल नेहा अविराम बरसने लगी थी। लालाजी अपनी पत्नी के स्वभाव और ममत्व की भाना को समझते थे। उन्होंने कुछ ही दिनों में रमेश की नियुक्ति एक एक्सपोर्ट हाउस में कारवाई की थी, जबकि उनका अपना बेटा बालकृष्ण अभी भी रोजगार दफ्तर के चक्कर काट रहा था। अपनी माँ का रमेश के प्रति अनुराग देख बालकृष्ण उन दिनों अपने मौसेरे भाई से ईर्ष्या करता था, क्योंकि माँ की ममता और स्नेह, जो उसे मिलना चाहिए था वह रमेश को नसीब हो रहा था।

रमेश उठ खड़ा हुआ और अपनी मौसी माँ के सिरहाने जा बैठा। बिस्तर पर पड़ी बेसुध जाने - के माथे को सहलाने के उद्देश्य से छुआ कि पूरे शरीर में कँपकँपी दौड़ गई। मन और प्राण को झकझोरने वाला यह कैसा उद्वेग था? उसे बोर्ड रूम होटल का कमरा, मौसी माँ का दुलार और फिर वह खामोश बेडरूम क्षणिक दृश्यों की तरह एक स्थिती से निकाल दूसरी अवस्था में ले जाते रहे। निस्तब्धता के उन क्षणों में रिक्तता का आभास बढ़ने लगा। वह बैचेन होने लगा इस शहर में आए उसे तीन महिने हो गए थे, पर क्या नब्बे से ज्यादा दिनों की अवधि में पंद्रह मिनट निकाल पाना कठिन था ? इन बूढ़ी आँखों ने कितना खोज होगा ? क्या में आँखें रमेश को फिर से देख पाएँगी। प्रश्नों का सिलसिला और यह खामोशी निःशब्द रमेश उठ खड़ा हुआ। हालाँकि उसके माथे पर चिंता की रेखाएँ साफ नजर आ रही थी, पर वह एकदम से क्यों चलने लगा यह उसका - भाईजान समझ न सका कुछ पूछे या न पूछे, इसी उधेड़बुन में रमेश के साथ चलते चलते उसका मौसेरा भाई भी क्वार्टर के दरवाजे तक आ गया। रमेश रुका और उसने जेब से अपना बिजिटिंग कार्ड निकाला। उस पर कोई फोन नंबर लिखने लगा। अब तक बेवी, शीला और पप्पू भी वहाँ आ चुके थे। शीला कुछ कहने लगी। शायद यह कि रमेश को रात के खाने के बाद ही जाने देना चाहिए लेकिन भाईजान के

संकेत ने उसे चुप कराया। रमेश ने अपना फोन नंबर फिर दोहराया। भाईजान ने कार्ड को सँभालते हुए अपने बटुए में रखा और दोनों गले मिले। दृढ़ता से बड़े भाई ने छोटे का हाथ पकड़ा और कुछ कहे बिना ही सब कुछ कहते हुए विदा करने लगा। बालकृष्ण के परिवार से रूकसत होकर रमेश बाहर लॉन की तरफ चल पड़ा।

अँधेरा गहराने लगा था। अब कहीं कोई बच्चा नजर नहीं आ रहा था। रमेश को देखते ही शोफर के बदन में फिर से फूटती आई। उसने कार का दरवाजा खोला और अपने साहब की हाजिरी बजाने लगा। रमेश कार के पास आया, लेकिन उसमें बैठा नहीं।

"सर आपको लेने कब आऊँ ?"

"मैं अपने आप आऊँगा।"

"लेकिन सर, अभी तो आपको कई जगह जाना होगा ?" "अब कहीं नहीं जाना। जाओ, गाड़ी होटल ले जाओ।"

"अच्छा सर।"

ड्राइवर कार ले गया। रमेश ने क्वार्टर को एक बार फिर देखा और आगे बढ़ने लगा। स्ट्रीट लाइट्स टिमटिमा रही थी। मौसम में नमी और दूर-दूर तक चुप्पी खाली सड़क पर रमेश के कदमों की आहट तीव्र होती गई। उसने अपनी टाई की नॉट ढीली की कमीज के ऊपरी दो बटन भी खोल दिए फुटपाथ पर बैठे किसी भिखारी ने आवाज लगाई। रमेश ने कनखियों से उसे देखा और चलता रहा। कोट पोछने लगा। हवा कुछ तेज बहने लगी? हाथ का रूमाल एक झोंके के साथ किसी झाड़ी में उलझ गया। उस तरफ कोई ध्यान दिए बिना ही रमेश बढ़ता रहा। उसे अपनी प्रतिष्ठा, अपना पद सब बेमानी लग रहा था। बिना किसी लक्ष्य के वह चलता रहा। अब वह बाहर हाइवे पर आ गया था। लंबा-चौड़ा राजमार्ग बेमकसद मंजिलों। उसने बाएँ देखा न दाएँ, बस अपने सीध में चलना रही... न जाने कब तक।

इस प्रकार से जिन साहित्यिक विधाओं का दृश्य माध्यमों में रूपांतरण सफलतापूर्वक किया जा सकता है और किया जाता रहा है, उसमें से मुख्य है उपन्यास, कहानी और नाटक। इस प्रकार कुछ महाकाव्यों के भी रूपांतरण हुए हैं, जैसे रामायण, रामचरित्र मानस और महाभारत। -

दृश्य माध्यमों में रूपांतरित और कुछ साहित्यिक रचनाएँ इस प्रकार हैं:

१) कहानियों का नाट्य रूपांतरण तथा उनकी दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुति:

प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' इस पर फिल्म भी बनी थी। उन्हीं की कहानी 'ठाकुर का कुआँ, यह टेलीविजन पर भी दिखाई गई थी। उनकी एक और कहानी 'नमक का दारोगा' भी दूरदर्शन पर प्रस्तुत हुई। जयशंकर प्रसाद की कहानी 'मधुआ', धर्मवीर भारती की 'बंद गली का आखिरी मकान, मालती जोशी की 'मध्यांतर', उषा प्रियवंदा की पैरेम्बुलेटर, "श्रवण कुमार की 'खंडहर पर बैठा आदमी' तथा कमलेश्वर की कई कहानियों के रूपांतरण सफलतापूर्वक हुए हैं।

२) उपन्यासों का नाट्य रूपांतरण तथा उनकी दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुति:

प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान', 'निर्मला' और 'गबन' पर फिल्में बनी थी 'जैनेन्द्र कुमार' का उपन्यास 'त्यागपत्र' तथा 'मन्नू भंडारी' के उपन्यास 'महाभोज' का नाट्य रूपांतरण हुआ और टेलीविजन पर भी दिखाया गया। 'देवकीनंदन खत्री' के उपन्यास 'चंद्रकाता' तथा 'वृंदावनलाल वर्मा' के उपन्यास 'मृगनयनी' के नाट्य रूपांतरण, टेलीविजन पर लोकप्रिय हुए। 'श्रीलाल शुक्ल' का 'राग दरबारी' और भीष्म साहनी का 'तमस' टेलीविजन पर बहुत लोकप्रिय हुए।

'अमृतलाल नागर' के 'बूंद और समुद्र', 'मानस का हंस' तथा 'खंजन नयन' उपन्यास भी टेलीविजन पर प्रसारित हुए। 'भगवती चरण वर्मा' का 'भूले बिसरे चित्र', धर्मवीर भारती का 'गुनाह का देवता', 'श्रीकांत वर्मा' का, 'दूसरी बार', 'द्विजेन्द्रनाथ मिश्रा', 'निर्गुण' का 'एक बदनाम आदमी' आदि कई उपन्यास दृश्य माध्यमों में रूपांतरित हुए हैं और सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए गए हैं।

३) महाकाव्यों के नाट्य रूपांतरण तथा उनकी दृश्य माध्यमों पर प्रस्तुति:

रामायण, रामचरितमानस महाभारत कई फिल्में ऐसी हैं जो पौराणिक कथाओं को लेकर तैयार की गई हैं, जैसे- 'सती अनुसुइया', 'सत्यव्रत हरिश्चन्द्र', 'भक्त प्रह्लाद' आदि।

४) साहित्यिक नाटकों के दृश्य माध्यमों में रूपांतरण एवं प्रस्तुति:

स्वर्णरेखा, अपराध की छाया, सुनन्दा (विष्णु प्रभाकर) कबिरा खड़ा बजार में (भीष्म साहनी) लहरों के राजहंस, आषाढ़ का एक दिन, आधे अधुरे (मोहन राकेश), मिस्टर अभिमन्यु, दर्पण काफी हाउस में इंतजार लोग वहीं, आइना, हाथ अंकल (लक्ष्मीनारायणलाल) सूखी डाली, अंजोदीदी (उपेन्द्रनाथ अशक), लड़ाई (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना) पेपरवेट, मृत्युदंड (रमेश उपाध्याय) आदि

ऐसे कई नाटककार हैं जो साहित्यिक विधाओं के साथ ही दृश्य माध्यमों के लिए भी नाटक लिखते रहे हैं जैसे रेवतीसदन शर्मा, चिरंजीत, दयानंद अनंत, शैलेन्द्रत्रिपुरारी शर्मा आदि।

यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि दूरदर्शन तथा अन्य चैनलों पर प्रसारित होनेवाले बहुत से धारावाहिक साहित्यिक कृतियों पर भी आधारित हैं।

साहित्यिक विधाओं के दृश्य माध्यमों में रूपांतरण की विशेषताएँ: जब कोई साहित्यिक रचना दृश्य माध्यमों में रूपांतरित की जाती है तो उसमें अनेक ऐसी विशेषताओं का समावेश हो जाता है, जो उसके मुद्रित रूप में संभव नहीं होती। ये विशेषताएँ दृश्य माध्यम के अपने गुणों के कारण आ जाती हैं। ऐसी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

- १) दृश्य माध्यम में रूपांतरित होकर मुद्रित साहित्य की रचनाओं में दृश्यात्मकता की प्रधानता हो जाती है। इसलिए उसका रसास्वादन करने वाले दर्शक उस रचना को दृश्यों में देखकर आसानी से ग्रहण करने लगते हैं।
- २) ये दृश्य तकनीकी उपकरणों, कंप्यूटर, कैमरे तथा ध्वनि एवं दृश्य (ऑडियो वीडियो) उपकरणों के कारण बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण होते हैं।

- ३) इन्हीं उपकरणों के इस्तेमाल से लेखक की कल्पना द्वारा लिखे गए असंभव से असंभव दृश्यों को भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इसे हम ऐसे भी कह सकते हैं कि लेखक की कल्पनाओं को पर्दे या मॉनीटर पर साकार किया जा सकता है।
- ४) इन दृश्यों में विविधता पैदा की जा सकती है। यह विविधता प्राकृतिक दृश्यों, पहाड़ों, झरनों, युद्ध, प्राकृतिक विभीषिका आदि दृश्यों, पशुओं, सुंदर पक्षियों, सघन वनों, महलों से लेकर हिंसा, हत्या, वध, स्थान आदि के ऐसे दृश्यों में भी देखी जा सकती है, जिन दृश्यों को लिखना या नाटकों द्वारा स्टेज पर दिखाना वर्जित होता है या संभव नहीं होता।
- ५) दृश्यों का आकर्षण उनके रंगों और अनुपात में होता है। दृश्य माध्यमों, विशेष रूप से टेलीविजन में यह सुविधा है कि अच्छे से अच्छे उपकरण उपलब्ध है, कंप्यूटर तकनीक उपलब्ध है। अनेक तरह के प्रभाव पैदा करके एक से एक आकर्षक दृश्य तैयार किए जा सकते हैं और उन्हें रचना के साथ दिखाया जा सकता है।
- ६) किसी साहित्यिक रचना के मुद्रित रूप में हम पात्रों के हाव-भाव गतिविधियों आदि का मात्र चित्रण ही कर पाते हैं। उन्हें पाठक अपनी कल्पना से ग्रहण करता है। लेकिन दृश्य माध्यम उन पात्रों को सामने लाकर उनके चेहरे की एक एक रेखा को उभार देता है, उनके हाव-भाव, क्रियाकलापों, गतिविधियों आदि को जीवंत कर देता है। मिड शॉट, मीडियम शॉट, क्लोज अप मीडियम क्लोज-अप, बिग क्लोज अप प्रोफाइल शॉट आदि के द्वारा इन भावों और मुद्राओं को टेलीविजन या फिल्म में बहुत आसानी से दिखाया जा सकता है।
- ७) मुद्रित साहित्यिक रचनाओं की भाषा कठिन हो सकती है। वह सामान्य पाठक द्वारा उस रचना के रसास्वादन में बाधा पैदा कर सकती है। इसके लिए उसे साहित्यिक भाषा का ज्ञान होना चाहिए। लेकिन दृश्य माध्यमों में प्रायः भाषा सरल, सरल और अधिक से अधिक लोगों द्वारा ग्रहण करने योग्य रखी जाती है। यहाँ साहित्यिकता का उतना ध्यान नहीं रखा जाता, जितना इस बातपर कि सभी तरह के दर्शक इस कार्यक्रम को आसानी से समझ सकें और आनंद उठा सकें।
- ८) दृश्य माध्यमों के कार्यक्रमों में ध्वनि, संगीत आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसलिए अभिनेताओं की आवाज, उनके संवाद बोलने का ढंग प्रभावशाली होना चाहिए। उपकरणों की सहायता से हम किसी अभिनेता की खराब आवाज को भी डब करके प्रभावशाली बना देते हैं। इससे रूपांतरित साहित्यिक रचना का प्रभाव बढ़ जाता है।

अंत में हम साहित्यिक विधाओं के दृश्य माध्यमों में रूपांतरण पर इस दिशा में संलग्न रचनाकार श्री रेवतीसरन शर्मा का यह कथन, उद्धृत करना चाहेंगे "दूरदर्शन प्रस्तुति सलीके से सजाया गया दस्तरखान है। सौंदर्यबोध अनिवार्य है, कहाँ से रंग ला सकते हैं, यह दायित्व नाटक कार का है..... इसके लिए तकनीकी ज्ञान, दृश्यबोध में तकनीक का अनुभव होना चाहिए।"

संदर्भ ग्रंथ

१. आधुनिक संचार माध्यम और हिन्दी - डॉ. हरिमोहन
२. रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता - डॉ. हरिमोहन
३. कम्प्यूटर के भाषिक अनुप्रयोग - डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा
४. समकालीन पत्रकारिता : मूल्यांकन और मुद्दे - राजकिशोर
५. जनसंचार माध्यमों का सामाजिक चरित्र - जावरी मल्ल पारख
६. मीडिया और साहित्य - डॉ. सुधीश पचौरी
७. संपर्क भाषा हिन्दी और आकाशवाणी - डॉ. पबूर शशीन्द्रन
८. इलेक्ट्रॉनिक माध्यम रेडियो एवं दूरदर्शन - डॉ. राममोहन पाठक
९. कम्प्यूटर और सूचना तकनीक - डॉ. शंकर सिंह
१०. हिन्दी पत्रकारिता : दूरदर्शन और टेलीफिल्में - सविता चड्ढा
११. आजादी के पचास वर्ष और हिन्दी पत्रकारिता - सविता चड्ढा
१२. जनमाध्यम और मास कल्चर - जगदीश्वर चतुर्वेदी
१३. कम्प्यूटर और हिन्दी - डॉ. हरिमोहन
१४. पत्रकार और पत्रकारिता - डॉ. रमेश जैन
१५. मिडिया लेखन - विजय कुलश्रेष्ठ
१६. मिडिया लेखन - डॉ. चंद्रप्रकाश मिश्र
१७. मिडिया लेखन - सं. डॉ. रमेश चंद्र त्रिपाठी
१८. समाचार, लेखन और संपादन कला - डॉ. हरिमोहन
१९. समाचार-लेखन - नवीनचंद्र पंत
२०. संचार माध्यम लेखन - गौरीशंकर रैणा
२१. संप्रेषण और रेडियो शिल्प - विश्वनाथ पाण्डेय
२२. कथा-पटकथा - मन्नू भण्डारी
२३. मीडिया लेखन - सुमित मोहन
